प्रकाशक
राजकमल, पब्लिकेशन्स
१. फैज़ बाज़ार, दिल्ली ।

पहली बार
मूल्य ५ रुपये

मुद्रक
अमरचंद्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली, ८-४७ ।

भूमिका

अहमदनगर में हम जब कैद थे, तब हमें मलाया में खड़ी की गई आजाद हिन्द फौज के बारे में कुछ धुंधली-सी ही जानकारी मिली थी। हमें उसके बारे में कुछ विशेष जानकारी न थी। हिन्दुस्तान में बहुत ही कम लोग उसके बारे में कुछ अधिक जानते थे। जून १९४५ में जेल से रिहा होने पर मुझे कुछ अधिक समाचार विस्तार के साथ मिले। उसमें मेरी दिलचस्पी पैदा होनी स्वाभाविक थी; किन्तु जब जापान का युद्ध चल रहा था और मैंने तब सार्वजनिक रूप से उस सबकी चर्चा करनी ठीक न समझी। जापान का युद्ध समाप्त होते ही मैंने अनुभव किया कि उसके बारे में सार्वजनिक चर्चा करने का अब उपयुक्त अवसर उपस्थित हो गया है।

लेकिन, मेरी जानकारी तब भी सीमित ही थी। मैं तब अपने मन में यह भी तय न कर पाया था कि इस फौज का संगठन करना और इसका काम भावी व्यापक योजनाओं तथा महायुद्ध की बारीकियों को देखते हुए कहां तक न्यायसंगत था? लेकिन, तब भी दो बातों के बारे में मुझे कुछ भी सन्देह न था। एक तो यह कि इस फौज में जो स्त्री-पुरुष भरती हुए थे और जिन्होंने श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में काम किया था, उन्होंने स्वदेश को आजाद देखने की तीव्र भावना से प्रेरित होकर ही वैसा किया था और दूसरी यह कि यदि फौजी कानून की व्यवस्था-सम्बन्धी व्याख्या के अनुसार उनमें से अधिकांश को कठोर सजायें दे दी गईं, तो यह हिन्दुस्तान के लिए बहुत बड़ी दुःखपूर्ण दुर्घटना होगी। यह दुर्घटना केवल इस दृष्टि से ही होगी कि भारतमाता के वीर और योग्य पुत्रों और पुत्रियों को लम्बी-लम्बी अथवा मौत की सजायें दे दी जायंगी, बल्कि इसलिए भी दुःखपूर्ण होती कि वह हिन्दुस्तान के

वदन पर एक ऐसा गहरा घाव कर जायगी, जिसका भरना आसान न होगा। उससे इंग्लैण्ड के प्रति दुर्भावना भी बहुत मजबूत हो जायगी, जो कि पहले ही काफी मजबूत है। दोनों देशों के बीच यह ऐसी खाई भी पैदा कर सकती है, जिसका पाटना असम्भव हो जायगा।

इसलिए राजनीतिक पहलू से विचार न करते हुए भी मैंने यह निश्चय दृढ़ कर लिया कि इन युवक और युवतियों के जीवन की रक्षा के लिए कुछ भी उठा न रखना चाहिए। मेरा यह निश्चय बिलकुल सही था, क्योंकि इसकी जो प्रतिक्रिया सारे देश में हुई, वह अद्भुत और विस्मयजनक थी। यहां तक कि सुदूर गांवों में भी सहसा आजाद हिन्द फौज का नाम पहुंच गया। सभी को उन लोगों की रिहाई के लिए कुछ-न-कुछ करना जरूरी हुआ, जो कि गिरफ्तार थे अथवा जिन पर मुकदमा चल रहा था। उन लोगों की व्यक्तिगत हैसियत कुछ भी क्यों न हो, किन्तु वे देश की आजादी की लड़ाई के प्रतीक बन गये और इसी कारण देश के सभी लोग, अद्भुत एकता के साथ उसके साथ होगये और उनके बचाव के लिए प्रयत्न करने में लग गये। सारे देश में उत्ते-जना की लहर दौड़ गई और बाकी सारी समस्यायें, भले ही परिणाम की दृष्टि से कितनी भी महत्त्वपूर्ण क्यों न थीं, उसके सामने क्षीण पड़ गईं। इनम से कुछ लोगों का मुकदमा, जिसमें श्री भूलाभाई देसाई ने बड़ी योग्यता के साथ बचाव किया था, सबके मुंह पर चढ़ गया और उसके अन्त में श्री देसाई के बचाव में दिये गये भाषण को स्थायी साहित्य का महत्त्व प्राप्त हो गया।

जनता की याद बुरी तरह धोखा देने वाली है। किसी भी मामले में उसकी याद अधिक लम्बे समय तक काम नहीं दे सकती। चाहे जो हो, आजाद हिन्द फौज ने न केवल मलाया, बर्मा तथा अन्य स्थानों में ही नये इतिहास का निर्माण किया है। किन्तु सारे हिन्दुस्तान में जनता के हृदयों पर भी उसने एक नया अमिट इतिहास लिख दिया। आज क उत्तेजना होने पर आजाद हिन्द फौज, उसके नेताओं और उनके

काम के बारे में ठीक-ठीक अन्दाज लगाया जा सकेगा। क्षणिक उत्तेजना को प्रगट करने वाला अनेक पुस्तकें इस बारे में लिखी जा चुकी हैं। उत्तेजना को छोड़कर आजाद हिन्द फौज के काम का सिंहावलोकन कर सकना आज भी प्रायः सम्भव नहीं है, जो कुछ भी किया गया, उसके बारे में राजनीतिक पहलू से आज भी अनेक मत होंगे। फिर भी सचाई की जानकारी हासिल करना जरूरी है। मेरे मित्र और साथी मेजर जनरल शाहनवाज खां ने इस सचाई को बहुत अच्छे ढंग से उपस्थित किया है। इस प्रकार उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण उद्योग का महत्त्वपूर्ण व्यौरा उपस्थित किया है।

मैं यह स्वीकार करता हूं कि समय न होने से मैं सारी पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ नहीं सका फिर भी इसके कुछ हिस्से मैंने पढ़े हैं। मुझे यह अनुभव हुआ है कि यह व्यौरा इस समय तक लिखी गई पुस्तकों में सबसे अच्छा है। इसलिए मैं इसको पढ़ने की सिफारिश कर सकता हूं। मुझे आशा है कि इसको पढ़ने से इस वीरता-पूर्ण सत्साहस के कई पहलुओं पर पढ़ने वालों को नई रोशनी मिलेगी।
—जयहिन्द !

—जवाहरलाल नेहरू

नई दिल्ली
१० अक्तूबर १९४६

दो शब्द

स्वदेश को विदेशी सत्ता से स्वतन्त्र और स्वाधीन करने की लड़ाई के इतिहास में आजाद हिन्द फौज का सही तौर पर लिखा गया विवरण एक शानदार-अध्याय होगा। यह तो साफ ही है कि हिन्दुस्तान में किसी भी और मुकदमे के लिए, चाहे वह फौजी अदालत में हुआ या मामूली अदालत में, इतनी दिलचस्पी पैदा नहीं हुई, जितनी कि आजाद हिन्द फौज के पहले मुकद्दमे के लिए पैदा हुई थी। अपनी रिहाई के बाद मुझ देश में जहां-तहां जान और चारां ओर घूमने का अच्छा अवसर मिला है। जहां भी कहीं मैं गया, मैंने देखा कि लोग आजाद हिन्द फौज और उसके नेताजी के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आतुर हैं। लोगों के आग्रह ने मुझे लाचार कर दिया कि मैं जितना जानता हूं, उतना लिख डालूं। इसलिए मैंने आजाद हिन्द फौज की कहानी एक सिपाही की भाषा में उसी के ढंग से लिख डाली है। इसको पूर्ण बनाने और कहीं भी अत्युक्ति से काम न लेने का मैंने पूरा प्रयत्न किया है।

इसके लिए मुझे और भी अधिक प्रेरणा तब मिली जब मैंने देखा कि देशी भाषाओं और अंग्रेजी में भी अनेक लेखकों ने पहल करने के लिए आजाद हिन्द फौज के बारे में वास्तविक जानकारी न रखते हुए भी अनेक पुस्तकें लिख डाली हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी लिखी हुई कहानी अधूरी रह गई और पूरी तरह विश्वासयोग्य भी नहीं बन सकी। फिर आजाद हिन्द फौज के कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण पहलू भी थे, जिनके बारे में कुछ भी लिखा न गया था और फौजी अदालत में भी उनको अधूरे ही रूप में पेश किया गया था। इनका सम्बन्ध हमारे उन हजारों भाइयों के शानदार साहसपूर्ण कार्यों के साथ था,

जिन्होंने तीन वर्ष आठ महीनों के भाव-पूर्ण व घटनापूर्ण विकट दिनों में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के ओजपूर्ण तेजस्वी नेतृत्व पर अपने को न्योछावर कर दिया था। उन्होंने अपना खाना-पीना और उठना बैठना तो क्या, अपना सारा ही जीवन इस महान् आन्दोलन की भेंट कर दिया था। उनके इन कार्यों का इतिहास जितना शानदार है, उतना ही पढ़ने वाले की आत्मा को ऊपर उठाने वाला है।

यह पुस्तक उस महान् आन्दोलन को सही रूप में समझने में पाठकों को मदद देगी। उनके दिलों में जो सन्देह या मिथ्या धारणायें पैदा हो गई हैं, उनको भी यह दूर करेगी। दूसरे यह भी पता चलेगा इस महान् आन्दोलन के नेताओं ने समय पर यह बार-बार साफ कर दिया था कि इसकी योजना और कार्यक्रम "इण्डियन नेशनल कांग्रेस" के ध्येय और भावनाओं के अनुरूप ही रहेगा।

इस पुस्तक में मैंने पाठकों के सामने अपने नेता के उस स्वरूप को भी रखने का प्रयत्न किया है, जो मैंने एक व्यक्ति, एक कूटनीतिक और एक सेनापति के रूप में देखा।

अन्तर्कालीन सरकार के उपप्रधान पण्डित जवाहरलाल नेहरू का मैं हृदय से आभारी हूं, जिन्होंने इस पुस्तक की भूमिका लिख देने की कृपा की है। श्रीयुत कल्यान सेन और नेताजी के उन सब सम्बंधियों का भी मैं अभारी हूं, जिन्होंने इस पुस्तक को लिखने के लिए मुझे उत्साहित किया। मुझे विश्वास है कि जनता इस पुस्तक को शौक के साथ पढ़ेगी।

—शाहनवाजखां

२ विण्डसर प्लेस

नई दिल्ली।

: १ :

नेताजी की महानता

किसी के भी काम को समझने के लिए उसको जानना आवश्यक है। पूर्वीय एशिया में नेताजी जब तक रहे, तब तक मैं प्रायः आपके साथ ही रहा और आपको जानने का मुझे अच्छा अवसर मिला। सिंगापुर में भी मैं आपके साथ था। जब आप बर्मा गए थे, तब मैं आपके साथ गया था और अन्त में स्याम में भी मैं आपके साथ ही रहा। आपका बखान करना मेरी सामर्थ्य और योग्यता के बाहर है, क्योंकि आप अनुपम गुणों की खान थे। पूर्वीय एशिया में रहने वाले हिन्दुस्तानियों की श्रद्धा और आदर को आपने जिस रूप में प्राप्त किया, इससे आपके गुणों का विशेष रूप से परिचय मिलता है। जो भी कोई आपसे मिला, वह आपके व्यक्तित्व पर मोहित हो गया। यहाँ तक कि विदेशी भी आपके व्यक्तित्व से सहसा आकर्षित हुए बिना नहीं रहे। यह आपके ही व्यक्तित्व का प्रभाव था कि आपने पूर्वीय एशिया के समस्त हिन्दुस्तानियों को एकता के सूत्र में पिरो दिया। पूर्वीय एशिया के समस्त राष्ट्रों और जातियों में समता और सहृदयता की भावना पैदा करने वाले भी आप ही थे। केवल 'देवता' के रूप में ही नहीं, बल्कि इंसान, योद्धा, मित्र और साथी के रूप में भी लोग आपको पूजते थे। आम जनता में आपके प्रति जो अगाध प्रेम और श्रद्धा थी, उसका रहस्य भी यही था। पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों ने आपको अपना अप्रतिद्वन्द्वी नेता क्यों मान लिया ? केवल इसीलिए कि वे साहस, नैतिक बल और सहृदयता की जीवित प्रतिमा थे।

मैं जानता हूँ कि नेता जी के बारे में कोई राय प्रकट करने या निर्णय देने का मैं अधिकारी नहीं हूँ। मैं कोई राय या निर्णय देना भी

नहीं चाहता। यह काम इतिहास लिखने वालों का है; मैं तो आपके अगाध गुणों के प्रति केवल एक श्रद्धाञ्जलि ही अर्पित करना चाहता हूँ।

मैं बिना किसी संकोच के यह स्वीकार करता हूँ कि मैं ज्यों ही आपके व्यक्तिगत सम्पर्क में आया, त्यों ही मैं आपके अद्भुत प्रभाव से प्रभावित हो उठा। मैं अब तक भी यह नहीं जान सका कि आपमें एक मानव, एक सेनापति और एक कूटनीतिक का अद्भुत सम्मिश्रण किस रूप में हुआ था। घर में आप बिलकुल सीधे-सादे घरेलू आदमी जान पड़ते थे, युद्ध के मोर्चे पर अथवा सैनिकों के बीच में आप सवा सोलह आना सैनिक प्रतीत होते थे और सभा-समितियों तथा सम्मेलनों में अथवा आज़ाद हिन्द सरकार के प्रधान के रूप में आपका तेपस्वी स्वरूप अत्यन्त प्रभावशाली कूटनीतिक का जान पड़ता था। बतौर एक व्यक्ति के आप बहुत ही अच्छे दोस्त और साथी थे। यद्यपि आप पूर्वीय एशिया के समस्त हिन्दुस्तानियों के अप्रतिद्वन्द्वी नेता थे, तो भी आप में कोई अभिमान या दिखावा न था। आपका रहन-सहन बहुत ही सीधा-सादा था। आप बहुत अध्यवसायी थे और अपने साथियों के सुख-दुःख तथा तंगी-तकलीफ में पूरा हाथ बँटाते थे। अपने साथियों में हरेक का पूरा ध्यान रखते थे। हरेक छोटी या बड़ी बात की गहराई में जाने और जरूरतमन्द की सहायता करने में बड़ा सुख अनुभव करते थे। शान-शौकत और बनावट से आपको नफ़रत थी। आप साधारण मानव से बहुत ऊपर उठे हुए थे। सादगी और सहृदयता से आपके प्रति आपके साथियों की श्रद्धा और आदर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। अपने साथियों के प्रति आपको जो प्रेम था, उसको प्रकट करने के लिए मैं यहाँ कुछ उदाहरण देना चाहता हूँ।

१९४३ के अन्तिम दिनों में सिंगापुर के सलतार कैम्प में एक स्वयं-सैनिक की मृत्यु हो गई। कैम्प के साधारण रीति-रिवाज के अनुसार उसको दफना दिया गया। अन्त में आज़ाद हिन्द संघ के प्रधान के नाते इस मृत्यु की सूचना नेताजी के पास पहुँचाई गई। नेताजी ने उसके

अन्तिम संस्कार में शामिल होने की इच्छा प्रकट की। सब लोग चकित रह गए। नेता जी को बताया गया कि मृत व्यक्ति को दफ़ना दिया गया है और यह एक मामूली रिवाज है कि दफ़नाए जाने के बाद मृत्यु की सूचना प्रधान के पास भेजी जाय। नेताजी ने उसका शव जमीन में से निकलवाया और सारी अंतिम क्रिया अपने सामने करवाई। आपने यह हुक्म जारी किया कि भविष्य में आपको मृत्यु की सूचना पहले ही मिल जानी चाहिए, जिससे कि आप अंतिम संस्कार में शामिल हो सकें। अपने साथियों और आदमियों के लिए नेताजी के हृदय में जो प्रेम था, उसका पता इस छोटी-सी घटना से लग जाता है। लेकिन, इससे हरेक सैनिक के हृदय में यह भावना पैदा हो गई कि उसकी मृत्यु निरर्थक नहीं है। नेताजी के पीछे चलकर अपना सर्वस्व होम देने के लिए उनमें अपूर्व साहस का संचार हो गया। आपके ऐसे अद्भुत गुणों का जितना परिचय लोगों को मिलता उतनी ही उनकी श्रद्धा और आदर आपके प्रति बढ़ता गया। आपकी दृष्टि में सब हिन्दुस्तानी समान थे। सब हिन्दुस्तानियों की एकता को आपने सबसे ऊंचा स्थान दिया और उसके लिए छोटी-मोटी बातों को छोड़ने में संकोच नहीं किया। जब पहली बार ऑफिस में आकर आपने काम शुरू किया, तब अपने साथियों के साथ आपने सबसे पहले इसी बात की चर्चा की कि पूर्वीय एशिया की भिन्न-भिन्न जातियों में एकता कैसे कायम की जाय। इस बारे में आपने छोटी-छोटी बातों की भी चर्चा की। 'जयहिन्द' को पारस्परिक अभिवादन के लिए अपनाये जाने के बारे में भी चर्चा हुई। आपने जिस सचाई और ईमानदारी से इसे अपनाने पर जोर दिया, उसका परिणाम यह हुआ कि हम सबने अभिवादन के भिन्न-भिन्न शब्दों का परित्याग करके उसको खुशी से अपना लिया। थोड़े ही समय में इस शब्द ने भिन्न-भिन्न जातियों में एकता पैदा करने में चमत्कार कर दिखाया। जादू की तरह इसने काम किया। हिन्दुस्तान में ही नहीं, किन्तु पूर्वीय एशिया में रहने वाले विदेशियों में इसका
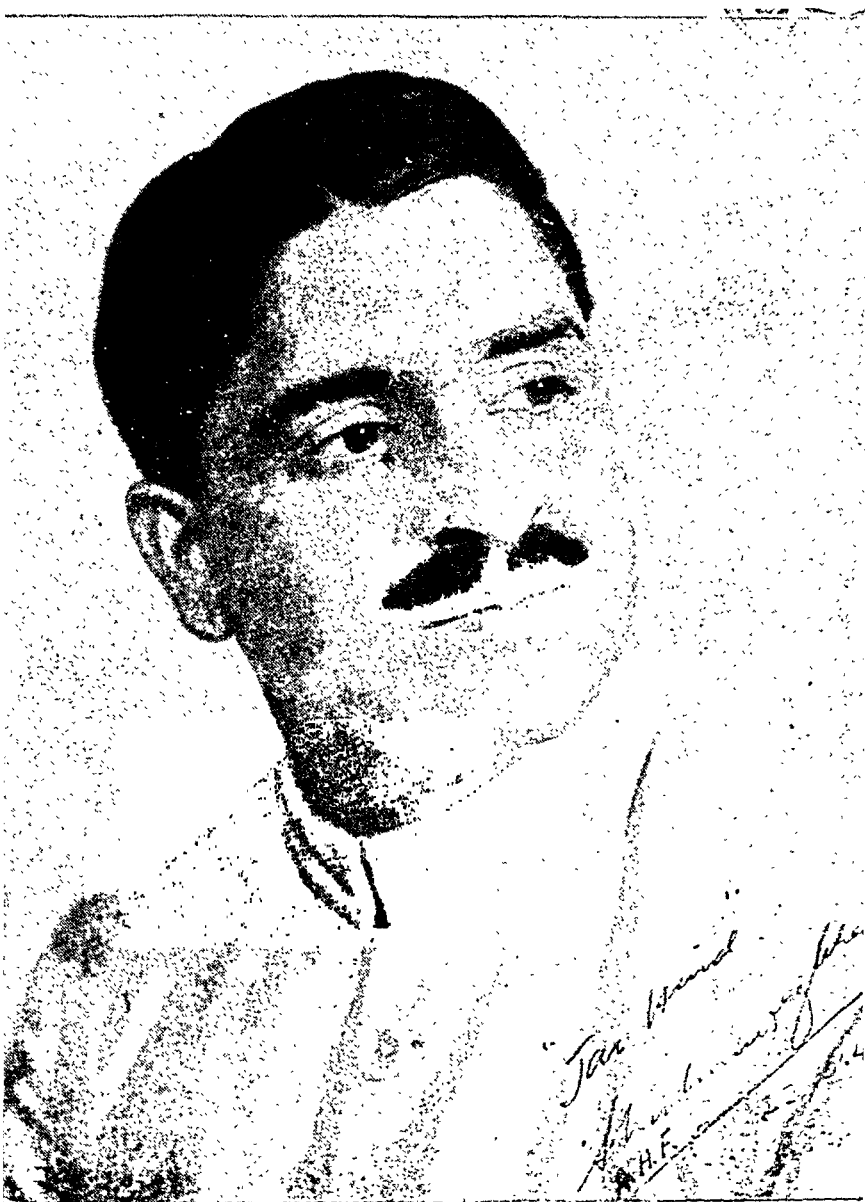
लेखक

सहसा प्रचार हो गया। नेताजी सबके लिए एक-सी फिक्र रखते थे। हर जरूरतमन्द को वे स्वयं मिलते और सबकी शिकायतों को बड़े ध्यान के साथ सुना करते थे। अस्पतालों में आप सदा ही नियम से जाया करते थे और सभी प्रदेशों में, सभी कैम्पों के अस्पतालों में बीमारों की सुख-सुविधा तथा आमोद-प्रमोद की व्यवस्था करने पर पूरा ध्यान दिया करते थे।

निस्वार्थ भावना की तो नेताजी मूर्ति ही थे। आपकी निजी आकांक्षा या लालसा कुछ भी न थी। 'वृहत्तर एशिया सम्मेलन' म इसका बहुत सुन्दर परिचय मिला था। जापान के प्रधान मन्त्री जनरल तोजा ने उसमें कहा था कि स्वतन्त्र भारत के सर्वेसर्वा नेताजी होंगे। नेताजी ने तुरन्त खड़े होकर जनरल तोजो से कहा कि उनको वैसा कहने का कोई अधिकार नहीं है। स्वतन्त्र भारत में केवल जनता ही इसका फैसला करेगी कि कौन क्या होगा? मैं तो अपने देश का एक अदना-सा सेवक हूं और उसमें सब कुछ होने का वास्तविक अधिकार जिन लोगों को है, वे महात्मा गांधी, मौलाना अबुलकलाम आजाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू हैं।

प्रान्तीय अथवा धार्मिक पक्षपात या भेद-भाव के लिए आपके यहां कोई स्थान न था। इनको मानने से आप साफ इनकार करते थे। हिन्दू, मुसलमान और सिख आदि में आप कुछ भी भेद न करते थे। इसका असर आपके साथियों पर भी पड़ा। हालांकि सबको अपने धर्म और विश्वास के अनुसार पूजा-पाठ आदि करने की पूरी आजादी थी, तो भी आजाद हिन्द फौज में साम्प्रदायिक संकीर्णता अथवा धार्मिक पक्षपात या भेद-भाव की कहीं गन्ध न थी। अपने साथियों में आपने यह भावना कूट-कूट कर भर दी थी कि वे सब एक ही भारत माता की सन्तान हैं। इसलिए उनमें किसी भी तरह का कोई भी भेद-भाव रहना नहीं चाहिए। हमारे बीच में साम्प्रदायिक भेद-भाव की छाया भी शेष न रही और हमने यह समझ लिया कि हमारे देश में इसको विदेशी सरकार ने पैदा किया है।

नेताजी के सबसे अधिक भक्त और समर्थक मुसलमान थे। आप हर एक की योग्यता के कायल थे। उसी के लिए आप सबको सराहना करते थे। किसी के धर्म या प्रान्त-विशेष के कारण आपने कभी भी किसी की प्रशंसा नहीं की। यह साधारण बात नहीं है कि जब आप जर्मनी से टोकियो के लिए विदा हुए, तब उस संकट की घड़ी में आपने आबिदहुसेन नाम के मुसलमान को अपना साथी बनाया। अन्त में सेनाओं ने जब युद्ध के मोर्चे के लिए प्रयाण किया, तब दोनों डिविजनल कमाण्डर मेजर जनरल ऐस० जैड० कियानी और मैं मुसलमान ही थे। अक्तूबर १९४५ में जब आप टोकियो की अन्तिम यात्रा पर रवाना हुए, तब अपने साथ जाने के लिए आपने कर्नल हबीबुररहमान को चुना।

सेना के अलावा नागरिक क्षेत्र में भी आपके अत्यन्त समर्थक और भक्त अधिकतर मुसलमान ही थे। नेताजी की एक माला के लिए अपना सर्वस्व लगाकर एक करोड़ रु० देने वाला मि० हबीब एक मुसलमान ही था।

इन सब बातों को देखते और जानते हुए हम आजाद हिन्द फौज वाले यह मानने से साफ इनकार करते हैं कि हिन्दुस्तान में सारे हिन्दुस्तानियों का एक होकर भाई-भाई की तरह रहना और महान् स्वतन्त्र तथा संयुक्त हिन्दुस्तान के निर्माण के लिए काम करना संभव नहीं है।

अपने साथियों जैसा साधारण भोजन करना आपका नियम था। आपकी यह सख्त हिदायत थी कि कैम्पों में बनने वाले भोजन के अलावा कुछ और आपके लिए नहीं बनना चाहिए। मोर्चे से लौटने वाले अफसरों और सैनिकों को विशेष भोजन दिया जाता था। इसका सर्वसाधारण पर बहुत गहरा असर पड़ा। सर्वसाधारण के साथ अपने को इस प्रकार घुला-मिला देने पर भी विशिष्ट व्यक्तियों में आपका अपना ही स्थान था। आजाद हिन्द दल की कुछ टुकड़ियां अंग्रेजों के हाथों से छीने गये प्रदेश की व्यवस्था करने के लिए मोर्चे पर भेजी गई थीं। दुर्भाग्यवश आपस में सम्पर्क कायम रखने के साधन ठीक

तरह ... दे सके। मोर्चे से कोई समाचार न मिलने पर नेताजी विक्षुब्ध होगए। आपने मन्त्रिदल में से एक पार्टी को मोर्चे पर जाने और वहां से पूरे समाचार लाने का आदेश दिया। मोर्चे पर तैनात अफसरों और सैनिकों पर इस पार्टी के पहुंचने और नेताजी द्वारा उसके भेजे जाने का समाचार जानकर चमत्कारपूर्ण प्रभाव पड़ा। उनको पता चला कि नेताजी उनके लिए कितने चिन्तित रहते हैं ? आप उनके सच्चे दोस्त और साथी ही तो थे।

हिन्दुस्तान से आने वाले समाचारों को आप बहुत उत्सुकता के साथ सुना करते थे। जब आपने बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ने और हजारों आदमियों के वहां मरने का समाचार सुना तब आप बहुत ही द्रवित हो उठे। आप हमेशा इस विचार में मग्न रहते थे कि इस घोर विपत्ति में आपद्ग्रस्त देशवासियों की सहायता कैसे की जाय। इस विपत्ति पर आपका हृदय रो पड़ता था। आपने स्यामी और बर्मी सरकार से एक लाख टन चावल खरीदने का इन्तजाम किया। अपने इन्तजाम में इस चावल को कलकत्ता पहुंचाने का प्रस्ताव आपने अंग्रेज सरकार के सामने रखा और उससे इस बात की गारण्टी मांगी कि चावल ले जाने वाले जहाजों को सुरक्षित लौटने दिया जायगा। जैसी उमीद थी, वैसा ही हुआ। अंग्रेज सरकार ने इस प्रस्ताव का कुछ भी उत्तर न दिया। कई बार नेताजी ने इसे पेश किया, किन्तु कांग्रेस सरकार ने इसका कुछ भी जवाब न दिया। मानो लाखों मरने वालों की उसको कुछ भी फिक्र न थी।

एक बार एक जनरल स्टाफ का एक जापानी चीफ नेताजी के पास आया। उसने आपके सामने कलकत्ता पर बम-वर्षा करने की योजना पेश की और उस पर आपकी राय मांगी। आपने तुरन्त कहा कि जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं अपने सुन्दर शहर को बम-वर्षा से नष्ट-भ्रष्ट हुआ देखना नहीं चाहता। मैं अपने देशवासियों को आशा और उत्साह का संदेश देना चाहता हूं। कष्ट, संकट और मृत्यु उनके लिए उपस्थित करने

की मेरी इच्छा नहीं है। उस योजना का मुल्तवी रखने पर आपन जोर दिया। आपने कहा कि इम्फाल को फतह करने के बाद हम कलकत्ता पर अपने जंगी हवाई जहाज से बम न बरसाकर तिरंगे झण्डे बरसायंगे। बमों की अपेक्षा इनसे हम आसानी से ब्रिटिश साम्राज्य को नष्ट करने में सफल हो सकेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का नेताजी ने कुशाग्र बुद्धि से बहुत गहरा अध्ययन किया था। नहले पर दहला लगाने में आप कभी भी चूकते न थे। इसलिए आपने विरोधी पर फतह हासिल करना आपके लिए कुछ मुश्किल न था। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर आपके अधिकारपूर्ण भाषण सुनकर हम चकित रह जाते थ। अनेक बार आपका किया हुआ परिस्थिति का विश्लेषण बिलकुल ठीक बैठता था।

पूर्वीय एशिया में रहने वाले सिर्फ हिन्दुस्तानियों के ही आप नेता न थे अपितु आपको वहां के समस्त निवासियों का ही नेता माना जाता था। बृहत्तर पूर्वीय एशिया सम्मेलन में आपका व्यक्तित्व विशेष प्रभावोत्पादक था। जापानी सरकार ने आपसे टोकियो के रूवाहिया पार्क में जापानी जनता के सामने विशेष भाषण देने का अनुरोध किया था। यह असाधारण सम्मान था। बहुत ही कम विदेशियों को यह सम्मान दिया गया था। फिर ऐसे समय तो और भी असाधारण बात थी, जब कि जापान सफलता और वैभव की चोटी पर आरूढ़ था। कुछ ऊंचे जापानी अफसरों ने मुझे यहां तक कहा था कि नेताजी विशेष प्रतिभाशाली और प्रभावशाली व्यक्ति हैं। पूर्वीय एशिया में सबसे अधिक अनुभवी तथा कुशल राजनीतिज्ञ हैं। मुझे कई सम्मेलनों और सभाओं में उनके साथ जाने का सौभाग्य मिला था। उसमें उपस्थित या सम्मिलित होने वाले राजनीतिज्ञों पर आपके महान् व्यक्तित्व और गहरे अनुभव की छाप सहज में पड़ जाती थी।

हिन्दुस्तान की राजनीति का नक्शा तो आपके हाथों पर बना हुआ था। उसके आप सिद्धहस्त खिलाड़ी थे। हिन्दुस्तान के नेताओं और

जनता को आप खूब जानते और परखते थे। इसलिए हिन्दुस्तान की राजनीति में संभावित घटनाओं का अनुमान कर लेना आपके लिए कुछ भी कठिन न था। उसका आपने इतना गहरा अध्ययन किया था कि आप भावी के सम्बन्ध में जो कुछ कहते थे, वह बिलकुल ठीक उतरता था। सैनिक वृत्ति के जापानियों के साथ काम करना बहुत टेढ़ी समस्या थी। तब तो यह आर भी अधिक कठिन था। जब कि सारा घटना-चक्र उनके पक्ष में और उनके इशारे पर घूम रहा था। लेकिन, नेताजी ने इस खूबी और राजनीतिमत्ता से काम लिया कि उनके साथ कभी भी कोई संगीन मतभेद नहीं हुआ, हालांकि निचले दरज के हिन्दुस्तानी और जापानी अफसर आपस में प्रायः लड़ते-झगड़ते रहते थे। सचाई यह है कि हमारी नौका सदा ही आँधी और तूफ़ान से पैदा हुई लहरों में डगमगाया करती थी; किन्तु नेताजी सरीखे माँझी के कारण ही वह पार लगती चली गई। मैंने बहुत नज़दीक और बहुत बारीकी से आपको तथा आपके तरीकों को समझने की कोशिश की और मैंने सदा ही आपको अत्यंत कुशल राजनीतज्ञ पाया। परिस्थितियों के अनुसार अपने को बदलने में आप बहुत चतुर थे; इसलिए ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि सब कुछ आपके ही चारों तरफ़ घूम रहा हो। सैनिक मनोवृत्ति के जापानी हमारी सहायता करते हुए भी हम पर अपना रौब जमाए रखना चाहते थे। उन सबको यह बहुत बुरा मालूम होता था। नेताजी के आने के बाद स्थिति एकदम बदल गई। जापानियों पर नेताजी का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उनकी सलाह लिये बिना कोई भी नया कदम नहीं उठाया जाता था। यदि मैं भूलता नहीं, तो बर्मी नेता भी बर्मा के बारे में नेताजी से प्रायः सलाह-मशवरा करने आया करते थे। पूर्वीय एशिया के पराधीन और पद-दलित सभी लोगों के लिए आप एक वीर नेता थे। 'महानता' तो जन्म के साथ ही मिलने वाला एक सद्गुण है। इसको पैदा करना प्रायः असम्भव ही है। लेकिन, इस महानता को विकसित

करने के लिए अनेक सहायक सद्‌गुणों का उपार्जन करना आवश्यक है। नेताजी ने उन सबका उपार्जन बड़ी शान के साथ किया था। आपको 'महान्' बनने में किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। अंग्रेजों के स्वार्थपूर्ण और भ्रमपूर्ण प्रचार से आपने सबको सावधान किया। अंग्रजों की चालों को पूरी तरह समझने वाले आप अकेले ही व्यक्ति थे। जापानियों के साथ आपका बहुत गहरा सम्बन्ध था और आप सदा ही उनके निकट सम्पर्क में रहते थे। लेकिन, उनसे सतर्क भी पूरी तरह रहते थे। जापानी राजनीतिज्ञों और युद्ध-विशेषज्ञों के साथ जब भी कभी मतभेद पैदा होकर कोई बहस छिड़ जाती, तो हम हमेशा ही बाजी मार ले जाते थे। "आजाद हिन्द सरकार" की स्थापना करना नेता जी का सबसे बड़ा चतुराई का काम था। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से इसका महत्त्व और भी अधिक था। आजाद हिन्द संघ के लिए अपने दुश्मनों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना और पूर्वीय एशिया के राष्ट्रों के साथ समानता के नाते व्यवहार करना सम्भव न था। इसकी ओर नेताजी का ध्यान गया और आपने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की। हालांकि पदाधिकारी और कार्यकर्त्ता सब पुराने ही लोग रहे, किन्तु बटन दबाने के साथ ही सारा नक्शा बदल गया। हम अपने को आजाद राष्ट्र के नागरिकों की तरह सर्वथा आजाद और उनके समान समझने लग गए। नौ राष्ट्रों ने हमारी सरकार की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया। हमारी सरकार की स्थिति हालांकि शरणार्थियों की सरकार की-सी थी, तो भी हमारे अधिकार और मान-मर्यादा तथा प्रतिष्ठा में कुछ भी अन्तर न था।

एक बार जापानियों ने यह सुझाव पेश किया कि जापानी सेना चूंकि आजाद हिन्द सेना से अधिक होशियार है, इसलिए जब भी आजाद हिन्द सेना के अफसर अपने समान दर्जे के जापानी अफसरों से मिलें, तब उनको पहले उनका अभिवादन करना चाहिए। नेताजी इस पर सहसा गरम हो गए। आपने कहा कि "इसका मतलब तो यह हुआ

कि आजाद हिन्द सेना का दरजा जापानी सेना से नीचा है। ऐसा कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। दोनों को एक साथ-दूसरे का अभिवादन करना चाहिए।" जापानियों ने वैसा करना स्वीकार कर लिया।

पूर्वीय एशिया में केवल आजाद हिन्द फौज ही थी, जो जापानियों के सैनिक कानून के आधीन न थी। जापानियों ने कई बार नेताजी के सामने यह सुझाव पेश किया कि आजाद हिन्द फौज पर जापान का सैनिक कानून लागू किया जाना चाहिए। नेताजी ने इससे साफ इनकार कर दिया। आपका कहना था कि आजाद हिन्द सेना सर्वथा स्वतन्त्र सेना है। अन्त में मामला टोकियो पहुंचा। वहां नेताजी के पक्ष में फैसला हुआ। जब भी कभी मौका आया, नेताजी ने इस पर पूरा जोर दिया कि आजाद हिन्द फौज केवल हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ेगी और वह कभी भी जापानियों के हाथ का खिलौना न बनेगी। दो बार जापानियों ने आजाद हिन्द फौज से अपना काम लेना चाहा। एक बार तो अगस्त १९४४ में, चुम्पोन में स्यामियों के विरुद्ध और दूसरी बार मार्च १९४५ में बर्मियों के विरुद्ध, जब कि बर्मी राष्ट्रीय फौज ने जापानियों के विरुद्ध विद्रोह किया था। दोनों ही बार नेताजी ने साफ इनकार कर दिया।

अपनी स्वतन्त्र स्थिति बनाये रखने के लिए नेताजी ने कभी भी जापानियों से ऐसी कोई सहूलियत नहीं मांगी, जो पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों से मिलनी संभव थी। जापानियों द्वारा सहायता के प्रस्ताव पेश किये जाने पर भी नेताजी उसे लेने को सहमत न हुए। युद्ध-सामग्री के अलावा कोई और सहायता उनसे नहीं की गई। आपने हिन्दुस्तानियों से साफ-साफ कह दिया कि जब तक हम स्वयं अपनी सहायता कर सकते हैं, तब तक किसी दूसरे से कोई सहायता न मांगी जायगी। आपकी इस सचाई का लोगों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि हिन्दुस्तानियों ने अपना सर्वस्व आप पर न्यौछावर कर दिया। धन-जन और अन्य साधनों के लिए जब भी कभी आपने अपील की, तब सदा ही लोगों से जितना

अपने मांगा, उससे कहीं अधिक लाकर उनके चरणों में उपस्थित कर दिया। "सवस्व बलिदान" को अनक हिन्दुस्तानियों ने अपने लिए आदर्श बना लिया। किसा अनिश्चित ध्यय के लिए सर्वस्व बलिदान या न्योछावर करना बहुत की कठिन है; किन्तु पूर्वीय एशिया के समस्त हिन्दुस्तानियों ने, सभी जातियों और सम्प्रदायों के लोगों ने, अपना सर्वस्व नेताजी के चरणों में भेंट चढ़ा दिया। अपनी किस्मत भी आपके हाथों में देकर वे आपके आदेश की प्रतीक्षा में रहने लगे।

'स्पष्टवादिता' आपका एक और गुण था, जिसका फौज के अफसरों और सैनिकों पर एक-सा असर पड़ा। एक बार कुछ अफसरों ने आपसे पूछा कि जापानियों के सामने हमारी क्या स्थिति है? आपने कहा कि "जहां तक जापानियों का अपना सम्बन्ध है, वे यह खूब जानते हैं कि जब तक अंग्रेज हिन्दुस्तान में बने रहते हैं, तब तक पूर्वीय एशिया में उनका बना रहना संभव नहीं है। हिन्दुस्तान को सनिक अड्डा बनाये रखकर वे उन पर निरन्तर आक्रमण करते रह सकते हैं और यह उनके साम्राज्य के लिए कितना बड़ा खतरा है? इसलिए अपने स्वार्थ के लिए उन्हें अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से खदेड़ना ही होगा। इसलिए वे हमारी सहायता करके हम पर कृपा नहीं कर रहे हैं। हिन्दुस्तान से अंग्रेजों को खदेड़ने में हम दोनों का एक-सा स्वार्थ है। उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए और हमें अपने देश की आजादी के लिए एसा करना है।" आपन यह भी कहा कि "मुझे जैसे अंग्रेजों पर भरोसा नहीं है, वैसे ही मुझे जापानियों पर भी भरोसा नहीं है। अपने देश की आजादी के लिए किसी को किसी पर भी कुछ भी भरोसा नहीं करना चाहिए। हम कमजोर हैं। इसलिए हर कोई हमारा शोषण करना चाहता है। जापानियों के विश्वासघात से बचे रहने का सुनिश्चित उपाय अपनी शक्ति का स्वयं निर्माण करना है। जापानियों से हमें किसी संरक्षण की मांग नहीं करनी है। हमारा सुनिश्चित संरक्षण हमारी अपनी ही शक्ति है। हिन्दुस्तान में जाने पर यदि हमने यह देखा कि जापानी अंग्रेजों के

विरुद्ध और आवश्यकता पड़ने पर जापानियों के विरुद्ध भी लड़ने को तय्यार रहना चाहिए।

युद्ध-संचालन की दृष्टि से दोनों फौजों की रीति-नीति में अधिक अन्तर न होने पर भी दोनों अलग-अलग मोर्चों पर तैनात थीं। अपने मोर्चों पर आजाद हिन्द फौज लड़ाई का संचालन करने में सर्वथा स्वतन्त्र और स्वाधीन थी। जापानियों का वहां किसी भी प्रकार का कुछ भी नियंत्रण न था। "आल इण्डिया रेडियो" पर से आजाद हिन्द फौज को जापानियों की कठपुतली कहा जाता था। इस पर नेताजी कहा करते थे कि ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेनायें फ्रांस में जनरल ईसनहोवर की कमान में लड़ रही हैं। यदि वे अमरीकनों द्वारा संचालित युद्ध-नीति को स्वीकार कर सकती हैं, तो आजाद हिन्द फौज की आलोचना क्यों की जाती है?

जापानियों का साथी बनने पर भी नेताजी की काफी आलोचना की जाती थी। इस पर नेता जी कहा करते थे कि यदि पहले युद्ध में अंग्रेजों न जापानियों को साथी बनाने में कोई संकोच नहीं किया और उनकी वे इतनी प्रशंसा करते रहे, तो वे आज किस मुंह से हमारी अलोचना कर सकते हैं?

सिंगापुर में आते ही नेता जी ने फौज की कमान अपने हाथों में ले ली। आपने "सिपहसालार" का पद इसलिए स्वीकर किया था कि आप जानते थे कि सुयोग्य नेता के नियन्त्रण के बिना सेना का संगठन एवं संचालन नहीं हो सकता। बाद में आप अजाद हिन्द सरकार के प्रधान अथवा राष्ट्रपति बनाये गये, किन्तु फौज के सिपहसालार भी आप बने रहे। सिपहसालार की हैसियत से वे फौज के हर आदमी और अफसर का सहज ही विशेष ध्यान रखा करते थे। सभी प्रदेशों में अनेक ट्रेनिंग कैम्प खोलने का आपने आदेश जारी किया था। इनके खोलने का लक्ष्य अजाद हिन्द फौज को सुशिक्षित और सुसंगठित बनाना था। फौज के लोगों में स्वेच्छा से बलिदान करने की जो अदम्य राष्ट्रीय भावना

पैदा हुई थी, वह आपके ही नेतृत्व का परिणाम थी। उनमें अधिकांश देश की आजादी के लिए अपने खून की अन्तिम बूंद तक देने को तैयार थे। फौज के पास शस्त्रास्त्र की बहुत कमी थी। इस समस्या को हम पूरी तरह हल नहीं कर सके, जापान इस दृष्टि से स्वयं भी कुछ सम्पन्न न था और उसके कारखाने उसकी अपनी ही जरूरतें पूरी करने में समर्थ थे। हमारे पास ऐसा प्रदेश कहाँ था जहां कि हम अपने कारखाने खड़े करते। शहीद द्वीप सैनिक दृष्टि से ऐसे कारखानों के लिए उपयुक्त न था फिर भी नेताजी ने सेना की जरूरतों को पूरा करने में कुछ भी उठा न रखा। फौज में भरती होने के लिए लागों में इतना अधिक उत्साह था कि उसका विस्तार तथा विकास बहुत तेजी के साथ हुआ और शस्त्रास्त्र तथा युद्ध-सामग्री की आवश्यकता की कभी भी पूर्ति न हो सकी। इसलिए आजाद हिन्द फौज में भरती होने वालों को नेताजी कहा करते थे कि संसार के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है, जब कि किसी भी क्रान्तिकारी फौज के पास भरपूर युद्ध-सामग्री तथा अन्य सामान रहा हो। स्वदेश की आजादी के इस युद्ध में शामिल होने वालों को भूख-प्यास, तंगी-तकलीफ और अन्त में मौत का भी सामना करना पड़ेगा। जो हिम्मत के साथ इस संकट का सामना करने को तय्यार हों, वे ही मेरा साथ दें। मृत्यु से पहले हर सैनिक नेताजी की सेवा में "जयहिन्द" का अभिवादन भेजा करता था। भूख-प्यास, तंगी-तकलीफ और मृत्यु तक की कुछ भी परवाह न कर हममें से हर एक आजादी की भावना से अनुप्राणित होकर आगे बढ़ता था और भयानक-से-भयानक मुसीबत में भी पीछे पैर हटाने का विचार तक न करता था। यही भावना थी, जिससे सब हिन्दुस्तानियों में नये जीवन का संचार हो गया था। नेताजी अपना आधा समय नागरिक काम-काज में और आधा समय फौजी काम-काज में लगाया करते थे। सब कामों को आप बहुत गहराई और बारीकी से देखा करते थे। सब कैम्पों का आप स्वयं निरीक्षण करते और सब फौजी कामों में आप

खूब दिलचस्पी लेते थे। कूटनीतिक और सेनापति के सब गुण आपमें विद्यमान् थे। इतनी भारी जिम्मेवारी को निभाते हुए भी आपने कभी भी अपने किसी भी काम की उपेक्षा नहीं की। सब परेडों तथा प्रदर्शनों में शामिल होने और मोर्चे की ओर कूच करने वाली सेनाओं को स्वयं विदाई देने में आप कभी न चूकते थे। सब मन्त्रियों और उच्च अफसरों के साथ उपस्थित होकर आप अफसरों और सैनिकों को विदाई दिया करते थे। उनके नेता को माला पहनाकर अपने हाथों से सम्मानित करना, अन्य अफसरों से हाथ मिलाना और ट्रेन के विदा होने पर कर-तल ध्वनि से सबके प्रति शुभकामना प्रगट करना आपका स्वभाव बन गया था। अपने इस व्यवहार से आपने सबके हृदयों में अपना स्थान बना लिया था। सब यह समझते हुए मोर्चे की ओर कूच करते थे कि नेताजी की सद्भावनाएं और शुभकामनाएं उनके साथ हैं। मुझे याद है कि मुझे भी कई बार बड़े सवेरे नेताजी के साथ ऐसे समारोहों में शामिल होने का सौभाग्य मिला था। एक बार सवेरे के समय इतना अंधेरा था कि कुछ ही दूरी पर खड़े हुए आदमी का दीखना भी मुश्किल था, फिर भी नेता जी स्टेशन पर आकर उपस्थित हो गये। जैसे ही सैनिकों को मालूम हुआ कि उनके सिपहसालार स्टेशन पर उपस्थित हैं, वैसे ही "इनकलाब जिन्दाबाद," "नेताजी जिन्दाबाद," "आजाद हिन्द जिन्दाबाद" और "चलो दिल्ली" के नारों से स्टेशन गूँज उठा। गाड़ी के चलने के समय तक नेताजी वहाँ उपस्थित रहे। नेताजी का यह स्थिर आदेश था कि आजाद हिन्द फौज का कोई भी आदमी बिना पूर्व सूचना के कहीं जा नहीं सकेगा। यातायात की सारी व्यवस्था जापानियों के हाथों में थी; किन्तु आजाद हिन्द फौज को ले जाने वाली गाड़ी तब तक नहीं चल सकती थी, जब तक कि नेताजी उसका निरीक्षण नहीं कर लेते थे। कोई भी जनरल यह काम कर सकता था अथवा अपने किसी भी स्टाफ के अफसर को नेताजी इस काम के लिए भेज सकते थे; किन्तु नेताजी दिनभर काम में लगे रहने,

विविध कार्यों को सम्पन्न करने में व्यस्त रहने और मन्त्रि-मण्डल की बैठकों में शामिल होने पर भी, यहां तक कि ठीक भोजन के बाद भी, फौजों को विदाई देने के लिए दूर-से-दूर स्टेशन पर भी, जाने को सदा ही तय्यार रहते थे। इसका असर यह होता था कि हर आदमी पूरे सन्तोष तथा उत्साह के साथ अपने काम के लिए विदा होता था और अपने जीवन की आहुति देकर भी अपना काम सम्पन्न करने को तय्यार रहता था। मोर्चे पर लड़ने वाला हर आदमी पूरे साहस और दृढ़ता के साथ शत्रु का मुकाबला करता था। आजाद हिन्द फौज के जनरलों और अफसरों ने जिस चतुराई के साथ युद्ध के मोर्चे पर सेना का संचालन किया, उससे उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वे आजादी के लिए खड़ी की गई सेना के सच्चे अर्थों में सिपाही हैं। हमारी फौज के अफसरों और सिपाहियों का कार्य-तत्परता पर जापानी फौज के लोग भी चकित थे। हमारा दुश्मन हमसे सब बातों में बढ़ा-चढ़ा था। हमारी फौजों को सर्वथा विपरीत परिस्थितियों और प्रतिकूल अवस्थाओं का सामना करने को लाचार होना पड़ा। उनको अपनी पीठ पर भारी बोझ लादना पड़ा, लम्बे पड़ाव पार करने पड़े, लम्बा समय भूख तथा प्यास में बिताना पड़ा और भयानक संकटों का सामना करना पड़ा। यह सब हंसते-खेलते सहन किया गया। आजाद हिन्द फौज ने बड़ी भारी मुसीबत और संकट को गगनभेदी नारे लगाते हुए पार किया। विघ्न-बाधाओं को पैरों तले कुचलते हुए उसने सफलता के मार्ग की ओर कूच जारी रखा। यह सब नेता जी के स्फूर्तिप्रद नेतृत्व और हमारे अफसरों के अथक परिश्रम का ही परिणाम था। सफलता एक चीज है; किन्तु उसके लिए किया जाने वाला शानदार प्रयत्न उससे भी अधिक बड़ी चीज है। नेता जी ने तलवार के जोर से देश को स्वाधीन एवं स्वतन्त्र करने का प्रयत्न किया। भले ही उसमें वे सफल न हो सके; किन्तु अपना लक्ष्य उनके सामने बिलकुल स्पष्ट था। हम बाहर से स्वदेश को स्वतन्त्र करने में सफल नहीं हो सके; किन्तु हमने देखा कि देश के

भीतर उसके लिए एक और वैसा ही भीषण युद्ध चल रहा था। हममें से हर एक यह जानता है कि हमारे सारे प्रयत्न बिल्कुल ही व्यर्थ नहीं गये। हमने स्वदेश से बाहर अपना काम एक महान् नेता के नेतृत्व में शुरू किया था और अब अपने देश में अपना काम जारी रखने के लिए हमारे सामने वैसे ही महान् नेता उपस्थित हैं। हम एक मोर्चे पर जरूर पराजित हुए हैं, किन्तु युद्ध हम नहीं हारे हैं। अब उसका अन्तिम अध्याय हिन्दुस्तान में पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू के नेतृत्व में लिखा जा रहा है। हिन्दुस्तान लौटने पर हमने यह अनुभव किया कि हमने युद्ध नहीं हारा। आज नेताजी हमारे साथ नहीं हैं, किन्तु उनकी दी हुई या पैदा की हुई भावना हमारे साथ है। उनके अधूरे काम को हम अपने रुधिर की अन्तिम बूंद देकर भी अवश्य पूरा करेंगे। हममें से हर एक ने, भले ही वह सैनिक या नागरिक था, अपना सर्वस्व देकर विजय के प्राप्त होने तक युद्ध जारी रखने की शपथ ली हुई है। चाहे जो हो, हम यह नहीं भूल सकते कि नेताजी एक महान् व्यक्ति, एक कुशल राजनीतिज्ञ और एक बहादुर सेनापति थे। हम अपने नेता को और उस द्वारा कायम किये गए आदर्श को कभी भी भूलेंगे नहीं। उसी आदर्श को अपने सामने रखकर हम निरन्तर आगे बढ़ते जायंगे और स्वदेश की आजादी के युद्ध को बराबर जारी रखेंगे।

नेताजी ने सिंगापुर की सार्वजनिक सभाओं में जो भाषण दिये, उनमें से एक में जो घटना घटी उसको मैं कभी भी भूल नहीं सकता। अपना भाषण समाप्त करने के बाद नेताजी ने फण्ड के लिए अपील की। हजारों आदमी चंदा देने के लिए सामने आये। नेताजी के सामने एक लम्बी पंक्ति बन गई। हर आदमी अपनी बारी पर मंच के ऊपर जाता और नेताजी के चरणों में अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार भेंट चढ़ाकर नीचे उतर जाता। बहुत बड़ी-बड़ी रकमें दान में दी जा रही थीं। मैंने सहसा देखा कि एक मजूर स्त्री अपना चन्दा देने के लिए मंच के ऊपर चढ़ी। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे और सिर ढकने

के लिए उसके बदन पर पूरा कपड़ा भी न था। हम सब सांस रोककर उसकी ओर देखने लगे। उसने तीन रुपए के नोट निकालकर नेताजी को भेंट किये। नेताजी ने उनको लेने में संकोच किया। उस स्त्री ने नेताजी से कहा कि "मेरी यह भेंट स्वीकार कीजिये। मेरे पास जो कुछ भी है, वह आपकी भेंट है।" नेताजी फिर भी संकोच करते रहे। उनकी आंखों में से बड़े-बड़े आंसू उनके गालों पर ढुलक पड़े। उन्होंने हाथ आगे बढ़ाया और वह भेंट स्वीकार कर ली।

सभा की समाप्ति पर मैंने उनसे भेंट लेने में संकोच करने का कारण पूछा तो नेताजी ने कहा कि "मेरे लिए उसके बारे में कुछ निर्णय कर सकना अत्यन्त कठिन काम था। जब मैंने उस गरीब स्त्री की हालत को देखा, मुझे पता चला कि उसकी कुल सम्पत्ति वे तीन रुपये ही हैं। उनको लेने के बाद उसकी संभावित स्थिति की कल्पना करते ही मैं संकोच में पड़ गया। लेकिन, फिर जब उसकी भावना पर मेरा ध्यान गया और सोचा कि वह अपना सब कुछ स्वदेशकी आजादी के लिए भेंट करना चाहती है, तब मैंने अनुभव किया कि यदि मैंने इसकी भेंट स्वीकार न की, तो इसके हृदय पर चोट लगेगी और वह यह ख्याल करेगी कि मैं बड़े लोगों से बड़ी-बड़ी रकमें ही लेता हूँ। उसकी भावना को चोट न पहुँचाने के लिए मैंने उसकी भेंट स्वीकार कर ली। मेरे लिए ये तीन रुपये करोड़पतियों के लाखों रुपयों से कहीं अधिक कीमती हैं।"

नेताजी सर्वथा निर्भीक थे और अपने जीवन तथा सुख-सुविधा तक की आपको कुछ भी चिन्ता न थी। आपका जीवन जादूमय जान पड़ता था, क्योंकि मैंने स्वयं देखा कि आप कई बार मौत से बाल-बाल बचे थे। इसीलिए मैं यह मान ही नहीं सकता कि नेताजी इस संसार में नहीं हैं।......"नेताजी, जिन्दाबाद॥"

: २ :

आजाद हिन्द फौज का प्रादुर्भाव

जनवरी १९४४ की सुहावनी चांदनी में नेताजी ने कुछ अफसरों को भोजन की दावत दी। हम सब बाहर बरामदे में बैठे हुए थे। नेता जी बहुत ही प्रसन्न और हँसी-खुशी के साथ बातें करने में लगे हुए थे। एक युवा अफसर ने जिज्ञासा की भावना से नेताजी से पूछा कि हिन्दुस्तान से भाग निकलने तथा आजाद हिन्द फौज खड़ी करने का विचार आपके मन में कैसे पैदा हुआ और हिन्दुस्तान से बाहर लड़ी जाने वाली हमारी इस सशस्त्र लड़ाई के बारे में महात्मा गान्ध क्या विचार होगा ? नेताजी ने कहा कि "१९३५ के बाद यह बिलकुल साफ दीख रहा था कि विश्व-व्यापी महायुद्ध की घटायें संसार पर तेजी के साथ छा रही हैं। मुझे यह भी मालूम था कि इंग्लण्ड के इस लड़ाई में फंस जाने पर हिन्दुस्तान को भी इसमें घसीटा जायगा। तब हिन्दुस्तान के सब राजनीतिक नेताओं को जेलों में ठूंस दिया जायगा और युद्ध के दिनों में उनको उन्हीं में बन्द रखा जायगा। इस स्पष्ट भविष्य को देखते हुए मेरे सामने दो ही विकल्प थे। एक तो यह कि मैं युद्ध के लम्बे समय के लिए जेल में बंद हो जाता और दूसरा यह कि हिन्दुस्तान से भाग निकलता और इंग्लैण्ड के दुश्मनों के साथ मिलकर उनकी सहायता से स्वदेश की आजादी के लिए युद्ध करने वाली एक फौज खड़ी कर लेता। दोनों में से किसी भी एक को अपना लेना इतना आसान न था। अन्तिम फैसला करने से पहले मैंने महात्मा गान्धी से भी इस बारे में बातचीत की थी। उनके सामने संसार की परिस्थिति और हिन्दुस्तान पर पड़ने वाले उसके असर के बारे में उनके साथ चर्चा की। मैंने महात्मा गान्धी से कहा कि यदि सब नेताओं को

जेल में बंद कर दिया गया, तो उससे लाभ क्या होगा ? हिन्दुस्तान की आजादी के लिए एक ही मार्ग है कि कोई नेता यहां से भाग निकले, हिन्दुस्तान के बाहर जाकर वह एक सेना खड़ी करे और उस सेना को साथ लेकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया जाय। मैंने ऐसा कहते हुए गैरीबाल्डी और जनरल फ्रांको के उदाहरण भी उनके सामने पेश किये।

महात्मा जी ने कहा कि इस प्रकार आजादी हासिल कर सकने में मुझे यकीन नहीं है। यदि कहीं इस प्रकार देश को आजाद करने में आप सफल हो गये, तो गान्धी जी ने कहा कि, मैं पहला व्यक्ति होऊंगा जो आपको बधाई दूंगा। इससे मैंने यह अनुभव किया कि जो सत्साहस में करने जा रहा हूं, उसके लिए महात्मा जी का आशीर्वाद मुझे प्राप्त है और मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि देश का इसी प्रकार आजाद किया जा सकेगा।

महायुद्ध शुरु हुआ और जैसे कि नेता जी ने कल्पना की थी, वे तब जेल के सींकचों के पीछे बंद थे। जेल से बाहर आना उनके लिए एक विकट समस्या थी। नेताजी ने हमें बताया कि आपने कई दिनों तक इस प्रकार विचार किया और अन्त में आपने यह निश्चय किया कि गैरकानूनी नजरबंदी के विरोध में भूख-हड़ताल की जाय। एक बार उसको शुरु करने के बाद, आप जानते थे कि, उसको बीच में नहीं छोड़ा जा सकेगा और अंग्रेजों ने यदि आपको रिहा न किया, तो आपको शहीद यतीन्द्रनाथदास की तरह जेल में ही प्राण छोड़ देने होंगे। अंग्रेजों के स्वभाव को देखते हुए जेल में ही प्राणोत्सर्ग हो जाने की संभावना अधिक थी। आपने बताया कि फिर भी मैं संकट में कूद पड़ा और मैंने भूख-हड़ताल शुरू कर दी। कुछ दिन तो अंग्रेज अधिकारी टस-से-मस न हुए और ऐसा मालूम होने लगा कि वे बिलकुल भी झुकेंगे नहीं। जेल-सुपरिटेण्डेण्ट ने मुझे समझाया कि इसका कुछ भी परिणाम न निकलेगा। मैंने कुछ भी ध्यान न दिया। बारह दिन बाद मेरी हालत बहुत चिन्ता-जनक हो गई। जेल-अधिकारियों हाथ-पैर फूल गये।

मुझे रिहा किया गया और मैं घर लाया गया। यहां लाये जाने के बाद हिन्दुस्तान से भागकर किसी धुरी राष्ट्र में जाने की योजना बनाई जाने लगी

घर पर पुलिस और खुफिया पुलिस का जबरदस्त पहरा था। गैर-सरकारी तौर पर पता चला है कि पुलिस विभाग के लगभग ६२ आदमी घर की निगरानी पर तैनात रहते थे। आपने अपने को सोने के कमरे में कई दिन तक बंद रखा और सिर्फ भोजन करने के लिए एक छोटी भांजी के आने के अलावा सबका भीतर आना-जाना बंद कर दिया। उस कमरे के भी दो हिस्से कर दिये गए थे। परदे के पीछे का हिस्सा प्रार्थना के लिए और अगला हिस्सा सोने व खाने के काम के लिए था। अन्त में आप पहरेदारों की आंखों में धूल झोंककर कैसे घर से निकल भागे और कैसे अफगानिस्तान पहुंच गये—यह आज भी गुप्त रहस्य बना हुआ है।

अफगानिस्तान से वहां के जर्मन राजदूत की सहायता से आपने जर्मनी जाने का इन्तजाम किया, वहां जाकर आप हिटलर से मिले और आपने उसके सामने जर्मन अधिकृत यूरोप में रहने वाले हिन्दुस्तानियों तथा हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों की एक सेना खड़ी करने का प्रस्ताव पेश किया। १९४२ के जनवरी मास के शुरू में जर्मनी में "फ्री इण्डिया लेजान" के नाम से आजाद हिन्द फौज खड़ी की गई।

पूर्वी एशिया में महायुद्ध की आग भड़कने पर आप बर्लिन-स्थित जापानी राजदूत से मिले और उसको आपने कहा कि वह जापान सरकार को जापान-अधिकृत देशों में रहने वाले हिन्दुस्तानियों और युद्ध-बन्दियों में से वैसी ही फौज खड़ी करने के लिए प्रेरित करे। जापान सरकार को यह विचार बहुत पसन्द आया और पूर्वीय एशिया में हिन्दुस्तानियों की फौज खड़ी करने का काम शुरू कर दिया गया।

जापानी मेजर जनरल (जो कि तब कर्नल ही थे) पामामोना, जो बर्लिन के जापानी दूतावास में एक अफसर थे, नेता जी को पूर्वीय

एशिया में आजाद-हिन्द फौज के संगठित किये जाने के बारे में सब समाचार देते रहते थे। मई १९४३ में जब नेताजी जापानी पनडुब्बी से पेनांग पहुंचे थे, तब मेजर जनरल पामायोना भी आपके साथ आये थे और उनको ही जापानियों और हिन्दुस्तानियों के बीच मध्यस्थता करने वाले संगठन शिकारी-विक्यान का अध्यक्ष बनाया गया था।

इस प्रकार देश की आजादी के लिए लड़ने वाली फौज खड़ी करने का विचार नेताजी को सूझा और उसको आपने पूर्ण रूप दिया।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रधान विषय पूर्वीय एशिया में घटी हुई घटनायें हैं। मैं सचाई और ईमानदारी के साथ उन सब घटनाओं का वर्णन करना चाहता हूं। उनमें मुख्य घटनायें ये हैं—जनरल मोहनसिंह के नेतृत्व में पहली आजाद-हिन्द फौज का संगठन होना, उसका भंग किया जाना, मिलिटरी व्यूरो के डाईरेक्टर मेजर जनरल (तब लेफ्टिनेण्ट जनरल) जे० के० भोंसले के आधीन उसका पुनर्गठन किया जाना, नेताजी का आगमन, बर्मा के युद्ध में आजाद-हिन्द फौज का हिस्सा और अन्त में रंगून में अंग्रेज सेना के सामने आत्म-समर्पण।

१ आजाद-हिन्द फौज के संगठन का श्रीगणेश

आजाद-हिन्द फौज के वास्तविक संगठन की चर्चा करने से पहले उन कारणों पर कुछ प्रकाश डालना जरूरी है, जिनसे हिन्दुस्तानी अफसर और सिपाही उसमें शामिल होने को प्रेरित हुए।

२ कमीशन-प्राप्त हिन्दुस्तानी अफसर

हिन्दुस्तानी फौज को जब हिन्दुस्तानी बनाया जाने लगा था और देहरादून में सैनिक विद्यालय की स्थापना की गई थी, तब कमीशन प्राप्त करने के लिए आने वाले उमीदवारों को कहा जाता था कि हिन्दुस्तानी फौज़ के अंग्रेज अफसरों के समान ही वेतन, भत्ता, रहने की सुविधा और दरजा आदि दिया जायगा। लेकिन, इनमें से एक भी बात पूरी

नहीं की गई। हिन्दुस्तानी टुकड़ियों पर उनको केवल पलटन-कमांडर बनाया जाता था, जब कि गैर हिन्दुस्तानी फौजों में नीचे दरजे के अंग्रेज अफसरों के हाथों में भी कम्पनियों की कमान दे दी जाती थी।

उसी दरजे के कमीशन-प्राप्त हिन्दुस्तानी अफसरों का वेतन भी ब्रिटिश अफसरों की अपेक्षा बहुत कम था। इसका कारण यह बताया जाता था कि अंग्रेज अफसर अपने घरों से दूर आकर काम करते हैं। कमीशन-प्राप्त हिन्दुस्तानी अफसरों को जब मलाया भेजा गया, तब उन्होंने यह दावा पेश किया कि, वे भी अपने घरों से दूर आकर काम कर रहे हैं, इसलिए उनको भी ब्रिटिश अफसरों के समान वेतन मिलना चाहिए। उनकी मांग पर कुछ भी ध्यान न दिया गया। उनको जो वेतन मिलता था, वह लैफ्टिनैण्ट के लिए लगभग चार सौ होता था, जब कि एक अंग्रेज लैफ्टिनैण्ट को छः सौ के लगभग मिलता था। एक ही टुकड़ी में एक ही पद पर नियुक्त किये जाने पर भत्ते में भी काफी अंतर होता था। उदाहरण के लिए एडजूटैण्ट क्वार्टर मास्टर के पद के लिए अंग्रेज अफसर को एक सौ रुपया मिलता था और हिन्दुस्तानी अफसर को सिर्फ साठ रुपये दिये जाते थे। इस प्रकार हिन्दुस्तानियों को सदा ही निचले दरजे पर रखा जाता रहा। इस पर उनमें काफी असन्तोष पैदा हो गया।

मलाया में अधिकतर क्लबों में हिन्दुस्तानियों को सदस्य तक न होने दिया जाता था। अंग्रेज अधिकारी सदा ही हिन्दुस्तानियों को यह बताने की कोशिश किया करते थे कि वे वहां के लोगों के जान-माल की रक्षा करने आये हैं। उनमें यूरोपियन भी शामिल थे, किन्तु अपनी रक्षा के लिए वहां जाने वाले हिन्दुस्तानियों को वे अपने क्लबों में शामिल नहीं होने देते थे।

फिडरेटड मलाया स्टेट्स के रेलवे-अधिकारियों ने एक हुक्म जारी किया हुआ था कि एशिया के लोग यूरोपियन के साथ एक डिब्बे में यात्रा नहीं कर सकते। एक ही फौज में एक ही ओहदे पर नियुक्त

हिन्दुस्तानी भी यूरोपियन के साथ यात्रा नहीं कर सकता था।

एक हिन्दुस्तानी सिपाही को मलाया में केवल २५) प्रतिमास मिलते थे। और अंग्रेज सिपाही को ७५)के करीब मिलता था। लड़ाई में आम तौर पर हिन्दुस्तानी सिपाही अंग्रेज सिपाही से कहीं अधिक वहादुरी से लड़ता था इसलिए वेतन.में यह भारी अंतर बहुत अखरने वाला था। उस पर काफी असन्तोष और नाराजगी जाहिर की जाती थी। भोजन, रहन-सहन और साधारण व्यवहार में और भी अधिक भेद-भाव एवं पक्षपात से काम लिया जाता था। हिन्दुस्तानी आमतौर पर यह सोचा करते थे कि वे अंग्रेज टामी से कहीं अधिक हिम्मत और बहादुरी से लड़ते हैं, तोभी उनके साथ सौतेली मां का-सा व्यवहार क्यों किया जाता है ?

महायुद्ध के शुरू होते ही हिन्दुस्तानी नेताओं ने एकमत से उसको साम्राज्यवादी युद्ध कहा था, जिसका उद्देश्य अंग्रेजों द्वारा अपने निहित स्वार्थों की रक्षा करना था। ऐसे युद्ध में हिन्दुस्तान कुछ भी हिस्सा लेना नहीं चाहता था। उन्होंने यह भी मांग की थी कि उसमें हिन्दुस्तानी फौजों से काम लिया जाना चाहिए। फौज पर उनका कोई काबू न था। इसलिए अंग्रेज जब और जहां चाहते, तब वहां उससे काम ले लेते थे। अंग्रेज हिन्दुस्तानी सिपाही से कहा करते थे कि यह युद्ध धुरी राष्ट्रों के हाथों से प्रजातन्त्र और आजादी की रक्षा करने के लिए लड़ा जा रहा है। शुरू में सीधे-सादे हिन्दुस्तानी सिपाही ने इस पर यकीन कर लिया; किन्तु धीरे-धीरे उसको इस पर सन्देह होने लगा। विदेशों में जाने पर जब उसने अपने प्रति भेद-भाव और पक्षपात का सलूक होते देखा, तब वह सोचने लगा कि जिनकी आजादी के लिए वह अपना खून बहा रहा है, वे ही उसके साथ ऐसा सलूक क्यों करते हैं ? तब उसे पता चला कि वह तो एक गुलाम है,जिसे अपने मालिक के साम्राज्य की रक्षा के लिए अपना खून बहाना पड़ता है और इस प्रकार वह अपना गुलामी के बंधन अपने ही हाथों मजबूत बनाने में लगा हुआ है।

हिन्दुस्तानी सिपाही के मन में यह उधेड़-बुन चल रही थी कि इस

बीच सिंगापुर के अभद्य दुर्ग का पतन हो गया। तब उसने यह सोचा कि यदि उसको प्रजातन्त्र और आजादी की रक्षा के लिए लड़ना ही है, तो वह अपने प्रजातन्त्र और आजादी की रक्षा के लिए क्यों न लड़े? सिंगापुर के पतन के समय अधिकांश हिन्दुस्तानी सिपाहियों की मनोभावना इसी दिशा में काम कर रही थी।

मलाया में भगदड़ मचने पर, जिसका संक्षिप्त हाल आगे दिया गया है, जब हिन्दुस्तानियों ने देखा कि गोरे लोग एशिया के निवासी जापानियों के सामने अपनी जान बचाने को कैसे भागते फिरते हैं, तब उनकी नजरों में अंग्रेजों की प्रतिष्ठा और भी कम हो गई और उनके दिल में से जातिगत हीन भावना का सर्वथा अन्त हो गया। उन्होंने सोचना शुरू किया और उनका यह सोचना बिलकुल ठीक ही था कि वे वैसे ही अच्छे सिपाही हैं, जैसे कि टामी हैं और उनको भी अंग्रेजों की तरह सर्वथा स्वतन्त्र और स्वाधीन होने का पूरा अधिकार है।

३ मलाया का पतन

जापानियों की गति-विधि से यह बिलकुल स्पष्ट था कि पूर्वीय एशिया में भी महायुद्ध की आग फैले बिना न रहेगी। फिर भी मलाया में रहने वाले अंग्रेज अधिकारी, फौजी और गैरफौजी दोनों ही, अपने को सर्वथा सुरक्षित माने हुए थे। इसलिए मलाया की रक्षा के लिए किये गए प्रयत्न पूरे मन के साथ नहीं किये गए थे। वहां भेजी गई फौजें और उनके पास की युद्ध-सामग्री स्थिति को देखते हुए सर्वथा अपर्याप्त थी। सिंगापुर के पतन पर मि० चर्चिल ने पार्लमेण्ट में यह कबूल किया था कि मलाया में फौज और युद्ध-सामग्री, विशेष कर हवाई सामान पर्याप्त मात्रा में इसलिए न भेजा जा सका कि उसकी अन्य स्थानों में कहीं अधिक जरूरत थी। युद्ध का जब सामना करना पड़ा, तब सब घबरा उठे और अन्त तक यह घबराहट बनी रही।

अंग्रेजी फौज के कमाण्डर इन चीफ एयर मार्शल ब्रूक्स पोपहम ने

मलाया की जबरदस्त रक्षा के लिए हवाई फौज को सब हवाई अड्डों पर जहाँ-तहाँ तैनात कर दिया था। इसीलिए फौज को भी इन अड्डोंकी रक्षा के लिए चारों ओर बखेर दिया गया था। जापानियों के लिए इस बिखरी हुई फौज का सामना करना और उसको पराजित करना आसान हो गया। जापानियों के वेग को रोकने के लिए एक जगह फौज का इकट्ठा करना अंग्रेज कमाण्डर के लिए संभव न रहा। ब्रुक्स पोपहम की योजना मजबूत हवाई ताकत के बिना सफल नहीं हो सकती थी। उसके बिना वह बुरी तरह नाकामयाब रही।

युद्ध शुरू होने के साथ ही बहुत-सी हवाई सेना को निकम्मी बना दिया गया और बाकी को भी जापानियों ने अपना काम नहीं करने दिया। मलाया की सारी लड़ाई में हवाई सेना कहीं भी पदाति सेना का सहायता न कर सकी। जब कि लड़ाई प्रायः खात्मे पर ही थी तब लगभग साठ लड़ाकू हवाई जहाज सिंगापुर की हवाई फौज की सहायता के लिए भेजे गये थे। वे सब एक जगह इकट्ठे भी न हो सके कि सिंगापुर का पतन हो गया और वे धरे-धराये जापानियों को भेंट कर दिय गए।

'प्रिंस आफ वेल्स' और 'रिपल्स' नाम के दो जंगी जहाजों के डुबो दिये जाने के बाद नौशक्ति तो प्रायः बेकार ही हो गई थी। मॉसन के किनारे पर हुई साधारण-सी मुठभेड़ के अलावा मलाया में कहीं भी नौ-सेना ने अपना कर्तब नहीं दिखाया। इस प्रकार हवाई सेना और नौ सेना के बेकार हो जाने से जापानियों के लिए जहां उन्होंने चाहा और जब चाहा अपनी फौज को पहुंचाना कठिन न रहा। पीछे हटती हुई अंग्रेजी फौज को उन्होंने सभी स्थानों पर सहज ही में मात दे डाली।

जापानियों के हमले का सामना करने के लिए मलाया में पैदल सेना भी काफी न थी। उनमें यान्त्रिक टुकड़ियां तो थी ही नहीं। इसलिए जापानी टैंकों के लिए अंग्रेजी-रक्षा-पंक्ति को वेधना कुछ भी मुश्किल न रहा। फौज की बहुत-सी टुकड़ियों को मलाया में ही यत्र-तत्र से

सुसज्जित किया गया था, किन्तु मोटर-यान उनके पास बहुत ही कम थ और नये यान्त्रिक-शस्त्रों से काम लेने का भी उन्हें अभ्यास न था। रक्षा-पंक्ति के बनाने में अधिक समय लग गया था और उनको सामूहिक तौर पर बड़े पैमाने पर कोई ट्रेनिंग नहीं दी गई थी। जंगल-युद्ध की ट्रेनिंग की तो प्रायः उपेक्षा ही की गई थी। उनके मुकाबले में जापानी जंगल-युद्ध में पूरे निष्णात थे और उन जंगलों को पार करने में वे सदा ही बाजी मार ले जाते थे, जिनका पार करना अंग्रेजी सेना के लिए संभव न होता था। ऐसी चतुर जापानी सेना का मलाया में अंग्रेजी सेना को सामना करना पड़ा। उसे न तो आराम मिला और न कुछ राहत ही मिली। जापानी हर समय नई फौज लाकर मैदान में खड़ी कर सकते थे।

४ सहयोग का अभाव

मलाया में जिन अंग्रेज सिविलियनों की हुकूमत कायम थी, वे अपने को खुदा का बेटा मानकर फौजियों से सख्त नफरत करते थे। उनको वे गंदगी का घर मानते थे। फौजी अधिकारियों के साथ सहयोग करने के बजाय वे उनके कामों में आम तौर पर अड़चनें पैदा किया करते थे उनके इस हठी और अड़ियल स्वभाव की कुछ बातें ऊपर दी जा चुकी हैं। मलाया की लड़ाई के दिनों में भी फौजी रेलगाड़ियां आम तौर पर घण्टों रुकी पड़ी रहती थीं। कारण यह होता था कि इंजिन की सफाई आदि करने के लिए भी कुली आदि का इन अधिकारियों की ओर से कुछ भी इन्तजाम नहीं किया जाता था। मजूरों या कुलियों के बारे में उन पर कभी भी भरोसा नहीं किया जा सकता था।

हवाई, पैदल और नौ-सेना में भी आपस के सहयोग का नितान्त अभाव था। मलाया की रक्षा के लिए जो हवाई सेना सबसे अधिक महत्त्व रखती थी, वह पैदल सेना की हमेशा उपेक्षा किया करती थी। इसे पैदल सेना वाले बहुत बुरा मानते थे। युद्ध की घोषणा होने पर

जब युद्ध शुरू हुआ, तब हवाई सेना का कहीं पता भी न रहा। उस पर इसके लिए तानाकशी किया करते थे। नौ-सेना इतनी नगण्य थी कि उसकी किसी का भी चिन्ता न थी। "प्रिंस आफ वेल्स" और "रिपल्स" के इस प्रकार डुबो दिये जाने का कारण आपस के सहयोग का यही अभाव था।

हिन्दुस्तानियों, आस्ट्रेलियनों और अंग्रेजों में जातिगत पक्षपात इतना तीव्र हो उठा था कि आपस में गुत्थम-गुत्था होने और उनमें शस्त्रों तक के इस्तेमाल होने की भी कई घटनायें घट चुकी थीं। युद्ध के दिनों में यह भेद-भाव और भी तीव्र हो गया। परिणाम यह हुआ कि सेनाओं में सहयोग की अपेक्षा मनमुटाव ही अधिक था।

५ कमजोर नेतृत्व

मलाया में फौजी नेतृत्व भी निस्सन्देह बहुत कमजोर था। जापानी नौ-सेना की टुकड़ियां जब सिंगापुर और कोटामारु के किनारे पर पहुंच गईं, तब अंग्रेज अफसरों ने सिंगापुर के दफ्तरों में आराम से बैठकर इस पर बहस शुरू की कि मेटाडोर फ़ौजी योजना को कार्य में परिणत किया जाय या नहीं? यह योजना बहुत पहले ही तय्यार कर ली गई थी। इसके अनुसार युद्ध होने पर अंग्रेजी फौजों को थाईलैण्ड यानी स्याम में पहुंच कर वहां ही जापानियां का सामना करना था। बहस के बाद एक नई सुधारी हुई योजना के अनुसार काम करने का निश्चय किया गया। इस योजना में न तो बहादुरी से काम किया गया था और न दूरदर्शिता से ही। अधकचरे मन से तय्यार की गई योजनाओं की तरह यह भी पूरी तरह नाकामयाब रही। फौजी नेतृत्व की कमजोरी तो नंगे रूप में प्रकट हो गई, जब कि युद्ध होने पर कुछ ही दिनों में अंग्रेजों को एक जनरल और उसके आधीन तीन ब्रिगेड कमाण्डरों को बरखास्त करने को लाचार होना पड़ा। एक ब्रिग्रेडियर के आधीन सेना को जब जापानियों ने छिन्न-भिन्न कर दिया, तब वह पागल-सा हो गया। तब

उसे कई अन्य ब्रिगेडों की सहायता भी दी गई, किन्तु वह हारता ही गया। फलस्वरूप हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने जान लिया कि सिंगापुर के पतन का कारण अंग्रेजों की ही कमजोरी थी। अंग्रेजों के लिए लड़ने के कारण ही उनको इतना अपमान सहन करना पड़ता है। इसलिए इस पर कुछ भी अचरज नहीं होना चाहिए कि उन्होंने यह तय कर लिया कि भविष्य में वे अंग्रेजों के गुलाम न बने रहेंगे।

मलाया की सारी लड़ाई में हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने सब तरह की विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए हवाई सेना की सहायता के बिना बड़ी हिम्मत के साथ दुश्मन का सामना किया। अपने अंग्रेज कमाण्डरों की भयानक भूलों के कारण उनको भीषण यातनाओं का सामना करना पड़ा, फिर भी वे धैर्य और साहस के साथ निष्ठापूर्वक लड़ाई में लगे रहे, हालांकि अंग्रेज कमाण्डरों को सुरक्षा के लिए सिंगा-पुर के किले में पहुंचाया जाता रहा। मलाया की थका देने वाली लम्बी लड़ाई को लड़ते हुए हिन्दुस्तानी दस्ते भी आखिर में सिंगापुर आगये। हालांकि वे सबसे पीछे सिंगापुर पहुंचे थे, किन्तु सिंगापुर में जापानी हमलों का सामना करने के लिए सबसे पहले उनको ही मोर्चे पर भेजा गया। तब भी वे बहुत बहादुरी के साथ लड़े। किन्तु उनके साथी अमेरिकन सिपाहियों ने अपने स्थानों से भागकर शहर की अंधाधुंध लूट और अनैतिक कार्यों में भाग लेना शुरू कर दिया, जिसका सिलसिला उनके साथियों ने पहले ही जारी कर दिया था।

इस सारी निष्ठा और बहादुरी का इनाम उनको क्या मिला? अंग्रेज कमाण्डर जनरल पर्सीवल ने बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण कर दिया और बिना कुछ कहे-सुने ही हिन्दुस्तानी फौजों को जापा-नियों के हाथों में सौंप दिया।

अपने चातुर्यपूर्ण प्रचार के सहारे अंग्रेजों ने यह मिथ्या कहानी गढ़ ली थी कि गोरे लोग लड़ने में बड़े बहादुर और अजेय हैं। हर हिन्दु-स्तानी सिपाही भी इस कहानी पर यों ही विश्वास किये हुए था। वह

यह भी माने हुए था कि गोरा साहब कोई गलती नहीं कर सकता। मलाया में यही साहब लोग अपनी जान को बचाने के लिए भयभीत हुए भगते नज़र आए। गोरे साहब की प्रतिष्ठा हवा होगई। अफसरों ने भी तो अपनी कौम की लाज न रखी। लड़ाई में अफसरों को अपने आदमियों का नेतृत्व करना चाहिए था; लेकिन वे तो जिन्दा ही अपने को जापानियों के हाथों में सौंपने को इतने उतावले जान पड़ते थे कि वे सदा ही इसी निमित्त से अपने को हिन्दुस्तानी सिपाहियों के बहुत आगे रखते थे। वे लड़ाई में नहीं, किन्तु आत्म-समर्पण करने में अपने आदमियों का इस प्रकार नेतृत्व करते जान पड़ते थे। ऐसा करने के लिए उन्होंने बहुत-से कारण भी इकट्ठे कर लिये थे।

अंग्रेज अफसरों और उनके आदमियों को नैतिकता से गिराने के लिए जापानियों ने ऐसे उपायों से काम लेना शुरू कर दिया था, जिनको आजकल की सभ्यता की दृष्टि से 'पाशविक' कहा जा सकता है। कैदियों को पेड़ों से बांधकर एक एक करके उनके साथियों के सामने किरच से भेदा जाता था। अनेक बार तो हिन्दुस्तानी कैदियों से कहा जाता था कि वे उन पर किरच से वार करें! इनकार करने पर उनके साथ भी वैसा ही पाशविकता की जाती थी। जापानी सिपाहियों को कुछ ऐसा शिक्षण दिया गया था कि वे ऐसा करने में खुशी मनाते थे और इसे वे मनबहलाव के लिए बहुत पसंद करते थे। जब एक ओर यह तमाशा हो रहा होता था, तब कुछ कैदियों को इसलिए छोड़ दिया जाता था कि वे जाकर अंग्रेज सेनाओं में इस पाशविकता का हाल सुनायें। जिससे अंग्रेज अफसर और सिपाही उत्तेजित होकर सुध-बुध भूल जाते थे।

हिन्दुस्तानियों के साथ जापानी दूसरी तरह का बरताव करते थे। जब हिन्दुस्तानी सिपाही युद्ध-बन्दी बनाये जाते थे, तब जापानी उन पर कुछ ध्यान ही न देते थे अथवा उनको निरस्त्र करके जापानियों के साथ रहने या अंग्रेज सेना में वापिस लौट जाने

की सुविधा दे देते थे। जापानी उनसे कहा करते थे कि वे उनको अपना भाई मानते हैं, दुश्मन नहीं, और वे अंग्रेजों के हाथों से हिन्दुस्तान को आजाद करने में सहायता पहुंचाने के लिए यह लड़ाई लड़ रहे हैं। उनके साथ अमूमन बहुत अच्छा सलूक किया जाता था। इसका असर बहुत अच्छा पड़ा और हजारों हिन्दुस्तानी जापानियों के साथ मिल गये।

जापानियों ने इस तेजी और आसानी से अंग्रजों को पूर्वीय एशिया म पराजित कर दिया कि अंग्रेजों या गोरों के अजेय और बहादुर होने के बारे में गढ़ी गई कहानी की कलई खुल गई। हिन्दुस्तानियों को विश्वास हा गया कि जापानी बहुत आसानी से अंग्रेजों पर विजय प्राप्त कर लेंगे। मलाया में रहने वाले एशियाई लोगों पर भी ऐसा ही असर पड़ा। अंग्रेज आम तौर पर अपनी बहादुरी की शेखी बघारा करते थे और जापानियों से उनकी रक्षा करने की हामी भी प्रायः भरा करते थे, किन्तु मलाया के पतन से उनको भी अंग्रेजों की कमजोरी का पता चल गया।

मलाया की लड़ाई के दिनों में बरखास्त किये गए ब्रिगेडियरों और कप्तान-अफसरों का सिंगापुर एक 'आश्रम' ही बन गया था। वे तो सदर मुकाम में आलसियों का-सा जीवन बिता रहे थे और मोर्चे पर लड़ने वाली फौजों को उनकी भूलों का दुष्परिणाम भोगना पड़ रहा था। अंग्रेजों के फौजी नेतृत्व की कहानी बहुत ही खेदपूर्ण है और मलाया का पतन एवं पराजय मुख्यतः उन्हीं की मूर्खताओं का दुष्परिणाम था।

मलाया में अधिकतर फौजी दस्तों को रबर की खेतियों में रखा गया था। इसका असर बहुत बुरा होता था। इनका सारा समय सुरक्षा-पंक्तियां बनाने में ही लग गया था। इससे उनकी मनोवृत्ति कूप-मण्डूक की-सी बन गई थी। वे अपने को उन खाइयों में बारूद-खानों के भरोसे सर्वथा सुरक्षित माने हुए थ और यह समझे हुए थ कि जापानी उनको भेदकर आगे न बढ़ सकेंगे। इस रक्षात्मक

लड़ाई लड़ने पर ही पूरा भरोसा रखने का परिणाम यह हुआ कि जापानी कहीं-न-कहीं तो उस रक्षा-पंक्ति को भेदकर आगे बढ़ जाते और अंग्रेजों की रक्षा-चौकियां धरी-की धरी रह जातीं। इससे उनकी नैतिकता को बहुत गहरी चोट लगती अपने कमाण्डरों के व्यवहार से उनके दिल पहले ही टूट-से गये थे। अपनी मूर्खता के दुष्परिणामों से यद्यपि अफसर अनभिज्ञ बने हुए थे, किन्तु आम सिपाही से यह छिपा न था कि सारा खेल गुड़-गोबर हो रहा है। निष्फल प्रतिरोध या प्रत्याक्रमण करने में सैंकड़ों की जानें व्यर्थ कुर्बान की जा रही थीं। बिना किसी प्रतिरोध के एक-एक करके फौजी चौकियां भी छोड़ दी जाती थीं, जिनको बड़ी मेहनत से तय्यार किया जाता था। यह लम्बी और निरन्तर लड़ाई, जिसका कुछ भी लाभ न था, यों ही थका देने और उत्तेजित बना देने वाली थी। दुश्मन के हवाई हमले निरन्तर जारी थे। जो अंग्रेज अफसर जिन्दा जापानियों के हाथों में पड़ जाना चाहते थे, उन्होंने आत्म-समर्पण करने में पहले की। इससे फौजियों के नैतिक साहस का बांध भी टूट गया और उनके लिए शत्रु के आक्रमण का सुसंगठित प्रतिरोध करना संभव न रहा। यही कारण है कि सिंगापुर में एक लाख अंग्रेज सेना ने तीस हजार जापानियों के सामने हथियार डाल दिये।

: ३ :

आजाद हिन्द आन्दोलन

हिन्दुस्तान के पुरान क्रान्तिकारी श्री रासबिहारी बोस वर्षों से जापान में थ और जापानी देशभक्त श्री तोयामा की संरक्षकता में निर्वासित का-सा जीवन बिता रहे थे। पूर्वीय एशिया में युद्ध शुरू होने पर जापानी सेना के इम्पीरियल जनरल स्टाफ के चीफ फील्ड मार्शल सुगीयामा से श्री बोस मिलने गये और उससे उन्होंने कहा कि इस युद्ध से वह सुनहरी अवसर उपस्थित हो गया है, जब अंग्रेजी राज से हिन्दुस्तान को सहज में आजाद किया जा सकता है। उन्होंने उससे यह भी कहा कि पूर्वीय एशिया में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को संगठित होकर पूर्व से अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने में जापानियों को सहायता करनी चाहिए। जापानी सेनाओं द्वारा अधिकृत प्रदेशों में हिन्दुस्तानियों के साथ शत्रुओं के नागरिकों का-सा दुर्व्यवहार न करने का हुक्म जारी करने का भी उन्होंने उससे निवेदन किया। सुगीयामा श्री बोस से सहमत न हुआ। उसने कहा कि हिन्दुस्तान अंग्रेजी साम्राज्य का ही एक हिस्सा है और वह जापान का दुश्मन है। इसलिए सब हिन्दुस्तानियों के साथ दुश्मन के नागरिकों का-सा व्यवहार किया जायगा।

इस पर श्री बोस डिपुटी वार मिनिस्टर (युद्ध उपसचिव) से मिले और उसको उन्होंने अपनी बात मानने के लिए राजी कर लिया। फल-स्वरूप श्री रासबिहारी बोस के सभापतित्व में आजाद हिन्द संघ (इण्डियन इण्डिपेण्डेंस लीग) की जापान में स्थापना की गई और पूर्वीय एशिया म रहने वाले हिन्दुस्तानियों को संगठित करने का निश्चय किया गया।

थाईलैण्ड (स्याम) पर जापान का कब्जा हो जाने पर स्वामी सत्यानन्द पुरी ने कुछ हिन्दुस्तानियों के सहयोग से बैंकौक में 'आजाद

हिन्द संघ' की स्थापना की। जापानी सेनाओं के साथ मलाया में संघ के प्रतिनिधि भी गये और वे स्थान-स्थान पर संघ की शाखायें कायम करते गये। मलाया की सभी रियासतों में संघ की शाखायें कायम हो गई। बाद में सारे पूर्वीय एशिया, फिलिपाइन्स, थाईलैण्ड, डच ईस्ट इण्डीज, फ्रेंच इण्डोचाइना, शंघाई, बर्मा, कोरिया और मंचूरिया में भी संघकी शाखाओं का जाल फैल गया। हिन्दुस्तान के प्रति इन सबकी निष्ठा थी और श्री रासबिहारी बोस सबके नेता थे।

श्री रासबिहारी बोस का यह काम बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण था। जापानी जिस प्रदेश पर भी कब्जा करते थे, उसमें लूट-पाट और अनैतिकता का राज आ जाता था। जिनको वे "दुश्मन नागरिक" मान लेते थे, उनके साथ वे अत्यन्त पाशविकता से पेश आते थे। यूरोपियनों, और चीनियों को इसका सबसे अधिक शिकार होना पड़ा। जापानी सिपाहियों को 'पशु' ही कहना चाहिए, किन्तु उन्होंने कभी भी किसी हिन्दुस्तानी स्त्री के सतीत्व पर आंख नहीं उठाई। अनेक यूरोपियन और चीनी स्त्रियों ने भी साड़ी और दुपट्टे का वेश धारण कर अपने को हिन्दुस्तानी बताकर जापानियों के हाथों से अपमानित होने से बचा लिया। जापानियों को यह हुक्म दिया गया था कि वे किसी भी हिन्दुस्तानी स्त्री को अपमानित न करें। इन कमियों और कमजोरियों के होते हुए भी जापानी बहादुर सिपाही है और वह अपने उच्च अफसरों का हुक्म बहुत सचाई के साथ मानता है। जापानी सिपाही आम तौर पर हिन्दुस्तानियों के घरों में आने और उनसे बातचीत करने की कोशिश करते थे। अधिकतर उनमें सिवा जापानी के और कोई भाषा न जानते थे। वे हिन्दुस्तानी के यहां जाते और कहते कि "गान्धी का?" शुरू में तो उनको यह बात कुछ समझ में न आती थी, किन्तु बाद में पता चला कि उनके इस प्रश्न का मतलब यह था कि "क्या तुम महात्मा गान्धी के अनुयायी हो?" यदि उत्तर 'हाँ' में मिलता, तो वे भी 'हां' कहकर हाथ मिलाकर या सिर झुकाकर लौट जाते थे।

कप्तान मोहनसिंह

चौदहवीं पंजाब रेजिमेण्ट की पहली बटालियन के साथ कप्तान मोहनसिंह का सम्बन्ध था। लड़ाई लड़ते-लड़ते ११ दिसम्बर १९४१ को कप्तान मोहनसिंह कुछ अफसरों के साथ अपनी बटालियन से जुदा हो गये। इनमें कप्तान मुहम्मद अकरमखां और कमान-अफसर कर्नल एल. बी. फिट्जपैट्रिक भी शामिल थे। कमान अफसर घायल होकर चलने में भी असमर्थ हो गया था। मलाया के घने जंगलों में कप्तान मोहनसिंह और कप्तान मुहम्मद अकरमखां कई दिनों तक उसको साथ लिये-लिये फिरते रहे। अन्त में उन्होंने अलोरस्टर में एक मसजिद में शरण ली। इस बीच जापानी बख्तरबंद मोटरों और बाईसिकलों पर सवार दस्ते सिंगापुर की ओर तेजी के साथ आगे बढ़ गये थे।

अलोरस्टर में कप्तान मोहनसिंह का परिचय सरदार प्रीतमसिंह नाम के एक क्रान्तिकारी सिख के साथ हुआ, जिसको बैंकौक के आजाद हिन्द संघ की ओर से आगे बढ़ती हुई जापानी सेना के साथ भेजा गया था। इसी स्थान पर कप्तान मोहनसिंह जापान के खुफिया विभाग के मेजर फुजीवारा से भी मिले। दोनों ने कप्तान मोहनसिंह से आजाद हिन्द फौज व संघ में शामिल होने का अनुरोध किया। काफी विचार-विनिमय के पश्चात् कप्तान मोहनसिंह ने आजाद हिन्द आन्दोलन में शामिल होना और जापानियों का साथ देना मंजूर कर लिया।

कप्तान मोहनसिंह के आत्म-समर्पण करने से पहले जापानियों ने इण्डियन मेडिकल अफसर कप्तान पट्टनायक को गिरफ्तार कर लिया था। उससे अनुरोध किया गया था कि वह हिन्दुस्तानी सिपाहियों को आजादी की लड़ाई के लिए संगठित करे। कप्तान पट्टनायक ने अपने को डाक्टरी लाइन का आदमी बताकर वैसा करने से इनकार कर दिया। यह कहकर कि उसमें देशभक्ति की भावना का अभाव है, जापानियों ने उसको बुरी तरह मारा-पीटा था।

कप्तान मोहनसिंह ने देखा कि किन कठिनाइयों का हिन्दुस्तानी सिपाहियों को सामना करना पड़ रहा था और गोरे मालिकों ने मलाया में हिन्दुस्तानी जनता को किस बुरी हालत में असहाय बनाकर छोड़दिया था। यह सब देखकर उसने अनुभव किया कि अब सर्वोत्तम उपाय जापानी सेनाओं का साथ देकर यथासम्भव अधिक-से-अधिक हिन्दुस्तानी सिपाहियों के जीवन की रक्षा करना और मलाया की हिन्दुस्तानी जनता को सहायता पहुंचाना है। उसने कुछ अफसरों और सिपाहियों को अपनी कमान में काम करने के लिए संगठित किया। इसका नाम "फुजीवारा किकान" रखा गया। ये लोग जापानी सेना के साथ-साथ आगे बढ़ते हुए हिन्दुस्तानी सिपाहियों को एकत्रित करते, हिन्दुस्तानी जनता के लिए भोजन-सामग्री जुटाने, घायल तथा बीमारों को राशन पहुंचाने और जंगलों में पीछे छोड़े गये आहत अथवा भटकते हुए लोगों को ढूंढ़ निकालने के लिए खोज करने वाली टुकड़ियों को जुटाने में उचित सहायता दिया करते थे।

कुआला लम्पूर में हिन्दुस्तानी सिपाहियों को इकट्ठा करने के लिए केन्द्र कायम किया गया था। शहर में भी कोई पांच हजार हिन्दुस्तानी सिपाही जमा हो गए थे। उनके खाने-पीने और रहने का इन्तजाम किया गया।। शहरी हिन्दुस्तानियों ने भोजन-सामग्री और दवा-दारू का प्रबन्ध किया। जापानियों ने भोजन-सामग्री, दवा-दारू और कपड़े-लत्ते से कुछ भी सहायता न की। हिन्दुस्तानी फौजियों को अपने भोजन का भी स्वयं प्रबन्ध करना पड़ा और रहन-सहन के लिए भी उनको आत्म-निर्भर होना पड़ा। भोजन-सामग्री, दवा, कपड़े-लत्ते, तथा अन्य आवश्यक सामग्री जुटाने के लिए कुछ दस्ते इधर-उधर भेजे गए। यह सामान शहरी लोगों और अंग्रेजों द्वारा भगदड़ में खाली किये गए कैम्पों में से जमा किया जाता था। कुआलालम्पूर में युद्ध-बन्दी हिन्दुस्तानियों को बहुत तंगी-तकलीफ का सामना करना पड़ा। महीनों तक मुश्किल से गुजारा चलाया गया। तंगी और तकलीफ के उन दिनों में १।१३

फ्रण्टियर फोर्स राइफल्स के कप्तान महबूबग्रहमद और कप्तान ताली-बुद्दीन ग्राई० एम० एस० ने दिन-रात कठोर मेहनत की। भोजन-सामग्री, कपड़े और दवाइयां बहुत बड़ी मात्रा में इकट्ठी कीं और फौजियों के लिए एक अस्पताल भी खोल दिया। शहरी लोगों में बुधसिंह ने हिन्दुस्तानी फौजियों की सेवा और सहायता करने में दिन-रात एक कर दिया। संकटापन्न हिन्दुस्तानी फौजियों की सहायता करने में गरीब मजदूरों ने दिल खोलकर मदद की।

आजाद—हिन्द फौज का प्रारम्भिक संगठन

जनवरी १९४२ में कप्तान मोहनसिंह ने कुवालालमपुर में हिन्दुस्तानी सिपाहियों को समझाया कि मलाया में और दूसरे स्थानों में अंग्रेजों से लड़ने के लिए हिन्दुस्तानी सिपाहियों की एक आजाद हिन्द फौज खड़ी करनी चाहिए। इस फौज का आखिरी मकसद आपने बताया कि, हिन्दुस्तान से अंग्रेजों को निकाल बाहर करने का है और जापानियों ने अंग्रेजों के चंगुल से हिन्दुस्तान को आजाद करने के लिए हमें हर तरह की मदद देने का वायदा किया है। आजाद हिन्द फौज म जो भरती होना चाहें, वे भरती हो जायं। इस तरह जो वालंटियर भरती हुए उनके दो जत्थे बनाये गये। एक जत्था मलाया में लड़ने के लिए और दूसरा बर्मा भेज जाने के लिए। बाद में इन जत्थों को बढ़ाया गया और हरेक में दो-दो सौ आदमी हो गये। मलाया के जत्थे का नायक कप्तान अल्लादित्ताखां, २२ मट रेजिमेंट था, और बर्मा वाले का कमांडर ४।१९ हैदराबाद रेजिमेंट का था। बर्मा वाले जत्थे ने बर्मा की लड़ाई में हिस्सा लिया। मेजर रामस्वरूप बहुत बहादुर और होशियार अफसर साबित हुआ। उसने जापानियों के साथ अच्छे ताल्लुकात कायम करके अपने असर से बहुत से हिन्दुस्तानियों की जानें बचाई, और बर्मा में रहने वाले शहरी हिन्दुस्तानियों को बहुत-सी सहूलियतें दिलवाई।

कुआलालमपुर में हिन्दुस्तानी सिपाहियों में कौमी खयालात और अपन मुल्क का प्यार भरने के लिए राजनीतिक भाषणों और नाटकों का इन्तज़ाम किया गया। जात-पांत व वर्म के सब ऊपरी भेद-भाव हटा दिये गए और सब लोग प्रेम से मिलकर एक साथ रहते और खाना खाते थे।

सिंगापुर का पतन

सिंगापुर के टापू को मलाया की सरज़मीन से जोड़ने वाला जाहोर का पुल ३१ जनवरी १९४२ को तोड़ दिया गया और उसे तोड़ने से पहले सरजमीन पर का जितनी भी फौजें मिल सकीं, वे सब सिंगापुर टापू में बुला ली गईं। सिंगापुर की ज्यादातर हिन्दुस्तानी फौजें मलाया की सरज़मीन पर कठिन लड़ाई में लड़ी थीं और बुरी तरह से थकी हुई थीं। टापू में पहुंचने पर इन्हीं थकी हुई फ़ौजों को फौरन टापू की रक्षा की लड़ाई के लिए भेजा गया। इन लोगों से बड़े-बड़े वायदे किये गए थे कि सिंगापुर पहुंचने पर तुमको आराम दिया जायगा और नई कुमुक भी मिल जायगी। इस पर अब उनकी आंखें खुल गईं। फौजियों और सिविलियनों का अनुशासन ऊपर से नीचे तक बहुत नीचा था। सभी एशियाई लोगों की शिकायत थी कि अंग्रेज हमारे साथ अच्छा बर्ताव नहीं कर रहे और यह भी उनके दिल म बुरी तरह खटक रहा था कि अंग्रेजों ने मलाया की सरज़मीन से किन्हीं भी एशियाई सिविलियनों के भागने का ठीक-ठीक इन्तजाम नहीं किया था। इसके साथ ही सब यह भी महसूस करते थे कि अंग्रेज़ लोग किसी एशियाई पर यक़ीन नहीं करते और हरेक के बारे में उनको यह शुबहा है कि वह जापानियों से मिला हुआ है।

जापानी ८ फ़रवरी को सिंगापुर टापू में उतरे और घमासान लड़ाई के बाद १५ फ़रवरी को अंग्रेजी फ़ौजों ने जापानियों के सामने बिना शर्त हथियार डाल दिये।

फरेर पार्क की घटना

१५ फ़रवरी को हथियार डालन के बाद रात को हमें हुक्म मिला कि हिन्दुस्तानी सिपाही व कमीशन-प्राप्त अफ़सर सब फरेर पार्क में और सब अंग्रेज सिपाही व अफ़सर चंगी में इकट्ठ हों। हम सबको खासकर अफ़सरों को, यह हुक्म सुनकर बड़ा अचरज हुआ, क्योंकि लड़ाई के कायदों के मुताबिक युद्ध में कैद किये ए अफ़सर, चाहे वे हिन्दुस्तानी हों या अंग्रेज, एक साथ, और मामूला सिपाहियों से अलग रखे जाने चाहिएं। हमने जापानियों के जुल्म व ज्यादतियों के बारे में सुन रखा था। हमने महसूस किया कि हमारे अंग्रेज़ अफ़सर हमको हमारे भाग्य के भरोसे छोड़े जा रहे हैं।

अगले दिन सबेरे जब हम अपने-अपने कैम्पों में जा रहे थे, तो हमारा कमांडिग अफ़सर मेजर मकाडम दूसरे अंग्रेज़ अफ़सरों के साथ हमसे विदा होने आया। मुझसे हाथ मिलाते हुए वह बोला कि "मैं समझता हूं कि आज से तुम और हम अलग-अलग होते हैं।" उस समय मैं उसकी इस बात का पूरा मतलब नहीं समझा था, क्योंकि मुझको जापानियों का इरादा मालूम न था, लेकिन उसको शायद सब कुछ मालूम था। कप्तान मोहनसिंह के कामों और उनके आज़ाद हिंद फौज खड़ी करने के इरादे के बारे में तब तक हममें से बहुत कम लोग जानते थे। हां ऊंचे अफ़सरों को सब हाल मालूम था, पर हमसे सब कुछ छिपाकर रखा गया। इसलिए जब हम फ़रेर पार्क में इकट्ठे हुए, तो हमें कुछ मालूम न था कि आगे क्या आने वाला है।

फरेर पार्क में

१७ फ़रवरी १९४२ को दोपहर के करीब २ बजे फरेर पार्क में मलाया के ब्रिटिश फ़ौजा हेडक्वार्टर का एक स्टाफ़ लेफ्टिनेंट कर्नल हण्ट मेजर फुजिवारा, कर्नल एन० एस० गिल और कप्तान मोहनसिंह और कुछ जापानी व हिन्दुस्तानी अफ़सरों के साथ आया और सब अफ़सरों तथा सिपा-

हियों के सामने माइक्रोफ़ोन पर उसने एक छोटी-सी तक़रीर की। उसने कहा, "तुम सब आज से लड़ाई के कैदी हो। मैं आज ब्रिटिश सरकार की ओर से तुम सबको जापानी सरकार को सौंपता हूं। आज तक जैसे तुम हमारा हुक्म मानते रहे, वैसे ही आज से तुम जापानी सरकार का हुक्म मानो। अगर नहीं मानोगे, तो तुमको सजा होगी।" इसके बाद जापानी अफ़सर मेजर फुजिवारा ने हम सबसे कहा कि "मैं जापान सरकार की ओर से तुमको अपनी कमान में लेता हूं।" कुछ देर बाद फिर उसने कहा कि "मैं जापान सरकार की ओर से तुम सबको जनरल अफ़सर कमांडिंग कप्तान मोहनसिंह को सौंपता हूँ और उनको तुम्हारे मरने-जीने का पूरा अख़्तियार होगा।"

हम ब्रिटिश सरकार के नुमाइन्द की ओर बड़े ग़ौर से देखते रहे कि अपनी आँखों के सामने होती हुई इस कार्रवाई का उस पर क्या असर पड़ता है पर, मालूम होता था कि वह उससे बिलकुल संतुष्ट है, जो कि उस समय हो रहा था, क्योंकि उसने इस पर कुछ भी आपत्ति नहीं उठाई कि हम लोगों को सर्वथा गैरकानूनी तौर पर ऐसे आदमी के हाथों में सौंपा जा रहा था, जो कि हमारे ही समान युद्ध-बन्दी था। सम्भवतः अब उसको हिन्दुस्तानियों की परवा न थी और उसको चंगी के कैम्प में बन्द किये गए अंग्रेज़ क़ैदियों के साथ जो कुछ होने जा रहा था, उसकी अधिक चिन्ता थी। इसके बाद वह चला गया और तब मेजर फुजिवारा ने जापानी में अपना भाषण जारी रखा। एक जापानी अफ़सर ने उसका अंग्रेज़ी में उल्था किया और कर्नल गिल ने हिन्दुस्तानी में।

मेजर फ़ुजिवारा ने कहा, कि जापान ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ज़ालिम चंगुल में अरसे से जकड़े हुए एशियाई मुल्कों की आजादी के लिए लड़ रहा है। जापान एशियाइयों को मुक्ति दिलाने वाला उनका दोस्त है। जापान पूर्वीय एशियां में नया निज़ाम कायम करना चाहता है। इस नये निज़ाम में पूर्वी एशिया के सब देश एक दूसरे की भलाई के लिए

एक दूसरे की मदद करेंगे और सब खुशहाल रहेंगे। सब आज़ाद होंगे और सबका दरजा बराबरी का होगा।

हिन्दुस्तान की आजादी एशिया की आजादी और दुनिया की शांति के लिए ज़रूरी है। हिन्दुस्तानियों का फ़र्ज़ है कि वे अपने मुल्क को आजाद करें। जापान पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों को इस काम में हर तरह की मदद देने को तय्यार है।"

इसके बाद कप्तान मोहनसिंह माइक्रोफ़ोन पर हिन्दुस्तानी में बोले। उन्होंने कहा कि "अंग्रेज़ अफ़सर हिन्दुस्तानी फ़ौजों को दोष देते हैं कि वे मलाया की लड़ाई में अच्छी तरह से नहीं लड़ीं, पर उनको हवाई मदद तो दी ही नहीं गई, न उनके पास जापानी फौज जैसी भयानक दुश्मन से लड़ने के लिए बख़्तरबन्द गाड़ियां थीं और न आजकल की लड़ाई के लिए जरूरी नये हथियार ही थे। मलाया और सिंगापुर की करारी हार की पूरी जिम्मेदारी ब्रिटिश लोगों पर है, और हिन्दुस्तानी सिपाही तो हमेशा-जैसे बहुत अच्छे व बहादुर लड़ाके थे। पूर्व में ब्रिटिश जुल्मों के दिन लद गए और उनका राज जल्दी ही खत्म होने को है। जापानी फौजों ने उन्हें मलाया और सिंगापुर से निकाल बाहर कर दिया है और बर्मा से भी वे बड़ी तेज़ी से भाग रहे हैं। हिन्दुस्तान आज़ादी के दरवाजे पर खड़ा है। हर हिन्दुस्तानी का फ़र्ज़ है कि वह उन शैतानों को मार भगाये, जो सदियों से हिन्दुस्तान का खून चूस रहे हैं। हम इतने सालों से जिस आज़ादी का सपना देख रहे हैं उसको हासिल करने के लिए हर तरह की मदद का वायदा जापानियों ने हमसे किया है। अब यह हमारा काम है कि हम अपना संगठन करके ४० करोड़ देशभाइयों की आज़ादी के लिए लड़ें। इस मतलब से हम पूर्व के रहने वाले हिन्दुस्तानी सिपाहियों और सिविलियनों में से भरती करके एक आज़ाद हिन्द फौज खड़ी करेंगे।"

कप्तान मोहनसिंह की यह तकरीर कुछ को पसन्द आई और कुछ

को नहीं। कुछ न उसे बड़े जोश से सुना और 'इनकलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए हाथ उठाकर आजाद हिन्द फौज में शामिल होने के लिए अपनी इच्छा प्रगट की। हर स्वाभिमानी हिन्दुस्तानी के दिल में अंग्रेजों के प्रति जो नफ़रत थी, उसके अलावा इस जोश की एक और भी वजह हो सकती थी वह यह कि हमने युद्ध-वन्दियों के साथ जापानियों के जंगलीपन के दुर्व्यवहार और पाशविक जुल्मों की बहुत-सी कहानियाँ सुन रखी थीं। लेकिन अब जापानियों ने हमसे खुद कहा था कि हिन्दुस्तानियों से हारे हुए सिपाहियों या दुश्मनों जैसा नहीं; बल्कि भाइयों जैसा बरताव किया जायगा। ऐसी हालत में यह कुदरती था कि हमें बहुत ख़ुशी होती और राहत मिलती।

फ़रेर पार्क में अधिकांश फौजियों को, खासकर अफसरों को, जापानियों से मिलकर अपने ही भाइयों से लड़ने का विचार कुछ अधिक पसंद न आया।

हम पर तो इन तकरीरों से मानो वज्र ही गिर पड़ा। अब तक जो हमारे दुश्मन थे, उन्हीं के साथ शामिल होकर अपने ही देश-भाइयों के साथ लड़ने का खयाल तक हमें पागलपन जान पड़ता था। यह देख-कर मैं और मेरे साथी अनेक अफसर अपने को नितान्त असह्य अवस्था में अनुभव कर रहे थे कि अंग्रेजों ने हमें भेड़-बकरियों की तरह जापानियों के हाथ सौंप दिया था और जापानियों ने कप्तान मोहनसिंह को; जिनके हाथों में हमारी जान और मौत भी दे दी गई थी। कप्तान मोहनसिंह ने बाद में जिस सचाई, ईमानदारी और तत्परता का परिचय दिया, उसके लिए पूरा सम्मान रखते हुए भी मैं यह कहूंगा कि मैं उनको पिछले दस वर्षों से जानता था।

वे सदा ही लायक़ किन्तु औसत दरजे के अफ़सर सिद्ध हुए थे केवल इस बात से कि हमें उनको सौंप दिया गया और उनको जनरल आफ़िसर कमांडिंग बनाकर हमारी जान और मौत भी उनके

हाथों में दे दी गई थी, हमें जापानियों की नीयत पर शुबहा पैदा हो गया। युद्ध-बन्दियों में कर्नल गिल, कर्नल भोंसले, मेजर मेहताबसिंह और मेजर भगत सरीखे पुराने, ऊंचे और सुयोग्य अफ़सर भी थे, जिनको कम-से-कम १५-२० साल का फ़ौजी तजुरबा था। मोहनसिंह सिर्फ ८-९ साल के पुराने अफ़सर थे।

मैं कप्तान मोहनसिंह से अच्छी तरह परिचित था। मैं जानता था कि कम-से-कम सियासी दृष्टि से वह जापानियों की चालबाज़ियों का सामना न कर सकेंगे और जापानी लोग हमसे अपना उल्लू सीधा करेंगे। इसलिए मैंने पक्का इरादा कर लिया कि मैं ऐसी आज़ाद हिन्द फौज से कुछ भी सम्बन्ध न रखूंगा। हालांकि मैं बड़ी लाचारी और मायूसी महसूस कर रहा था; लेकिन बादशाह के प्रति मेरी ख़ानदानी वफ़ादारी की भावना ने विजय पाई और मैंने न केवल स्वयं आजाद हिन्द फ़ौज से अलग रहने का इरादा किया; बल्कि एक मशहूर फ़ौजी कबीले का मुखिया होने के नाते मैंने अपना यह फ़र्ज समझा कि मैं औरों को भी, ख़ासकर उनको जो मेरी कमान में थे और जो मेरी तरफ़ के रहने वाले थे, चेतावनी दे दूं कि वे आजाद हिन्द फौज से अलग रहें।

यहां मैं यह बता देना चाहता हूं कि हमारा घराना तीन पीढ़ियों से हिन्दुस्तानी फौज में काम करता आया है और बादशाह के प्रति वफ़ादारी की भावना हमारे खून में समा गई है। हिन्दुस्तानी फौजी ऐकेडमी से मुझे "सम्राट् की कैडेटशिप" का वज़ीफा मिला था। यह इज्ज़त सिर्फ उन्हीं फौजी छात्रों को मिलती थी, जिनके घराने की फ़ौजी परम्परा सबसे अच्छी व शानदार हो और जिनसे भविष्य में उसको पूरा करने की उम्मीद हो। मेरे जैसा ही ख्याल अन्य बहुत से कुछ व्यक्तियों का भी था। हम आपस में कहा करते थे कि "अगर कोई तुमसे अपने ही भाइयों पर गोला चलाने को कहे, तो उसी की ओर बन्दूक घुमाकर पहले उसी को गोली से उड़ा दो।"

कितने ही बादशाह और वाइसराय से कमीशन-प्राप्त अफसर थे, जिनको मैं लड़ाई से पहले से जानता था। हम सबने इकट्ठा होकर आजाद हिन्द फौज से अलग रहने का निश्चय किया, क्योंकि हम अच्छी तरह से समझते थे कि जापानी लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए ही यह फौज खड़ी कर रहे हैं। मैं इसी मनोदशा में था कि उसे बीस हजार युद्ध-बन्दियों के साथ नीसून कैम्प भेज दिया गया। वहां पहुंचने पर भी मैं अपने इरादे पर पक्का रहा और जो कोई मुझसे सलाह लेने आता, मैं उसको आजाद हिन्द फौज से अलग रहने की ही सलाह देता। कुछ दिनों बाद मुझे नीसून कैम्प का कमान्डर मुकर्रर कर दिया गया।

कैम्पों की व्यवस्था और रहन-सहन

फरेर पार्क की सभा के बाद कप्तान मोहनसिंह ने सिंगापुर में माउण्ट प्लेस पर अपना हेड क्वार्टर क़ायम किया। उसी के पास "फुजिवारा कीकान" का सदर मुकाम था। इसका संगठन मेजर फुजिवारा की देख-रेख में पूर्वीय एशिया में हिन्दुस्तान की आजादी के आन्दोलन करने के लिए किया गया था युद्ध-बन्दियों की व्यवस्था करने के लिए नीसून में एक केन्द्रीय कार्यालय कायम किया गया था। यह कर्नल एन० एस० गिल के मातहत था। आपके साथ बतौर एडजूटैण्ट और क्वार्टर मास्टर जनरल के कर्नल जे० के० भोंसले थे और मैडिकल विभाग के डाइरेक्टर के तौर पर कर्नल ए० सी० चैटर्जी थे। ये सब माउंट प्लैस के आजाद हिन्द फौज के सदर मुकाम के मातहत थे।

सब युद्ध-बन्दी सिंगापुर में पांच कैम्पों में रखे गये थे। कैम्प नीचे लिखे स्थानों पर थे।

(१) नीसून, मेजर एम० जेड० कियानी की कमान में।
(२) बिदादरी, लेफ्टिनेंट कर्नल आइ० जेड० नागर की कमान में।
(३) टायरसाल पार्क, मेजर टेहलसिंह की कमान में।

(४) क्रांजी लेफ्टिनेंट पुरुषोत्तमदास की कमान में।

(५) सेलेतार—मेजर विडर्मन की कमान में।

इन सब कैम्पों में रहन-सहन का ढंग बहुत ख़राब था। जितनों के लिए जगह थी उनसे पांचगुने उनमें रखे गये थे। इस अधिक भीड़ का नतीजा यह हुआ कि तरह-तरह की संक्रामक बीमारियां फैल गईं। लड़ाई के समय ही सिंगापुर को पानी पहुंचाने के नल जापानियों ने तोड़-फोड़ डाले थे। इसलिए सफ़ाई का इन्तजाम भी सब अस्त-व्यस्त हो चुका था। इन कैम्पों में इतने आदमियों के रहते हुए सफ़ाई का इन्तज़ाम रखना बेहद मुश्किल था और कैम्प-कमाण्डरों तथा मेडिकल अफ़सर की लगातार कोशिशों का ही यह नतीजा था कि हैज़ा और पेचिस जैसी बीमारियां अधिक न फैल सकीं और उन पर जल्दी ही काबू पा लिया गया।

मेडिकल अफ़सर के सामने एक और बड़ी दिक्क़त यह थी कि दवाइयों की आमद बिलकुल भी न थी। भिन्न-भिन्न अस्पतालों में कोई ५००० बीमार और घायल सिपाही पड़े हुए थे इनके लिए जापानियों से दवाइयां बिलकुल भी नहीं मिलीं। अंग्रेज़ों के पास दवाइयों का जितना भी संग्रह था, उस सबको अंग्रेज़ मेडिकल डाइरेक्टर बड़ी होशियारी से अंग्रेज़ युद्ध-बन्दियों के लिए चांगी के कैम्प को लिवा ले गया। इसका हिन्दुस्तानियों ने विरोध किया। जापानियों ने थोड़ी-सी दवाइयां हिन्दुस्तानी सिपाहियों के लिए भेज देने के लिए उस पर दबाव डाला और कुछ दवाइयां भिजवा दीं।

पहले कुछ दिनों तक ताज़ा मांस व शाक भी नहीं मिलते थे और भोजन में पौष्टिक पदार्थों की बड़ी कमी थी। इनकी कमी से बेरीबेरी व स्कर्वी सरीखी जो बीमारियां पैदा होती हैं, वे बहुत से सिपाहियों को होने लगीं। सिंगापुर के सब खाने-पीने की चीज़ों के भंडारों को जापानियों ने अपने कब्जे में कर लिया था और उनको यह समझना बड़ा मुश्किल था कि भोजन के लिए चावल, आटा, दाल, घी, मिर्च,

मसाला और नमक सब चीज़ों की एक साथ ज़रूरत होती है। जापानी सिपाहियों का भोजन बेहद सादा होता था। वे भात को उबाले हुए शाक या मछली के साथ थोड़ा-सा नमक मिलाकर खा लेते थे। उनकी समझ में ही नहीं आता। कि हिन्दुस्तानी सिपाहियों को इतनी चीज़ों की ज़रूरत क्यों होती है? कई बार उन्होंने लेक्चर दे-देकर सादे जापानी भोजन के गुण हमको समझाये और ऐसा खर्चीला भोजन खाने के लिए हमको उलाहने दिए। कई बार उन्होंने जापानी सादगी हम पर ज़बरदस्ती लादनी चाही और एक दिन में एक ही खाने की चीज़ हमें दी। कभी-कभी तो उन्होंने हमें सिर्फ़ मिर्च ही दी और उसी पर गुज़र करने को कहा। लेकिन, कुछ दिनों में हम एक दूसरे को अच्छी तरह पहचान गए। हमने हिन्दुस्तानी खाना बनाकर जापानियों को दिखलाया और बताया कि क्यों इतनी चीजें एक ही समय के लिए चाहिएं। हम लोगों के साथ कुछ बार खाना खाकर जापानियों ने अपना वह सादा जापानी खाना प्रायः छोड़ ही दिया। जिस के बारे में वे शुरू में इतना कहा करते थे।

पहले छः महीनों में फ़ौजों को कोई तनख़्वाह भी नहीं दी गई।

एक तरफ़ यह सब होरहा था, दूसरी ओर कप्तान मोहनसिंह कप्तान अल्लादित्ताखां के साथ अपने पहले वाले २०० वालंटियरों को लेकर जगह-जगह आजाद हिन्द फौज खड़ी करने के लिए हिन्दुस्तानियों में राष्ट्रीय भावना भरने और उनको फ़ौज में भरती करने के लिए प्रचार कने में लगे हुए थे। इस प्रचार के काम में उन्हें काफ़ी कामयाबी हुई और क़रीब ३०,००० वालंटियर आजाद हिन्द फौज में भरती होने के लिए तय्यार हो गए। थोड़े ही दिनों में सब हिन्दुस्तानी कप्तान मोहनसिंह की बड़ी इज्ज़त करने लगे। जापानियों के प्रति कप्तान मोहनसिंह ने बड़ी मज़बूती और लियाकत से काम लिया और इससे सिपाही उनसे बहुत मुहब्बत करने लग गए। सौभाग्य से कर्नल गिल और चैटर्जी जैसे सलाहकार भी उनको मिले थे।

लेकिन अधिकतर अफसरों का अब भी यकीन न हुआ और जापानियों की पुरानी कारगुज़ारी को देखते हुए वे उन पर विश्वास न कर युद्ध-बन्दी ही बने रहना चाहते थे। मैं भी इन्हीं में से एक था और मेरी मन्सा यह थी कि आजाद हिन्द फौज खड़ी ही न की जाय इसीलिए नीसून पहुंचने पर मैंने आजाद हिन्द फौज के खड़ी करने का विरोध करने के लिए २० अफ़सरों का एक दल तैयार किया।

मार्च १९४२ के शुरू में लैफ्टिनेंट कर्नल एन० एस० गिल और मेजर महावीरसिंह ढिल्लन सेगांव के ऊँचे जापानी अफ़सरों से सलाह करने के लिए वहां गए। यहां उनको पता चला कि हिन्दुस्तान की आज़ादी के आन्दोलन के बारे में आखिरी फैसला करने के लिए टोकियो में होने वाली हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों की कान्फ्रेंस में विचार किया जायगा।

मार्च १९४२ के आख़िरी हफ्ते में टोकियो में हिन्दुस्तानियों की एक कान्फ्रेंस हुई। इसमें मलाया से एक सद्भावना-मिशन भेजा गया, जिसमें निम्न लिखित लोग शामिल थे:—

कप्तान मोहनसिंह, लैफ्टिनेंट कर्नल एन० एस० गिल, कप्तान मोहम्मद अकरम खां, मिस्टर के० सी० के० मैनन, मिस्टर एस० सी० गोहो। वकोक से स्वामी सत्यानन्द पुरा और सरदार प्रीतमसिंह मलाया के नुमाइन्दों के साथ हो गये।

रास्ते में दुर्भाग्यवश हवाई जहाज दुर्घटना का शिकार हो गया, जिससे कप्तान अकरम खां, स्वा० सत्यानन्द पुरी और सरदार प्रीतमसिंह की मृत्यु हो गई। बहुत से कैम्पों में यह अफ़वाह फैल गई कि यह दुर्घटना जान-बूझकर इसलिए की गई थी कि ये तीनों जापानियों को पसन्द न करने और बिना लिहाज के बात कहने के लिए मशहूर थे। टोकियो की कान्फ्रेंस में यह तय हुआ कि पूर्वीय एशिया में रहने वाले सब हिन्दुस्तानियों के नुमाइन्दों की एक कान्फ्रेंस जून १९४२ में बैंकौक में बुलाई जाय। इसी में यह भी फैसला किया गया कि किसी

भी प्रकार के विदेशी नियंत्रण से सर्वथा रहित पूर्ण आज़ादी पाने के लिए "आजाद हिन्द संघ" (इण्डियन इण्डिपेण्डेंस लीग) कायम किया जाय। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आज़ाद हिन्द फौज खड़ी करने का भी फैसला किया गया। आजाद हिन्द संघ को अन्तिम रूप से बाक़ायदा क़ायम करने और कौन्सिल ऑफ एक्शन के चुनाव करने का काम बेंकोक कान्फ्रेंस के लिए छोड़ दिया गया।

बिदादरी के निश्चय

सिंगापुर के आत्म-समर्पण के ठीक बाद कप्तान मोहनसिंह ने ऊंचे अफ़सरों की एक बैठक बुलाकर आजाद हिन्द फौज खड़ी करने के मसले पर विचार किया। सब अफ़सरों की राय थी कि ऐसे अहम मसले पर हरेक को अपनी राय ज़ाहिर करने का हक़ होना चाहिए। कप्तान मोहनसिंह ने यह बात मान ली। हर यूनिट के कमान-अफसरों को अपनी कमान के अफसरों और सिपाहियों की राय मालूम करके कप्तान मोहनसिंह के हेडक्वार्टर में भेजने का काम सौंपा गया।

अप्रैल १९४२ में कप्तान मोहनसिंह के टोकियो से लौटने पर बिदादरी कैम्प में ऊंचे अफ़सरों की एक और कान्फ्रेंस बुलाई गई। बहुत बहस-मुबाहिसे के बाद नीचे लिखे निश्चय किये गए—

(क) हम सब केवल हिन्दुस्तानी हैं। हम ऊंच-नीच, जात-पांत मज़हब या सम्प्रदाय के किसी भी भेद को नहीं मानते।

(ख) हिन्दुस्तान की आजादी हमारा पैदायशी हक़ है।

(ग) हिन्दुस्तान की आजादी के लिए युद्ध करने वाली एक हिन्दुस्तानी क़ौमी फ़ौज खड़ी की जाय। इण्डियन नेशनल कांग्रेस अथवा हिन्दुस्तान के लोगों की मांग करने पर ही यह फ़ौज युद्ध शुरू करेगी।

(घ) तब तक हम अपने को अच्छे और देश-भक्त हिन्दुस्तानी बनाने की कोशिश करेंगे।

यह भी तय किया गया कि ये निश्चय हिन्दुस्तानी फ़ौज के सब

अफ़सरों व सिपाहियों को समझाये जायं और जो इनको मंजूर करें, उनकी फहरिस्तें तय्यार की जायं। ये फ़हरिस्तें तय्यार करके इनको मंजूर करने वालों को बाकियों से अलग कर लिया गया।

फरवरी से अप्रैल १९४२ के बीच एक ओर ये महत्त्वपूर्ण घटनायें घट रहीं थीं और दूसरी ओर सब कैम्पों में फौजी दो भागों में बटते जा रहे थे।

(क) वालंटियर, जो जापानियों पर एतबार करके आजाद हिन्द फौज में शामिल होने को तय्यार थे।

(ख) ग़ैर-वालंटियर, जिनको जापानियों पर ऐतबार न था और जो आजाद हिन्द फौज में शामिल होने को तय्यार न थे।

मोटे तौर पर सिख, डोगरा और जाट वालंटियर थे, और पंजाबी मुसलमान, पठान और गोरखा ग़ैर-वालंटियर थे। लेकिन, यह भेद सिर्फ़ ख्याली था। वालंटियरों और ग़ैर-वालंटियरों के बर्त्ताव, खान-पान और रहन-सहन में कोई भेद न था। वे सब उन्हीं बारकों में रहते, एक ही तरह का खाना खाते और जापानियों के लिए मजदूरी का एक ही तरह का काम करते थे। कप्तान मोहनसिंह के आदमी बराबर प्रचार का काम करते रहे और कैम्पों में रहने वालों के ख़यालात की रिपोर्ट कप्तान मोहनसिंह को देते रहे।

मार्च सन् १९४२ में जापानियों ने थाइलैण्ड और बोर्नियो भेजने के लिए कुछ मजरों की मांग की, तब १००० आदमी और कुछ अफसर, जिनमें कप्तान घरगालकर, कप्तान हरिबहादुर, कप्तान ताजिक और कप्तान जीवनसिंह थे, बैंकौक भेजे गये और मेजर एन. एल. भगत के साथ ५०० आदमी बोर्नियो भेजे गए। ये सब ग़ैर-वालंटियर थे और इन अफसरों ने कप्तान मोहनसिंह और आजाद हिन्द फौज के बारे में अपनी राय बिलकुल साफ़ शब्दों में जाहिर कर दी थी।

जो दल बैंकौक गया था, उसका जापानियों से कुछ झगड़ा हो गया। वहां के जापानी कमांडर ने हिन्दुस्तानी अफ़सरों से हरेक

हिन्दुस्तानी सिपाही की योग्यता के बारे म फहरिस्तें मांगीं। जापानी उनसे अपनी मोटर-कम्पनियों में ड्राइवर वग़ैरह का काम लेना चाहते थे। हिन्दुस्तानी अफ़सरों ने ये फहरिस्तें देने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि यह जेनेवा के समझौते के अन्तर्राष्ट्रीय कानून के ख़िलाफ़ था और उसके मुताबिक लड़ाई के कैदी अपना नाम, ओहदा और यूनिट के सिवा और कुछ भी वताने को मजबूर न थे। जापानियों का कहना था कि "हमने जेनेवा के समझौते पर दस्तख़त नहीं किये और चांगी के अंग्रेज युद्ध-बन्दियों ने भी यह सब जानकारी दे दी है। दरअसल अंग्रेज और आस्ट्रेलियन कैदा जापानियों की लारियां चला रहे थे। और जापानी कारखानों में काम भी कर रहे थे। फिर भी हिन्दुस्तानी अफ़सरों ने इसमें मदद देनें से इनकार कर दिया। इस पर कप्तान घरगालकर, कप्तान हरिवहादुर और कप्तान ताजिक को जापानियों ने हिरासत में ले लिया और उनसे बहुत बुरा वर्त्ताव किया। परन्तु अखबारों में जा ये खबरें निकली हैं कि ८८ दिन तक उनको उल्टा लटकाकर रखा गया और उनके साथ सब तरह का बुरा बर्त्ताव इसलिए किया गया कि उन्होंने आजाद-हिन्द फ़ौज में शामिल होने से इन्कार कर दिया था, वहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही गई वातें हैं और ये अंग्रेजों को खुश करन के लिए गढ़ी गई हैं। उनके साथ किये गए बुरे वर्त्ताव का आजाद हिन्द फौज में शामिल होने या न होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। जून १९४२ में जब कप्तान मोहनसिंह वैंकौक में कान्फ्रेंस में शामिल होने गए ता उनको ये सब वातें मालूम हुई और उन्होंने बीच में पड़कर इन सब अफसरों का छुड़वाया और उन्हें अपने साथ सिंगापुर वापस ले आए।

नजरबंद कैम्प

दिल्ली के लाल किले में फ़ौज के सम्बन्ध में जो फौजी अदालतों में मुकद्दमे हुए हैं, उनमें आजाद हिन्द फौज वालों पर लगाये गए इलज़ामों में हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों पर उन द्वारा की गई तथाकथित

जुल्म-ज्यादतियों को बहुत महत्त्व दिया गया है। इन मुकद्दमों के सरकारी वकील को भी यह मंजूर करना पड़ा है कि नजरबन्द कैम्पों के बारे में फैली हुई कहानियां बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही गई हैं और वे निराधार भी हैं। इसलिए इस अध्याय में मैं उन कैम्पों के सही हालात पेश करने की कोशिश करूंगा, जिससे कि लोग सचाई का फैसला स्वयं कर सकेंगे।

अंग्रेजों की हार के बाद जापानियों ने हिन्दुस्तानी अफ़सरों और सिपाहियों को एक ही साथ कैम्पों में रहने दिया, और उन्होंने हिन्दुस्तानी अफ़सरों को अपनी-अपनी यूनिट के अन्दरूनी इन्तजाम की जिम्मेदारी सौंप दी। तब बहुत से सिपाहियों का ख़याल हुआ कि अंग्रेजों ने हमें बा-कायदा जापानियों के हाथ सौंप दिया, और इसलिए बादशाह के प्रति वफ़ादारी खतम होगई। अब मामूली सिपाही व अफ़सर सब बराबर हैं और अब हम अफ़सरों का हुक्म क्यों न मानें? इस ख़याल की वजह से कैम्पों में बड़ी बदअमनी फैली और एक दफ़ा एक अफ़सर को उसी की यूनिट के आदमियों ने पीट भी दिया। ऐसा भी बहुत बार होता था कि हिन्दुस्तानी सिपाही रात के वक्त अपने कैम्पों के बाहर निकल जाते और पड़ौस में रहने वाले सिविलियनों को लूट लेते और उनके साथ अनैतिकता से पेश आते। एक यूनिट के लोगों ने तो यह अपनी आदत ही बना ली कि वे पड़ौसियों की गायें चुरा लाते और कैम्पों में उन्हें ज़िबह करते। कुछ और लोगों ने सूअर चुराकर उन्हें अपने कैम्पों में मारकाट कारखाना शुरू कर दिया। इन कैम्पों में हिन्दू व मुसलमान दोनों ही थे और हरेक किसी ने यह महसूस किया कि अगर कड़ाई से काम न लिया गया, तो हालत और भी बिगड़ जायगी और कहीं हिन्दू व मुसलमानों में लड़ाई न हो जाय। इसी तरह के जुर्मों का अन्त करने के लिए कैम्प में नजरबन्द कैम्प खोला गया और ऊपर लिखे गये क़सूरों के लिए जो आदमी वहां भेजे जाते थे, वे दरअसल उस सजा के अधिकारी होते थे। कानसेनट्रेशन कैम्पों में सख्त बर्त्ताव जरूर होता था; लेकिन बेरहमी

नहीं होती थी। बाद में, खासकर अप्रैल १९४२ के बाद कुछ अफ़सर और सिपाही इस सन्देह पर जेल भेजे गए कि वे अंग्रेजों के पांचवें कालम के आदमी थे और आजाद हिन्द फ़ौज के खिलाफ़ लोगों को उभारते थे। फिर भी यह बतला देना जरूरी है कि हमने क़ैदियों को वैसी तकलीफ़ कभी नहीं दी, जैसी कि हमें दिल्ली के लाल किले में भोगनी पड़ी है।

अक्तूबर १९४२ में कर्नल एन० एस० भगत ने कैम्प का नाम 'कानसनट्रेशन' के स्थान में 'डिटेंशन कैम्प' कर दिया। दूसरी बार मिलिटरी ब्यूरो के डाइरेक्टर मेजर जनरल भोंसले के द्वारा आजाद हिन्द फौज के कायम किये जाने और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के आने के बाद किसी भी कैम्प में हुए दुर्व्यवहार या जुल्म-ज्यादती का एक भी उदाहरण अंग्रेज अधिकारी पेश नहीं कर सके।

मई १९४२ के बाद कप्तान मोहनसिंह ने एक और कैम्प कायम किया, जिसका उद्देश्य अफसरों को सिपाहियों से अलग रखना था। जिन अफ़सरों पर यह शक होता था कि वे आजाद हिन्द फौज के खिलाफ़ प्रचार करते हैं और लोगों को वालंटियर बनने से रोकने की कोशिश करते हैं, उनको अपनी यूनिट से अलग इस कैम्प में रखा जाता था। अक्तूबर १९४२ में कप्तान मोहनसिंह ने इस कैम्प को तोड़ दिया।

जापानियों की नीयत का भण्डाफोड़

(१) चांगी का गार्ड

मार्च १९४२ के शुरू में जापानियों ने कप्तान मोहनसिंह से अंग्रेज युद्ध-बन्दियों के ऊपर चांगी कैम्प में पहरा देने के लिए कुछ हिन्दुस्तानी सिपाहियों की मांग की। उन्होंने यकीन दिलाया कि यह सिर्फ शुरुआत है और यह इसलिए जरूरी है कि ऊंचे जापानी अफसरों को यह विश्वास करा दिया जाय कि हिन्दुस्तानी दरअसल जापानियों के साथ

सहयोग करन को इच्छुक और तैयार हैं। ऐसा करने से उन्होंने कहा कि आजाद हिन्द फौज की नींव रखने के लिए भी अनुकूल वातावरण तय्यार हो सकेगा। लेकिन चांगी में अंग्रेजों के ऊपर पहरा देने के लिए हिन्दुस्तानी सिपाही मांगने में जापानियों का असली मतलब एक तो यह था कि पहरे पर लगे हुए जापानियों को युद्ध के मोर्चों पर भेजने के लिए वहां से हटा लिया जाय और दूसरा यह था कि हिन्दुस्तानियों के मन में से हीनता की भावना दूर की जाय। जापानियों की यह निश्चित नीति थी कि वे जिस किसी प्रदेश को जीतते थे वहां गोरों की बेइज्जती जान-बूझकर करते थे। इस तरह वे एशिया के लोगों में यह भावना पैदा करते थे कि वे यूरोपियनों से किसी भी अंश में कम नहीं, बल्कि उनसे अच्छे ही हैं।

कप्तान मोहनसिंह ने आजाद हिन्द फ़ौज खड़ी करने के बड़े उद्देश्य को सामने रखकर जापानियों की इस मांग को क़बूल कर लिया और लेफ्टिनेंट जी० एस० ढिल्लन (आ० हि० फ़ौज के कर्नल) को इस अप्रिय काम के लिए चुना। ज्यादहतर हिन्दुस्तानी अफ़सर इसके ख़िलाफ़ थे, क्योंकि बहादुर हिन्दुस्तानी हारे हुए दुश्मन पर चोट नहीं करते। वालंटियर सिपाही अपने देश को आज़ाद करने के लिए लड़ाई के कैदियों पर पहरा देने जैसा काम नहीं करना चाहते थे। इस पर सभी असन्तुष्ट थे, किन्तु लैफ्टिनेंट ढिल्लन सच्चा सिपाही था; उसने जब एक बार कप्तान मोहनसिंह को वचन दे दिया था, तब उसके लिए उसके सब हुक्मों को मानना जरूरी हो गया था, भले ही वे उसको पसंद थे या नहीं। चांगी में पहरा देने वाले सीधे जापानियों का कमान में थे, और नेताजी के आने तक वे उसी स्थिति में काम करते रहे।

हवाई हमले से बचाव करने वाले हिन्दुस्तानी तोपची

चांगी के मामले के बाद ही जापानियों ने कप्तान मोहनसिंह से

सिंगापुर टापू की रक्षा के लिए ६०० हवाई हमले से बचाव करने वाले हिन्दुस्तानी तोपची मांगे। उन्होंने सब तोपचियों को बुलाकर समझाया और कहा कि हमारे कैम्पों को अंग्रेज़ी हवाई हमलों से डर है। हिन्दुस्तानी तोपचियों को ऐसे हमलों से अपने कैम्पों को बचाना होगा। इसके पहले कि उनको तोपें सौंपी जा सकें, उनको जापानियों के नीचे कुछ दिनों ट्रेनिंग लेनी होगी। उनको इस बात का यक़ीन दिलाया गया कि उनको सिर्फ (१) अपने कैम्पों की रक्षा करने और (२) हिन्दुस्तान में आज़ाद किये हुए हिस्सों को दुश्मन के हवाई हमलों से बचाने का काम दिया जायगा। इस पर ६०० तोपची जापानियों से ट्रेनिंग लेने को भेजे गये। दरअसल इन्होंने अंग्रेजों की तोपों पर काम किया था और वे यह काम खूब अच्छी तरह जानते थे। इनको और ट्रेनिंग की ज़रूरत ही नहीं थी। जापानी उनसे अपना काम निकालना चाहते थे। जापानी कैम्पों में आने पर इनको करीब १००-१०० के दलों में बांटा गया और सीधे जापानी अफ़सरों की कमान में रख दिया गया। इनमें से कुछ को ज़बरदस्ती जहाज़ों पर बैठाकर प्रशान्त महासागर के टापुओं की रक्षा के लिए भेज दिया गया। कप्तान मोहनसिंह को यह बात पहले-पहल तब मालूम हुई, जब एक जापानी अख़बार ने सेबो के टापू में हिन्दुस्तानी तोपचियों की बहादुरी की तारीफ़ की और बहुत सों के मरने पर रंज प्रगट किया। सब हिन्दुस्तानी अफ़सरों और सिपाहियों ने इस पर बहुत नाराज़गी ज़ाहिर की और जापानियों की असली नीयत के बारे में उनके मन में बड़ी आशंका पैदा हो गई।

जो दल सिंगापुर में पीछे रह गये, उनके साथ बड़ा कड़ा और अमानुषिक बरताव किया गया। जापानी ग़ैरकमीशन अफ़सरों ने हिन्दुस्तानी अफ़सरों के तमाचे मारे और जब उन्होंने नाराज़गी ज़ाहिर की तो कई दिन तक उनको खाना नहीं दिया गया। कुछ पर संगीनों से वार किये गये। आख़िर में उनमें से कुछ अपने कैम्पों से भाग निकले और उन्होंने कप्तान मोहनसिंह से रिपोर्ट की कि जापानी लोग उनको जापानी

सिपाही बनाना चाहते हैं। कप्तान मोहनसिंह एक जापानी अफ़सर लेफ्टिनेंट कुनजुका के साथ जापानियों के मातहत कैम्पों में उनकी हालत देखने गये; लेकिन, पहरे पर तैनात संतरी ने उनको कैम्प के अन्दर नहीं जाने दिया। इस पर भी सब हिन्दुस्तानी अफ़सरों और सिपाहियों में बड़ी नाराज़गी फैल गई।

नेताजी सुभाषचन्द्रबोस के आने तक हिन्दुस्तानी तोपचियों के साथ ऐसा ही जंगली और धोखे का बरताव होता रहा, और तब नेताजी ने बचे-खुचों को जापानियों के चंगुल से बचाकर आजाद-हिन्द फ़ौज में भरती किया।

चांगी गार्ड और हवाई महलों से बचान वाले तोपचियों के इन वाकयात से मेरा यह विश्वास और भी मज़बूत होगया कि जापानी लोग हिन्दुस्तान की आज़ादी के बारे में केवल बातें ही करते हैं। अपने वायदों को पूरा करने का उनका कोई इरादा नहीं है, और वे हमसे अपना काम निकालना चाहते हैं। इसलिए मैंने यह पक्का इरादा कर लिया कि मैं आजादहिन्द फ़ौज के बनने में रुकावट डालने के लिए हर तरह की कोशिश करूंगा। मुझसे सहमत सब अफ़सरों की मदद और हमदर्दी मेरे साथ थी।

अप्रैल १९४२ में कप्तान मोहनसिंह ने जोर-शोर से प्रचार शुरू किया और उन अफ़सरों और सिपाहियों के लिए, जा उनसे सहमत न थे, नये नजरबन्द कैम्प खोले गए और उनमें उनको रखा गया।

पर मैंने अपने मातहत किसी भी आदमी को नज़रबन्द कैम्प में न जाने दिया और एक बार तो मैंने अपने मातहत कुछ अफ़सरों को उसमें भेजने से रोकने के लिए अपने कैम्प के कमांडर के पद से स्तीफा तक दे दिया। जब तक मैं नीसून कैम्प का कमांडर रहा, मैंने हरेक को नज़रबन्द कैम्प में भेजे जाने का कुछ भी भय न रखते हुए आजादी से अपनी राय ज़ाहिर करने का मौका दिया और जब तक मैं कैम्प का कमांडर रहा, वहाँ से किसी को भी नजरबन्द कैम्प में नहीं भेजा गया।

मई १९४२ के शुरू में यह साफ़ हो गया कि कप्तान मोहनसिंह के हाथों में असीमित अधिकार होने और जापानियों का भी पक्का इरादा होने से आजाद हिन्द फौज के खड़ा करने में कप्तान मोहनसिंह कामयाब हो गए थे। हमें भी इसी मास में यह तय करना था कि हम बिरादरी में पास हुए प्रस्तावों को मानकर वालंटियर बनेंगे या नहीं। हम से यह भी कह दिया गया था कि वालंटियर और ग़ैर-वालंटियर अलग-अलग कैम्पों में रखे जायंगे। इस नई हालत के पैदा होने पर उन अफ़सरों की कई बैठकें हुईं, जो आजाद हिन्द फौज बनाने के विरुद्ध थे। अन्त में हमने यह फैसला किया कि ऊंचे अफ़सरों का आजाद हिन्द फौज से अलग रहना और नजरबन्द कैम्प में भेज दिया जाना बेकार है। इसलिए हमारे लिए सबसे अच्छा रास्ता यह है कि (अ) ऊंचे अफ़सर आजाद हिन्द फ़ौज में शामिल हो जायं, उसको अपने कब्जे में ले लें युद्ध-बन्दियों के लिए बुरा बरताव न होने दें और जापानी लोग, जो उनसे अपना काम निकालते हैं, इसे भी रोकें। अगर हम यह न कर सकें तो मौका देखकर आजाद हिन्द फौज को नष्ट-भ्रष्ट करने का यत्न करेंगे। (आ) मामूली सिपाही आजाद हिन्द फौज से अलग रहें और जरूरी हो तो कड़ाई व बुरा बरताव भी सहें। लेकिन आ० हि० फौज के ऊंचे अफ़सर उनकी भरसक मदद करें। उस समय इसका खास सम्बन्ध मुसलमानों के साथ था।

इस फैसले के अनुसार मध्य मई १९४२ में कर्नल चटर्जी की सदारत में प्रचार के लिए आई हुई एक पार्टी की उपस्थिति में नीसून कैम्प के करीब ४०० अफ़सरों के सामने मैंने कहा कि मैंने बिरादरी कान्फ्रेन्स में पास किये गए नियमों को मानकर आजादहिन्द फौज में शामिल होने का इरादा कर लिया है और हर आदमी अपनी मर्ज़ी से वालंटियर बनने या न बनने का फैसला कर सकता है। मैंने यूनिट के कमांडरों से कहा कि वे अगले दिन वालंटियरों और गैर वालंटियरों की अलग-अलग फेहरिस्तें दे दें, क्योंकि उनको अलग-अलग करना

है। उसी दिन तीसरे पहर मैंने मसजिद में मुसलमान अफ़सरों की सभा बुलाकर उनको समझाया कि मैं क्यों आजाद हिन्द फौज में शामिल होरहा हूं। मैंने यह भी कहा कि मैंने अब तक तुमको भरसक मदद दी और तुम्हारी हिफ़ाजत की; पर अब अलग होने का वक़्त आगया है। फिर भी मैंने उनको जहां कहीं भी वे होंगे पूरी मदद देने का वायदा किया और यह उम्मीद जाहिर की कि वे डर से या दबाव से कभी भी आजाद हिन्द फौज में शामिल न हों। उन सबने दबाव के सामने न झुकने का वायदा किया और "दुआएं खैर" कहा, जो इरादे को मजहबी दृष्टि से पक्का करने की निशानी है।

बैंकौक कान्फ्रेंस

कुछ दिन बाद कप्तान मोहनसिंह ने बैंकौक कान्फ्रेंस की योजना के बारे में बात-चात करने के लिए माउण्ट प्लेसेण्ट के अपने बंगले पर ऊंचे अफ़सरों की बैठक बुलाई। उसने बताया कि कान्फ्रेंस जून में होगी और युद्ध-बन्दियों की ओर से उसमें ९० नुमाइन्दे जा सकेंगे। वे बैंकौक में पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों के कुल जितने नुमाइन्दे इकट्ठे होने वाले थे, हमको दी हुई ९० की यह तादाद उसका एक तिहाई थी। कप्तान मोहनसिंह ने कहा कि मेरा इरादा ९० प्रतिनिधि ले जाने का नहीं है, मैं सिर्फ ३० आदमी अपने साथ ले जाना चाहता हूं और बाक़ी ६० के वोट के लिए प्रॉक्सी ले ली जायगी। अन्त में उसने कहा कि क्योंकि हरेक को मुझ पर पूरा यक़ीन है, इसलिए मैं खुद ही बैंकौक के लिए ३० नाम चुन लूंगा। वहां हाज़िर सब अफ़सर इस से सहमत हो गए।

मेरा खुद का यह ख़याल था कि बैंकौक में बड़ी-बड़ी बातों का फ़ैसला होगा। और हमको उनसे अपने को बांध नहीं देना चाहिए, इसलिए मेरी राय थी, कि युद्ध-बन्दी इसमें हिस्सा न लें। कप्तान मोहनसिंह के बोलने के बाद मैं उठा और मैंने कहा कि मैं बैंकौक को

नुमाइन्दे भेजने के खिलाफ़ हूं। मैंने कहा कि यहां से जाने वाले नुमाइन्दे युद्ध-बन्दियों के भविष्य के बारे में बड़े अहम मसलों पर फ़ैसला करेंगे। इसलिए यहां से जाने वाले आदमी ऐसे होने चाहिएं, जिन पर युद्ध-बन्दियों का पूरा भरोसा हो। मैंने बैंकौक के लिए नुमाइन्दे चुनने के तीन तरीके सुझाए।

(१) हरेक कैम्प से जाने वाले नुमाइन्दों की तादाद उस कैम्प के युद्ध-बन्दियों की तादाद के मुताबिक़ निश्चित कर देनी चाहिए और नुमाइन्दों का चुनाव कैम्पों पर छोड़ देना चाहिए।

(१) या हरेक क़ौम को युद्ध-बन्दियों की तादाद के हिसाब से नुमाइन्दे चुनने का हक़ दे देना चाहिए।

(३) अगर इन दोनों बातों में से कोई भी कप्तान मोहनसिंह को मंजूर न हो तो, क्योंकि उन पर हमें पूरा भरोसा है, इसलिए वे अपने साथ ३० नुमाइन्दे न ले जायं। वे अकेले अपने अंग-रक्षक के साथ चले जायं, उस हालात में यह नहीं कहा जा सकता कि युद्ध-बन्दियों के प्रतिनिधि उसमें शामिल थे। वहां जितने भी हाज़िर थे, सबन मेरा सुझाव मान लिया। कप्तान मोहनसिंह ने जब देखा कि सब लोगों की सर्व-सम्मत यही मांग है, तो उसने अगले दिन यह बतलाने का वायदा किया कि इन तीनों तरीकों में से किस पर अमल किया जायगा। इसके बाद बैठक बरख़ास्त हुई और हम लोग लौट आये।

अपने कैम्प में लौटने पर मैंने सब अफ़सरों को इकट्ठा करके उस बैठक का हाल सुनाया। वें सब मेरे सुझाव से सहमत थे।

अगले दिन कप्तान मोहनसिंह का एक एडजुटैंट कप्तान पट्टनायक मेरे कैम्प आफ़िस में मेरे पास आया। उसने कहा कि मेरे पास ३५ प्रॉक्सी वोट हैं, इन्हें अपने कैम्प के अफ़सरों से भरवा दीजिये। मैंने कप्तान मोहनसिंह के बंगले पर पिछले दिन हुई बैठक और उसमें उन द्वारा किये वायदे की याद कराई। मैंने उससे कहा कि कम-से-कम उन नुमाइन्दों की फेहरिस्त तो मुझे दे दो, जो बैंकौक जायंगे, जिससे

कि हम उनमें से अपने डेलीगेटों को चुनकर उनके नाम प्रॉक्सी लिख-कर दे दें। प्रॉक्सी का फ़ार्म यह था कि मैं""""अपना प्रॉक्सी वोट"""" का देता हूं और उसका फ़ैसला क़ानूनन मुझ पर लागू होगा।"

कप्तान पट्टनायक मुझको यह जानकारी देना नहीं चाहता था। उसने कहा कि जिनको प्रॉक्सी वोट दिये जायंगे, उनके नाम की जगह ख़ाली छोड़ दो, मैं ख़ुद नाम पीछे से भर दूंगा। यह बात क़ाबिल-एतराज़ थी, और मैंने किसी भी अफसर को प्रॉक्सी के फ़ार्म पर दस्त-खत करने को न कहा। तब कप्तान पट्टनायक बड़े गुस्से में भरकर चला गया और मुझसे बोला कि शाम को सब मालूम हो जायगा। मैंने इस बात-चीत का सारा हाल अपने कैम्प के अफ़सरों को सुनाया, और उन सबने एक राय से मेरे काम की ताईद की।

उसी रात को मुझे जोशीले ग़ैर वालंटियरों के दल का खुफिया बना-कर कुआलालमपुर जाने का हुक्म मिला। नीसून के सबसे बड़े युद्ध-बन्दी कैम्प से सिर्फ़ एक ही नुमाइन्दा बैंकौक-कान्फ्रेन्स के लिए गया। वह था इस्तग़ासे का गवाह नं० २ सूबेदार मेजर बाबूराम, और वह भी हुक्म के मुताबिक ही गया था। और को भी जाने के लिए नामजद किया गया था, पर उन्होंने नामज़द नुमाइन्दे के तौर पर जाने से इनकार कर दिया। नीसून कैम्प से एक भी प्रॉक्सी वोट बैंकौक के लिए नहीं दिया गया।

मेरा कुआलालमपुर को तबादला करने के बाद कप्तान मोहनसिंह ने सेलेतार में कहा, कि मुझे पता चला है कि मेरी पार्टी के अन्दर एक ऐसी पार्टी है, जो हमारी तहरीक को नष्ट कर देना चाहती है और मैं इन सबका खातमा करने के लिए कदम उठाने वाला हूं।

बैंकौक के लिए प्रतिनिधि जून के शुरू में रवाना हो गये, क्योंकि कान्फ्रेंस १५ जून १९४२ से होने को थी। हिन्दुस्तानी फ़ौज के ३० नुमाइन्दे ६० प्रॉक्सी वोट के साथ उसमें शामिल हुए। इनके अलावा पुर्वीय एशिया के नुमायन्दे भी वहां आए थे, जिनमें मलाया के मिस्टर

राघवन मैनन और गोहो भी थे। श्री बोस कान्फ्रेंस के सदर चुने गए कान्फ्रेंस में पहले दिन नीचे लिखे सज्जन भी उपस्थित थे—

थाईलैंड के विदेश-मन्त्री, थाईलैंड में इटली के राजदूत, थाईलैंड में जर्मन राजदूत और थाईलैंड में जापानी राजदूत। इन्होंने अपनी-अपनी सरकारों की तरफ़ से बधाई के सन्देश पढ़े। सत्रह प्रस्ताव पास हुए, जिनका मुख्य आशय नीचे लिखे मुताबिक है।

(क) पूर्वीय एशिया में हिन्दुस्तान की आजादी की हलचल चलाने के लिए एक "कौन्सिल आफ़ एक्शन" चुनी गई, जिसके मेम्बर निम्न थे।

श्री रासबिहारी बोस, सरदार कप्तान मोहनसिंह, श्री एन. राघवन, श्री के. पी. मैनन, और लेफ्टिनेन्ट कर्नल जी. क्यू. जिलानी।

(ख) सारे पूर्वीय एशिया में आजाद हिन्द संघ की शाखायें बाक़ायदा बनाने का फैसला हुआ। इन शाखाओं के इन्तजाम में जापानियों का किसी तरह का हाथ न होगा, और वे बैंकौक में कायम किये गए आजाद हिन्द संघ के सदर मुकाम के मातहत काम करेंगी।

(ग) हिन्दुस्तान एक और अखण्ड होगा। किसी भी हालत में टुकड़ों में न बांटा जायगा।

(घ) सिर्फ़ इंडियन नेशनल कांग्रेस हिन्दुस्तान की क़ौमी नुमाइन्दा जमात है।

(ङ) आज़ादी हिन्दुस्तानियों का पैदायशी हक़ है, और पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों का पक्का इरादा है कि वे इस मक़सद के हासिल करने के लिए लड़ेंगे।

(च) जापानी साम्राज्य की सरकार ने इस मकसद को हासिल करन के लिए पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों की हथियार और दूसरे ज़रूरी सामान से मदद करने का भार अपने ऊपर लिया है।

(छ) जापानी साम्राज्य की सरकार पूर्वीय एशिया के रहन वाले हिन्दुस्तानियों को आज़ाद मुल्क का नागरिक मानेगी और दूसरे दोस्त मुल्कों

की सरकारों से भी दरख़्वास्त करेगी कि वे भी अपने-अपने यहां के हिन्दुस्तानियों को आज़ाद मुल्क के नागरिक मानें।

(ज) पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों की जायदाद दुश्मनों की जायदाद नहीं मानी जायगी। जो हिन्दुस्तानी पूर्वीय एशिया को छोड़कर चले गए हैं, उनकी जायदाद आजाद हिन्द संघ की कौन्सिल ऑफ़ एक्शन को सौंप दी जायगी। यह जायदाद ट्रस्ट के तौर पर संघ के पास रखी रहेगी।

(झ) हिन्दुस्तान के आजाद होने के बाद हिन्दुस्तान की नई सरकार के साथ जापान की सरकार बाक़ायदा सुलह करेगी। पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों की यह कान्फ्रेंस हिन्दुस्तान के लोगों की ओर से जापान के साथ कोई वायदा या समझौता नहीं करती है।

(ञ) पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानी जापान की सरकार से सामान वग़ैरह की शक्ल में जो कुछ मदद लेंगे, वह उधार समझी जायगी और आज़ाद हिन्दुस्तान उसे वापिस अदा करेगा।

(ट) हिन्दुस्तानी युद्ध बंदियों और सिविलियनों में से वालंटियरों की एक फ़ौज खड़ी की जायगी और वह हिन्दुस्तान की कौमी फौज आजाद हिन्द फौज कहलायगी।

(ठ) कप्तान मोहनसिंह इस नई खड़ी की गई आजाद हिन्द फौज के जनरल आफ़िसर कमांडिंग (प्रधान सेनापति) होंगे।

(ड) जापान की सरकार से प्रार्थना की गई कि वह जर्मनी की सरकार को श्री सुभाषचन्द्रबोस को पूर्वीय एशिया भेजने का इन्तज़ाम करने के लिए कहे, जिससे कि वे पूर्वीय एशिया की हिन्दुस्तान की आज़ादी की तहरीक का संचालन अपने हाथों में ले सकें।

(ढ) आजाद हिन्द फौज को सब धुरी राष्ट्र आज़ाद और साथी फौज मानेंगे।

(ण) जापानी सरकार इन सब निश्चयों को मंज़ूर करेगी।

कुआलालमपुर में (जून-सितंबर १९४२)

कुआलालमपुर को मेरा तबादला होने पर मैं और मेरे साथ के अन्य अफ़सर समझ गए कि कप्तान मोहनसिंह को हमारा असली मतलब मालूम हो गया है। हमारा यह यकीन उस समय और भी मज़बूत हो गया कि जापानी हमसे अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। इसलिए हमने आ० हि० फौज को न छोड़ने और उससे अपना काम निकालने की जापानियों की योजनाओं को विफल बनाने का पक्का इरादा कर लिया।

मैं जून के शुरू में मालगाड़ी से कुआलालमपुर पहुंचा। मेरे बाद ही कट्टर ग़ैर वालंटियरों के कई दल भी वहां पहुंचे। उन सबके आने के बाद मुझे हुक्म मिला कि मैं उन सबको जापानी जनरल के मुआयने के लिए इकट्ठा करूं। तब जापानी जनरल ने सब युद्ध कैदियों से कहा कि "मैं तुम सबका स्वागत करता हूं और तुम सबको अपनी कमान में पाकर बड़ा खुश हूं। हम तुमको युद्ध कैदी नहीं, बल्कि, भाई समझते हैं, और हम सब एशियाई हैं। जापान की यह ज़बर्दस्त ख्वाइश है कि हिन्दुस्तान बहुत जल्द आजाद हो जाय। तुम लोगों को हथियार और ट्रेनिंग देने के लिए हमने इन्तज़ाम किया है जिससे तुम आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा ले सको।"

सब युद्ध कैदी इससे बहुत नाराज हुए, क्योंकि वे जापानियों के नीचे हथियार पकड़कर मिलिटरी ट्रेनिंग लेना नहीं चाहते थे। परेड के खतम होने पर युद्ध कैदियों ने तब तक तितर-बितर होने से इनकार कर दिया, जब तक कि युद्ध कैदी के तौर पर उनका दर्जा व हैसियत साफ न कर दी जाय।

मैं जापानी जनरल को अपने दफ्तर में ले गया और अच्च अफसरों के सामने मैंने उसको सारी स्थिति समझाई। मैंने उसको बतलाया कि हिन्दुस्तानी युद्ध कैदियों में से कुछ लोग, जो वालंटियर कहलाते हैं, हथियार

लेकर अंग्रजों से लड़ने को तय्यार हैं। दूसरे लोग जो ग़ैर-वालंटियर
कहलाते हैं वे सिर्फ युद्ध कैदी रहना चाहते हैं और वैसा ही अपने
साथ बरताव चाहते हैं। मैंने उससे यह भी कहा कि हिन्दुस्तान की
आजादी का मसला हिन्दुस्तानियों का अपना सवाल है और जापानियों
को किसी हिन्दुस्तानी को अपनी इच्छा के खिलाफ़ उसमें हिस्सा लेने
के लिए मजबूर नहीं करना चाहिए। मैंने उसको यकीन दिलाया कि
एशिया पर अंग्रेजों और अमेरिकनों की हुकूमत के खिलाफ जापानियों
की लड़ाई में अपने तरीके से मदद देने के लिए हम सब तय्यार हैं।
वालंटियर लोग हथियार लेकर लड़ाई के मैदान में अंग्रेजों से लड़ेंगे
और ग़ैर वालंटियर हवाई अड्डे, रेलवे, सड़क वग़ैरह बनाकर लड़ाई
में मदद देंगे।

उसने मेरी बात मान ली और बोला कि ग़ैर वालंटियरों का यह
काम वालंटियर के काम से ज्यादह जरूरी है। मलाया में अपने नीचे
के सब जापानी जनरलों को यह हुक्म भेजना उसने कबूल कर लिया
कि वालंटियर लोग लड़ाई के काम में हिस्सा लेंगे और ग़ैर वालंटियर
मजदूरी वग़ैरह का काम करेंगे।

सेरेम्बान में भी ऐसा ही झगड़ा खड़ा हो गया। वहां युद्ध कैदियों
ने जब हथियार लेने से इनकार कर दिया, तो जापानियों ने कैम्प के
चारों तरफ मैशनगनें लगा दीं, कैम्प-कमांडर कप्तान गुलाम मुहम्मद को
जेल में डाल दिया, युद्ध कैदियों को आखिरी फैसला करने के लिए २४
घंटे की मोहलत दी और कहा कि तब भी तुम लोग अपनी बात पर
अड़े रहे, तो तुम सबको गोली से उड़ा दिया जायगा। यह सुनकर मैं
क्वालालमपुर में दिया गया जनरल का फैसला लेकर फौरन सेरेम्बान
दौड़ा गया और बहुत समझाने-बुझाने के बाद वहां के जापानी कमा-
न्डर को अपनी बात मानने के लिए कायल कर सका।

इसी तरह से मैं मलाया में सभी जगह, जहां-जहां हिन्दुस्तानी
नजरबंदी काम पर थे, गया और इस बात का इन्तजाम किया कि हिन्दु-

स्तानी युद्धक़ैदी अपनी मर्जी के खिलाफ जापानियों के नीचे हाथयार पकड़ने या फौजी ट्रेनिंग पाने के लिए मजबूर न किये जायं।

२४ को मौत की सजा

मैं एक दफा दौरे पर गया हुआ था। तब जापानियों ने ४२ वीं फील्डपार्क कम्पनी रायल बम्बई एस. ऐंड एम. के २४ ग़ैर-कमीशन्ड अफसरों को, उन पर यह इलज़ाम लगाकर कि वे अंग्रेजों के कट्टर पक्षपाती हैं, पकड़कर ले गये। उन्होंने उनको फांसी देने का फैसला कर लिया और उनसे अपने आखिरी वसीयतनामों पर दस्तख़त करा लिये। मुझे दौरे से लौटने पर ये सब बातें मालूम हुईं। मैं दौड़ा हुआ जापानी बड़े दफ्तर को गया और मैंने उनसे अपने आदमियों को वापस देने के लिए कहा। मैंने कहा कि मैं उनका कमांडर समझा जाता हूं और जापानियों के लिए मेरे मातहत अफ़सरों से सीधे ताल्लुक रखना और मेरी जानकारी तथा इत्तफाक राय के बिना उन्हें ले जाना उसूलन भी ठीक नहीं है। आख़िर में मैंने उनसे कह दिया कि अगर वे अपनी बात पर अड़ रहे, तो मैं अपने पद से स्तीफ़ा दे दूँगा। तब जापानियों ने मुझसे कहा कि तुम इनमें से १५ आदमियों को ले जा सकते हो, लेकिन बाकी ९ को मौत की सज़ा देनी होगी; क्योंकि वे कट्टर ब्रिटिश पक्षपाती हैं और जापानी युद्ध-क़ैदी होते हुए भी इस बात पर अड़े हैं कि उन्होंने इंग्लैंड के बादशाह के प्रति वफ़ादारी की क़सम खाई हुई है।

मैंने जापानियों को इस क़सम का पूरा मतलब समझाया और कहा कि हिन्दुस्तानी फौज में किसी भारी जुर्म के होने पर मामूली ज़ाब्ता एक "जांच की अदालत" बैठाने का है और मैंने उनका विश्वास दिलाया कि मैं मामले की पूरी जांच करूंगा और अगर आख़िर में अदालत की राय में उनका जुर्म संगीन निकला, तो मैं खुद उन आदमियों को सज़ा के वास्ते जापानियों के सुपुर्द कर दूंगा।

इससे वे रज़ामन्द हो गये और मैं चौबीसों नानूकमीशंड अफ़सरों को सही सलामत वापस ले आया। मैंने अदालत बैठाकर जांच की और सबको रिहा कर दिया।

जब कि मलाया और सिंगापुर के जापानी जापान के फ़ायदे के लिए हिन्दुस्तानियों से ज़बरदस्ती काम निकालने की कोशिश कर रहे थे, दुनिया भर में हिन्दुस्तानी नेता बैंकौक, हिन्दुस्तान और बर्लिन में भी, उस आख़िरी लड़ाई के लिए तय्यारी करने में लगे हुए थे, जो केवल हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए लड़ी जाने वाली थी। जब कि हम हिन्दुस्तानी सिपाहियों में भारतमाता की आज़ादी के लिए सब कुछ कर गुज़रने की भावना अत्यन्त प्रबल हो रही थी, तब हम जापानियों के हाथ की कठपुतली बनने को बिलकुल भी तय्यार न थे। इस मजबूरी की हालत में मैंने बर्लिन रेडियो से नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की एक तक़रीर सुनी।

जापानियों ने हमारे सब रेडियो सैट ज़ब्त कर लिये थे, फिर भी हममें से कुछ ने कुछ सट कैम्पों में छिपाकर रख लिये थे। नेताजी की आवाज़ साफ़ थी, उससे उनका दृढ़ निश्चय टपकता था और रेडियो में भी हमने, उनके भाषण में जो जोर था, वह महसूस किया। हम सब की बड़ी प्रबल इच्छा थी कि खुद नेताजी आकर मुल्क की आज़ादी की लड़ाई में हमारे लीडर बनें, और जापानियों का हमसे अपना काम निकालना बन्द करें।

नेताजी के उस भाषण के कुछ हिस्से उन्हीं के शब्दों में दिये जाते हैं। "अंग्रेज लोगों के इतने प्रचार के बावजूद सोचने-समझने वाले हर हिन्दुस्तानी के लिए यह बात बिलकुल साफ़ है कि इस दुनिया में हिन्दुस्तान का सिर्फ एक ही दुश्मन है और वह है ब्रिटिश साम्राज्यवाद, जो सौ बरस से ज़्यादह से हिन्द का शोषण करने और खून चूसने में लगा हुआ है। मैं धुरी मुल्कों की तरफ़ से सफ़ाई पेश नहीं कर रहा हूं। यह मेरा काम नहीं है। मेरा सम्बन्ध सिर्फ़ हिन्दुस्तान के साथ है।""जब

ब्रिटिश साम्राज्यवाद पछाड़ दिया जायगा, हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायगी। यदि इसके विपरीत कहीं ब्रिटिश साम्राज्यवाद किसी तरह इस लड़ाई में जीत गया, तो हिन्दुस्तान की गुलामी की जंजीर हमेशा के लिए मजबूत हो जायगी। इसलिए हिन्दुस्तान के सामने आज़ादी और गुलामी में से एक चीज़ को चुन लेने का सवाल है। उसको चुनाव कर ही लेना चाहिए।

"अंग्रेजों के वेतनभोगी प्रचारक मुझे दुश्मन का एजेंट कहते हैं। जब मैं अपने देशवासियों से बोलता हूं तो मुझे अपनी सचाई साबित करने के लिए किसी के वकालतनामे की जरूरत नहीं है। मैं अपनी जिन्दगी भर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से बिना समझौता किये जूझता रहा हूं और मेरे मुल्क वालों की नज़र में यही मेरी सचाई का सबसे बड़ा सबूत है।...... मैंने अपना सारी जिन्दगी देश की खिदमत में लगाई है, और मैं मरते दम तक देश-सेवा ही करता रहूंगा। मैं दुनिया के किसी हिस्से में रहूं, मैं सिर्फ हिन्दुस्तान के प्रति वफादार रहा हूं, यदि लड़ाई के अलग-अलग मैदानों पर गौर करें, तो आप इसी नतीजे पर पहुंचेंगे, जिस पर मैं पहुंचा हूं कि दुनिया में कोई भी ताकत ब्रिटिश साम्राज्य को अब बिखरने से नहीं रोक सकती।.... हिन्द महासागर की चौकियां पहले ही ब्रिटिश, जहाजी ताकत के हाथ से निकल चुकी हैं। मांडले अंग्रजों के हाथ से निकल चुका है और मित्र फौजें बर्मा की सर जमीन से करीब-करीब खदेड़ी जा चुकी हैं।.... देश भाइयो! जब कि ब्रिटिश साम्राज्य ख़त्म हो रहा है, जब हिन्दुस्तान की आज़ादी का दिन नज़दीक आ रहा है तब मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की आजादी की पहली लड़ाई १८५७ में शुरू हुई थी। अब मई १९४२ में हमारी आजादी की आखिरी लड़ाई शुरू हुई है। कमर कस लीजिये। हिन्दुस्तान की मुक्ति की घड़ी नजदीक ही है।"

भारत छोड़ो प्रस्ताव और कुआलालमपुर में विराट आयोजन

११ अगस्त १९४२ को मलाया में खबर पहुंची कि इण्डियन नेशनल कांग्रेस न बम्बई की आल इंडिया कांग्रस कमेटी की बठक में अंग्रेजों से हिन्दुस्तान को छोड़ देने की मांग की है। महात्मा गांधी ने सब देशभक्तां से 'करो या मरो' की अपील करते हुए यह सन्देश दिया है कि "इस बात की इन्तज़ार मत करो कि नेता तुम्हें राह दिखलायेंगे। जो तुम्हें ठीक जंचे वह करो। जिस रास्ते से तुम्हारी नजर में आजादी मिले, वह करो।"

कुअलालमपुर के सब हिन्दुस्तानियों ने फैसला किया कि वे एक जगह जमा होकर कांग्रेस के पास किये "भारत छोड़ो" प्रस्ताव को मंजूर करें और महात्मा गांधी व बड़े-बड़े नेताओं की गिरफ्तारी पर अपनी नाराजगी ज़ाहिर करें। उस दिन सवेरे जापानी विचौन्दिया अफसर लेफ्टीनेंड युई आकर मुझ से बोला कि जनरल कमांडर जानना चाहता है कि क्या तुम और तुम्हारी फौजें इस समारोह में शामिल होंगी। मैंने कहा कि जरूर। उसने कहा कि तब तो तुमको जापानी और हिन्दुस्तानी कौमी झंडे लेकर मीटिंग की जगह तक मार्च करके जाना होगा यह जापानियों और हिन्दुस्तानियों में दोस्ती और गाढ़े सहयोग का निशान होगा।"

मैंन उससे कहा कि जाकर अपने जनरल से कह दो कि "अगर यह शर्त है तो मैं मीटिंग में नहीं जाऊंगा। कोई भी हिन्दुस्तानी किसी दूसरी क़ौम का कौमी झंडा ले जाना नहीं चाहता और अगर जापानी दुनिया को यह दिखलाना चाहते हैं कि क़ैदियों से जबरदस्ती जापानी झंडा उठवा सकते हैं, तो उनको इसके लिए आजाद करना चाहिए, अन्यथा नहीं। आखिर में मैंने उससे साफ़ कह दिया कि अगर हम मीटिंग में जायंगे, तो अपने झंडे के साथ जायंगे और जापानी झंडा नहीं

ले जायंगे।" उसने जाकर अपने जनरल को मेरी बातें बतला दीं। जापानी जनरल ने हमारी बात मान ली। इतना ही नहीं, उसने यह हुक्म भी निकाल दिया कि उस दिन कोई भी सिविलियन जापानी झंडा न फहराये।

हम लोग एक बड़े मैदान में जमा हुए। वहां क़रीब ४५ हज़ार आदमी जमा थे, जिनमें कई देशों और क़ौमों के लोग थे। कुछ ऊंचे जापानी अफ़सर भी मीटिंग में हाज़िर थे।

मुझसे हिन्दुस्तानी सिपाहियों की तरफ़ से बोलने को कहा गया। मैंने कहा कि "किसी को भी कभी यह न समझना चाहिए कि जापानी लोग आ० हि० फ़ौज को अपने हाथ की कठपुतली बना सकते हैं। अगर हिन्दुस्तान पहुंचने पर हमने देखा कि हमारे मुल्क पर जापानी लोगों की नज़र है, तो हम उन्हीं पर उलट पड़ेंगे और आ० हि० फौज का हरेक सिपाही जापानियों के हाथ की कठपुतली बनने के बजाय हिन्दुस्तान की इज्जत के लिए लड़ते-लड़ते अपनी जान दे देगा।" मेरे यह कहने पर जनता में जोश भर आया और उसने खूब हर्ष प्रकट किया। जब कि लोग जापानियों से डरे हुए थे, तब ऐसी बात कहना शायद बहुत बड़ी बहादुरी थी। मेरी स्पीच का रिकार्ड भी तय्यार किया गया। अगले दिन जापानी सेनापति ने मुझसे मिलकर मुझे बधाई देते हुए कहा कि अगर हम अंग्रेज़ों की जगह अपने आप बैठ जाने के लिए हिन्दुस्तान को जायें, तो तुम्हें हमसे जरूर लड़ना होगा, नहीं तो तुम अपने देश के प्रति गद्दार कहलाओगे।"

जून से सितम्बर १९४२ तक मैं मलाया में हिन्दुस्तानी युद्ध-क़ैदियों का कमांडर रहा और इस अरसे में मैंने भरसक उनकी ख़िदमत की। अनेक बार मुझे बिना खाये-पिये मालगाड़ी में सफ़र करना पड़ा और अपने आदमियों के वास्ते निचले दर्जे के जापानी अफ़सरों से बेइज्ज़ती तक सहनी पड़ी। मैंने जापानियों को हिन्दुस्तानी युद्ध क़ैदियों से किसी तरह भी अपना काम न निकालने दिया और इसके साथ-ही-साथ उनके लिए

अच्छे-से-अच्छा रहन-सहन प्राप्त किया । इससे अच्छा बरताव पूर्वीय एशिया में किन्हीं भी लड़ाई के कैदियों को नसीब नहीं हुआ।

मैं अपने देश की इज्जत का खयाल हमेशा रखता था और यह कभी कबूल न करता था कि जापानी कौम हमसे ऊंची है। कुछ हिन्दुस्तानी सिपाही, जो लड़ाई के जमाने में सिविलियन बन गये थे, इज्जत के साथ अपनी रोटी कमा रहे थे। मैंने जापानियों को उन्हें गिरफ्तार न करने के लिए समझाया जापानी मेरा कहना मान गये।

आजाद् हिन्द् फौज के लिए प्रचार

बैंकौक कांफ्रेंन्स से नुमाइन्दों के लौटने पर केवल कुछ ऊंचे अफ़सरों के साथ वहां के प्रस्तावों पर बहस की गई । औरों से वे तब तक छिपाकर रखे गए, जब तक कि ताकियो से उनकी मंजूरी न आ गई। बैंकौक कान्फ्रेंस की कारवाई मुख्तलिफ़ कैम्पों में जाकर लोगों को समझाने के लिए कुछ अफ़सर चुने गए। कौमियत पर आर भी अधिक व्याख्यान दिये गए और सबको अच्छी तरह समझाया गया कि आ. हि. फौज में शामिल होकर वे कितना गम्भीर क़दम उठा रहे हैं।

इस वक्त लोगों में क़ौमी जज्बा (राष्ट्रीय भावना) खूब उभारा गया। इस जमाने में जो लोग जान-बूझकर इस प्रचार के खिलाफ़ कारवाई करना चाहते थे, उनके खिलाफ़ कप्तान मोहनसिंह को सख्त कारवाई करनी पड़ी। कुछ अफ़सर रास्ते में कांटे साबित हुए, उनको अपनी यूनिट से अलग करके सजा के लिए डिटेन्सन कैम्प में रखा गया।

मलाया की जापानी फौजी सरकार ने आजाद हिन्द संघ सिंगापुर के रेडियो स्टेशन से प्रचार के लिए ब्राडकास्ट करने की इजाजत दे दी थी। श्री के. पी. के. मेनन संघ के प्रचार मंत्री मुकर्रर हुए, और मेजर इरसादअली आइ. एम. एस. को रेडियो महकमा सौंपा गया। हिन्दु-

स्तानी सिपाहियों और सिविलिग्रनों के हिन्दुस्तान को सन्देश तथा संघ के खास मेम्बरों के भाषण रोजाना ब्राडकास्ट किये जाते थे।

इससे पहले ही फौज के अफसर सैगोन और बैंकौक के रेडियो स्टेशनों का काम संभालने के लिए वहां भेजे जा चुके थे। सैगोन रेडियो स्टेशन से कर्नल एहसान, कर्नल नागर और कर्नल आई. हसन बहुत दिलचस्प ब्राडकास्ट करते थे, और हिन्दुस्तान भर के लोग उनको बहुत चाव के साथ सुना करते थे।

आजाद हिन्द संघ की ओर से सिंगापुर से "आजाद हिन्द" नामक एक रोजाना अखबार निकालता था। यह अखबार अंग्रेजी, तामिल, मलयालम, रामन, उर्दू तथा गुजराती में निकला करता था।

आजाद हिन्द फौज का संगठन

बैंकौक कान्फ्रेंस के थोड़े ही दिनों बाद मेजर फुजिवारा का तबादला हो गया और इसकी जगह इवाकरो कीकन का एक कर्नल नियुक्त किया गया। उसके दफ्तर ने कप्तान मोहनसिंह को आ. हि. फौज के संगठन के बारे में इत्तला दी और बतलाया कि जापानी लोग इतने हथियार सामान और गाड़ियां देंगे। आ. हि. फौज का संगठन उसको इस सामान के मुताबिक करना चाहिए।

कप्तान मोहनसिंह ने मेजर एम. जेड. कियानी को संगठन का ब्योरा तैयार करने के लिए मुकर्रर किया। अन्त में यह फ़ैसला हुआ कि आ. हि. फौज में १५००० आदमी होंगे और उसमें नीचे लिखे यूनिट और दल होंगे।

३ गुरिल्ला रेजिमेन्ट — गान्धी गुरिला रेजिमेन्ट
आज़ाद गुरिला रेजिमेन्ट — नेहरू गुरिला रेजिमेन्ट

१ खास सर्विस का दल——बहादुर दल,

१ खबरें लाने वाला दल — १ कुमक का दल

१ फ़ील्डफ़ोर्स की रेजिमेन्ट—पहली हिन्दुस्तानी फ़ील्ड फ़ोर्स

१ तोपखाने का दल — १ बख़तरबन्द गाड़ियों का दल

१ इंजीनियरिंग दल	१ एम. टी. कम्पनी
१ सिगनल कम्पनी	१ डाक्टरी मदद का दल
१ बेस हास्पिटल	१ अफ़सरों का ट्रेनिंग स्कूल

आ. हि. फौज के सदर मुकाम के साथ जरनल स्टाफ़ और दूसरे इन्तजामी महकमे होंगे और प्रचार का महकमा होगा।

हथियारों और सामान, सिपाहियों की तादाद, संगठन और गाड़ियों के बांटने का सब ब्यौरा आजाद हिन्द फ़ौज के बड़े दफ्तर ने तैयार किया था।

आगे चलकर आ. हि. फौज का और फैलाव करने के ख़याल से सिविलयनों और मामूली सिपाहियों में से अफ़सर तैयार करने के लिए अफ़सरों का ट्रेनिंग स्कूल खोला गया। इस स्कूल में सिखाने वाले सब अफ़सर हिन्दुस्तानी ही थे।

जहां तक होसका, हिन्दुस्तानी फौज की पुरानी यूनिटें तोड़ी नहीं गईं, और आ. हि. फौज की मुख़्तलिफ़ यूनिटों में भरसक पूरी तरह से ले ली गईं। अफ़सरों में थोड़ा बहुत रद्दोबदल करना ज़रूरी था और वह किया गया।

जो अफ़सर और सिपाही आ. हि. फौज में शामिल नहीं हुए, वे एक अलग हेडक्वार्टर के मातहत रखे गये। यह दफ्तर सब हिन्दुस्तानी युद्ध क़ैदियों का इन्तजाम करता था। इस दफ्तर का कमांडर बहावलपुर रियासती फ़ौज के मेजर ए. बी. मिर्ज़ा को सौंपा गया और वह आ. हि. फ़ौज के हेड क्वार्टर की हिदायतों के मुताबिक़ इन्तज़ाम करता था।

आजाद हिन्द संघ और नागरिकों का शिक्षण

बैंकौक कान्फ्रेंस के बाद कान्फ्रेंस में पास हुए एक प्रस्ताव के अनुसार कौंसिल आफ़ एक्शन की तरफ से पूर्वीय एशिया में आजाद-

हिन्द संघ खोले गए। संघ की हर शाखा के प्रधान नियत किये गए और मुक़ामी सिविलियनों की एक कमेटी बनाई गई। इनका खास काम अपने-अपने यहां के हिन्दुस्तानियों की भलाई की देख-भाल तथा तकलीफ दूर करना था। जापानियों को जब मजदूरों की जरूरत होती थी तब उनका इन्तज़ाम भी ये शाखायें ही करती थीं।

ये शाखायें अपने क्षेत्रों में कोई खास फौजी ट्रेनिग तो नहीं देता थीं पर अपने यहां के हिन्दुस्तानियों को अच्छे हिन्दुस्तानी नागरिक बनाने के लिए सभाओं का इन्तजाम किया जाता था। कौन्सिल आफ एक्शन ने कुआलालमपुर में सिवलियनों के ट्रेनिग के लिए एक केन्द्र खोलने का फैसला किया था। सिविलियनों को सिविक फ़रजों और प्रबन्ध सम्बन्धी ट्रेनिग देने के लिए पेनांग में एक स्कूल खोला गया था। यहां से पास होने पर ये अफ़सर लाकल कमेटियों को अपने काम में मदद देने के लिए मलाया की भिन्न-भिन्न संस्थाओं को भेजे जाते थे।

आ० हि० फौज के जनरल स्टाफ़ ने ऊंचे अफ़सरों से सलाह करने के बाद यह फसला किया कि आ० हि० फौज का ट्रेनिग हिन्दुस्तानी फौज के ढंग पर ही किया जाय, क्योंकि जापानियों ने हमको जो हथियार और सामान दिये थे, वे सब हिन्दुस्तानी फौज और अंग्रेज़ी फौज के ढंग के थे। यह फसला किया गया कि जापानी ढंग का ट्रेनिग आम तौर पर न दिया जाय, लेकिन उनकी वे बातें, जो हिन्दुस्तानी फ़ौज से अच्छी हैं और आ० हि० फौ० के लिए ज्यादा मौजूं हैं, ले ली जायं।

आजाद हिन्द फौज की ट्रेनिग की पालिसी का फैसला जनरल स्टाफ़ किया करता था, किन्तु अलग-अलग दलों के कमांडरों को लड़ाई में अपने दल के काम के मुताबिक ट्रेनिग देने की आजादी दी गई थी। ट्रेनिग का किताबों और तजुरबे के होन से कुछ हद तक दिक्कत होती थी; किन्तु धीरे-धीरे अफ़सरों ने जिम्मेदारी उठाना सीखा और ट्रेनिग के अपने तरीके निकाल लिये। बाद को जनरल स्टाफ़ की ओर से

अफ़सरों की मदद के लिए किताबें और पैम्फ़लेट छपवाये गये।

सब दरजों के सिपाहियों में क़ौमियत का जज्बा जगाने पर ख़ास ज़ोर दिया जाता था। हिन्दुस्तानी फौज के सिपाहियों में ग़ुलामी और भाड़े के टट्टूपन का ख़याल गहरी जड़ पकड़े हुए था। पहले इसको दूर करना था। अफ़सरों से अपने मातहत सिपाहियों को ख़ास तौर पर यह सिखलाने को कहा गया था कि वे हिन्दुस्तानी हैं और आ० हि० फौज हिन्दस्तानियों की फौज है। उसके सिपाही और अफ़सर सब हिन्दुस्तानी हैं। उसका एक-मात्र मक़सद आजादी की लड़ाई में हिन्दुस्तान की मदद करना है, और यह मकसद ख़ुददारी, जिम्मेदारी व कौमियत के ऊंचे ख़यालात जगाने से ही पूरा किया जा सकता है।

सिपाहियों को यह भी सिखलाया गया कि वे जात-पांत के भेद के बिना पहले हिन्दुस्तानी हैं और धीरे-धीरे आ० हि० फौज में अलग-अलग रसोई और दूसरे मज़हबी भेद-भाव दूर कर दिये गए। हर सिपाही और अफ़सर, चाहे वह किसी जाति और धर्म का हो, साथ ही खाता और काम करता था।

अंग्रेज़ी के कमांड के शब्दों को हटाकर उनकी जगह हिन्दुस्तानी कमांड के शब्द रखे गये। कांग्रेस का झंडा आ० हि० फौज का झंडा बनाया गया।

जहां तक हो सका, ट्रेनिंग में जापानियों से कोई मदद नहीं ली गई।

सितंबर १९४२ में सिंगापुर में

सितंबर १९४२ में मुझे सिंगापुर वापस बुलाकर अफ़सरों के ट्रेनिंग स्कूल में कर्नल भगत के नीचे नायब कमांडर की जगह दी गई। कुछ दिनों पीछे कर्नल भगत का वहां से तबादला कर दिया गया और मैं उस स्कूल का कमांडर बना दिया गया। इस स्कूल ने नवंबर १९४२ में काम करना शुरू किया, परन्तु वह कुछ दिनों बाद सेनापति मोहनसिंह के हुक्म से बन्द कर दिया गया।

विद्यार्थियों के सामने अपने शुरू के लेक्चर में मैंने कहा कि आज़ादी हमारा पैदायशी हक है, और इसको पाने के लिए हमें अंग्रेजों से लड़ना होगा। आगे चलकर अगर जापानियों ने हमारे मुल्क पर कब्जा जमाने का इरादा ज़ाहिर किया, तो हमें उनसे भी लड़ने को तैयार रहना चाहिए। मैंने कहा कि जो आदमी पहले हिन्दुस्तानी फौज में थे, उनको आ. हि. फौज में शामिल होने का पूरा हक़ है; क्योंकि उन्होंने अपने मुल्क के लिए वफ़ादारी की क़सम ली है। इस क़सम को अपनी समझ के मुताबिक़ पूरा करने का पूरा हक़ है। इसके लिए अगर उन्होंने इस फौज में शामिल होने का फैसला किया, तो बहुत ठीक किया। आज़ादी के लिए हिन्दुस्तान की इच्छा को बार-बार कुचला गया है, लेकिन फिर भी हिन्दुस्तान जिन्दा रहा और लगातार डेढ़ सौ बरस तक विदेशी शासन के बावजूद उसकी आजादी की आकांक्षाएं आज भी बनी हुई हैं। और यह पहले से भी ज्यादह है। हिन्द माता के सबसे अच्छे पुत्र और पुत्रियों ने अपने मुल्क की आज़ादी के लिए लड़ने के अपराध के पीछे ग़रीबी और आफतों को झेला है। फिर भी हमेशा नई पीढ़ी ने मरे हुओं की कब्रों से न शान्त होने वाली उम्मीद पाई है और आज़ादी की लड़ाई को जारी रखा है। लड़ाई और मौत का यह चक्कर चलता ही गया है, वह ख़तम नहीं हुआ है। हमने सिर नहीं झुकाया। आज़ादी की आग हमारे दिलों में लगातार जलती रही। हमको कुलियों और क्लर्कों की कौम बना दिया गया; फिर भी यह आग जोर से सुलगती रही। साल दरसाल अकाल और बाढ़ ने हमें लाखों करोड़ों की तादाद में हड़प लिया, फिर भी इस चिनगारी को हमने अपनी औलाद तक पहुंचाया। यह छोटी चिनगारी बार-बार लपट बनकर भड़क उठी। एक बार फिर इतिहास ने हमको एक बड़ी होली के लिए बुलाया है। और हम साम्राज्यवाद के इस भयानक क़ैदख़ाने में आग लगाने के लिए अपने आपको जिन्दा मशाल बनाने को तय्यार हैं।

ज़ाती तौर पर मुझे अब भी जापानियों की ईमानदारी पर एतबार नहीं था। इसलिए मैं अफ़सरों में ऐसा भावना भर देना चाहता था कि वे ज़रूरत पड़ने पर फ़ौरन उलटकर जापानियों से लड़ने को तैयार हो जायें।

युद्ध-क़ैदियों के कैम्पों का निरीक्षण

सिंगापुर आते ही मैं युद्ध-क़ैदियों के सब कैम्पों को देखने गया। आ० हि० फौज में होते हुए भी युद्ध-क़ैदियों से मेरी पूरी हमदर्दी थी। दर असल में उनकी हिफ़ाजत के लिए ही पहले-पहल आ० हि० फौज में शामिल हुआ था। मैंने देखा कि मेरे पीछे उनके साथ अच्छा बरताव नहीं हुआ और उनमें से बहुत से, खासकर अफ़सर, सज़ा के लिए अलग कैम्पों में रख गए थे।

सेलेतार कैम्प में क़रीब ६००० आदमियों ने सख़्तियों से बचने, हथियार पाने और फिर आ० हि० फौज के खिलाफ़ उलट पड़ने के मतलब से वालंटियर बनने के लिए दस्तखत कर दिए थे। मेरी राय थी कि न चाहने वाले वालंटियरों को आ० हि० फौज में भरती करना बेकार था, क्योंकि वे ठीक वक़्त पर धोखा दे जायंगे। मैंने जाकर जनरल आफ़िसर कमांडिंग मोहनसिंह से यह बात कही। उन्होंने यह क़बूल करने से इन्कार किया कि आ० हि० फौज के लिए वालंटियर भरती करने में ज़ोर ज़बरदस्ती की जाती है। मैं उन्हें सेलेतार ले गया और वहां अफ़सरों से बातचीत करने के बाद मेरी बात पर उन्हें यक़ीन हुआ। तब उन्होंने ऐसे सब वालंटियरों की फ़ेहरिस्तें फाड़ डालने का हुक्म दिया।

असल में बात यह थी कि हिन्दुस्तानी कैम्पों के मुक़ामी कमांडर अपनी कारगुज़ारी दिखाने के लिए नए वालंटियरों की लम्बी फ़ेहरिस्तें तैयार करना चाहते थे, और इसलिए उन्होंने बहुत-सी ग़ैरक़ानूनी कार्रवाइयां कीं और मुमकिन है कि सच्चे वाक़यात की रिपोर्ट कप्तान मोहनसिंह तक कभी भी न पहुंची हो।

दुविधा

जिस दिन से हमको जापानियों के साथ रहने का मौका मिला, उसी दिन से हममें से ज्यादातर लोग जापानियों के बरताव को सख्त नापसन्द करने लगे। जापानी लोग सिर्फ जबान से हमारी आज़ादी की लड़ाई में मदद करने का दावा करते थे। जब हमने जापानी सिपाहियों की संगठित लूट-मार अपनी आंखों से देखी, तो हमारी नापसन्दगी और भी बढ़ गई। हम अक्सर अपने मन से पूछा करते थे कि "जब हम जापानियों को अपने साथ हिन्दुस्तान ले जायंगे, तो क्या यहां भी यही बातें होंगी?" फिर हमको जापानियों से जितना ही ज्यादह वास्ता पड़ा, हिन्दुस्तान के बारे में उनकी असली नीयत पर हमारा शुबहा उतना ही ज्यादा बढ़ता ही गया। मसलन जब हमने पहले यह आ० हि० फौज का संगठन किया, तो उन्होंने हमें तोपें तो दीं; लेकिन उनके साथ दूरबीन वगैरा कुछ नहीं दीं। और बिना इन चीजों के निशाना ठीक-ठीक नहीं लग सकता था। किसी क़िस्म का गोला-बारूद भी आ० हि० फौज को नहीं सौंपा गया। आ० हि० फौज के टैंक और बख़्तरबन्द गाड़ियां दिखाऊ परेडों और प्रचार के लिए फोटो खींचने के ही काम की थीं। दरअसल आजकल के हथियारों से जानकार कोई भी आदमी आसानी से देख सकता था कि जापानी लोग आ० हि० फौज को ठीक हथियार और सामान नहीं दे रहे थे और यह जान-बूझ कर किया जा रहा था। इन जरूरी हथियारों के बिना कोई फौज आजकल लड़ाई में कामयाब नहीं हो सकती थी। शायद जापानियों का कभी भी यह इरादा नहीं था कि आ० हि० फौज लड़ने के काम आये। कम-से-कम हमारे मन पर तो यही असर पड़ा, कि जापानी आ० हि० फ़ौज पर एतबार नहीं करते थे और उसको मज़बूत बनाते हुए डरते थे। इससे जापानियों पर हमारा शुबहा बढ़ता ही गया।

हम यह भी जानते थे कि इंडियन नेशनल कांग्रेस जापान की फैलाव की नीति के खिलाफ़ होगी। पर दूसरी ओर नेता जी सुभाष-

न्द्र बोस बर्लिन से ब्राडकास्टों में हमसे हिन्दुस्तान पर हमला करके ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश करने के लिए कह रहे थे। बंगाल तथा बिहार में जो कुछ हो रहा था और १९४२ की तहरीक को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार के जो वहशी कारनामे थे, उनसे भी हम वाकिफ़ थे।

इस तरह हम दुविधा में पड़े थ। हमें सूझता न था कि क्या करें। र असल हमें इसमें भी शुबहा था कि जब हम जापानियों के साथ हिन्दुस्तान पहुंचेंगे, तो वहां हमारा स्वागत होगा या वे लाग हमारे मुंह र थूकेंगे।

ऐसी ही हालत में अगस्त१९४२ के शुरू में कप्तान मोहनसिंह ने र्नल गिल को कुछ क़ाबिल-एतबार चुने हुए अफ़सरों के साथ र्मा फ्रन्ट पर इसलिए भेजा कि वे हिन्दुस्तान में घुसकर हिन्दुस्तानी ीडरों से संपर्क क़ायम करके, देश में लोगों का क्या ख़याल है, इसकी च्ची रिपोर्ट दें। इस दल के पास रेडियो से खबर भेजने की मशीन दूसरा सब ज़रूरी सामान था।

फ्रन्ट पर पहुंचने पर इस दल का एक खास आदमी, जो जनरल ोहनसिंह का पक्का मोतबिर दोस्त था, धोखा कर गया और वह ़िटिश फ़ौज से जा मिला। कहते हैं कि हिन्दुस्तान पहुंचने पर इस फ़सर ने सिंगापुर से अपने भागने की दिल दहलाने वाली कहानियां ़ीं। अपने साथ ही वह आ० हि० फौज के अत्यन्त खुफिया ागज़ात ले गया; और "अपनी खिदमतों के बिलकुल अनुरूप" उसको ब्रिटिश साम्राज्य के मेंबर" का खिताब मिला। इससे बेचारे कर्नल ल का दिल टूट गया और उन्होंने इस दिशा में कुछ और कोशिश रने का इरादा ही छोड़ दिया। वह निराश होकर सिंगापुर लौट गये।

इस वाक़ये की वजह से जापानी लोग आ० हि० फौज पर और ा ज़्यादह बेएतबारी करने लगे, और दोनों फ़ौजों में आपसी बेएतबारी ़ती गई। कुछ हफ्ते बाद और भी बड़ा संकट पदा हो गया

परिणाम यह हुआ कि आजाद हिन्द फौज तोड़ दी गई और जनरल मोहनसिंह गिरफ्तार कर लिये गए।

संकट काल

जनवरी सन् १९४२ के शुरु में ही जनरल मोहनसिंह ने कुआला-लमपुर से मेजर रामस्वरूप के मातहत कुछ अफ़सरों और सिपाहियों का एक दल वर्मा की जापानी फौजों के साथ काम करने के लिए भेजा था। तब से ही यह दल वर्मा के मुख्तलिफ़ लड़ाई के मोर्चों पर काम कर रहा था। जापानियों ने इनको आठ-आठ दस-दस आदमियों की छोटी-छोटी टुकड़ियों में बांट कर सीधे एक जापानी अफ़सर के नीचे एक जापानी बटालियन के साथ कर दिया था। जापानी लोग इनसे प्रचार और जासूसी का काम लेते थे।

जब कर्नल गिल वर्मा में आये तो हिन्दुस्तानियों को सीधे जापानियों के नीचे काम करते देखकर बहुत नाराज़ हुए। जापानी जनरल हेडक्वार्टर के स्टाफ़-अफ़सरों से बातचीत करने के बाद उन्हें मालूम हुआ कि आ० हि० फौज के बड़े हिस्सों के वर्मा में पहुंचने के बाद उनसे भी इसी तरह का काम लने का जापानियों का इरादा है।

अक्टूबर १९४२ के शुरु में आ० हि० फौज की सब यूनिटों का एक दल आग से रंगून भेजा गया कि वह नवंबर या दिसंबर १९४२ में आने वाली बाकी आ०हि०फ़ौज की अगवानी का इन्तजाम करे।

अक्टूबर १९४२ में एक और बड़ा वाक़या हुआ। हिन्दुस्तानियों न वैंकौक में स्वीकृत हुए प्रस्ताव के अनुसार जापानियों से मलाया छोड़कर गये हुए हिन्दुस्तानियों की जायदाद आजाद-हिन्द फ़ौज को सौंप देने की मांग की। जापानियों ने इस सब जायदाद पर कब्जा कर लिया था और अब उसे छोड़ने से इनकार कर दिया। हिन्दुस्तानी जब अपनी मांग पर अड़े रहे, तो इवाकुरो किकन के जापानी राजनीतिक सलाहकार ने आजाद संघ के सदस्यों को साफ ही कह दिया कि जहां तक जापानियों का तालुक ह , हिन्दुस्तान की आजादी का सवाल

बिलकुल वाहियात है, और तुमको बहुत ज्यादह रियायतें नहीं मांगनी चाहिएं जो लोग जापानियों की ईमानदारी पर भरोसा करते थे, उनकी भी आँखें खुल गई।

वर्मा से सिंगापुर लौटने के बाद कर्नल गिल ने जनरल मोहनसिंह को बर्मा की हालत बतलाई और सलाह दी कि जब तक जापानी सरकार बेंकोक कान्फ्रेंस के प्रस्तावों पर अपनी मंजूरी न दे दे, तब तक कोई भी फौजें वर्मा हरगिज न भेजी जायं, और चेतावनी दी कि जापानी हिन्दुस्तानियों से सिर्फ अपना उल्लू सीधा करने पर तुले हुए हैं। जनरल मोहनसिंह ने मलाया और वर्मा की लड़ाइयों में जापानियों के लिए इतना किया था और शुरू-शुरू में उसको जापानियों पर पूरा एतबार था, अब उसको भी जापानियों की नीयत पर शक पैदा हो गया। यह तय हुआ कि जब तक जापानी सरकार बेंकोक के प्रस्तावों पर बाक़ायदा अपनी मंजूरी न द दे, तब तक और फौजें वर्मा न भेजी जायं।

जब जनरल मोहनसिंह ने यह फैसला किया तब बन्दरगाह में जापानी जहाज़ हिन्दुस्तानी फौजों को सिंगापुर से वर्मा ले जाने के लिए तय्यार खड़े थे। ऐन ऐसे मौके पर मोर्चे पर फौजें भेजने से इनकार कर देने की जिम्मेदारी बड़ी संगीन थी और उसे जनरल मोहनसिंह अकेले नहीं उठाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कौन्सिल ऑफ ऐक्शन के सदर से एक बैठक बुलाने को कहा। इस बैठक में सब सदस्यों के अलावा जापान के मध्यस्थ-संगठन के मुखिया जनरल इवाकुरो भी हाजिर थ। श्रीराघवन् ने जनरल मोहनसिंह से पूछा कि "तुमने कौन्सिल ऑफऐक्शन से बिना पूछे आ० हि० फौज का दल वर्मा क्यों भेजा? आ० हि० फौज के लड़ाई में इस्तेमाल करने का हिन्दुस्तान की आज़ादी की तहराक से बड़ा गहरा सम्बन्ध है।" जनरल मोहनसिंह इसका कोई तसल्लीदेह जवाब न दे सके। उसके लिए उन्होंने माफी मांगी और आइन्दा ऐसी सब बातों में कौन्सिल ऑफ ऐक्शन की सलाह ले लेने का वायदा किया।

तब कौन्सिल ऑफ ऐक्शन ने यह राय प्रगट की कि जापानी मध्यस्थ महकमा आ० हि० फौज और आजाद हिन्द संघ के कामों में बेहद दस्तन्दाजी कर रहा है और हिन्दुस्तान की आजादी की तहरीक से हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में जापानियों की आकांक्षाओं की पूर्ति करने का काम लेना चाहता है। यह फैसला किया गया कि जापानियों के ऐसे सब इरादों का सामना किया जाय और हिन्दुस्तान की आजादी की तहरीक जापानी दस्तन्दाजी के बिना, हिन्दुस्तान की भलाई के खयाल से चलाई जाय।

श्री पी. के. मेनन ने, जो "कौन्सिल ऑफ ऐक्शन" के बड़े निडर देशभक्त सिविलियन मेम्बर थे, बतलाया कि बैंकौक कान्फ्रेंस को हुए पांच महीने हो गए और जापानी सरकार ने अभी तक उसके प्रस्तावों पर बाक़ायदा अपनी मन्जूरी नहीं दी। इन पर अमल होने के लिए सबसे पहली जरूरी बात यह थी कि जापानी सरकार बाक़ायदा उन पर अपनी मन्जूरी दे। इस मन्जूरी से पहले खड़ी की हुई आज़ाद हिन्द फौज ग़ैर कानूनी है, और उसका काम फ़ौरन बन्द कर देना चाहिए।

इसी बीच स्वराज्य इन्स्टीट्यूट के वाक़ये की वजह से आजाद-हिन्द संघ में एक विकट संकट पैदा हो गया। वह वाक़या यह है कि श्री राघवन् ने पेनांग में हिन्दुस्तानी नौजवानों को क़ौमी ख़िदमत के लिए ट्रेनिंग देने को एक सभा क़ायम की थी। वहां जो कुछ सिखाया जाता था, उसमें देश-भक्ति कूट-कट कर भरी होती थी। वहाँ तोड़-फोड़ और जापानी भाषा भी सिखलाई जाती थी। नवम्बर १९४२ के शुरू में एक रात को जापानी फौजी अफ़सर मध्यस्थ विभाग के अफ़सरों के साथ इस इन्स्टीट्यूट में आये। उन्होंने लड़कों को इकट्ठा करके उनमें से सबसे होशियार और होनहार कुछ लड़कों को चुन लिया और उन्हें मोटर लारी में बैठाकर ले गये। श्री राघवन् ने बहुतेरी कोशिश की; किन्तु यह पता न चल सका कि इस वाक़ये के लिए कौन जिम्मेदार है और लड़के कहां हैं? कौन्सिल ऑफ़ ऐक्शन ने बाक़ायदा जापानी

जनरल हेडक्वार्टर से प्रतिवाद किया, किन्तु कोई सन्तोषप्रद जवाब न मिला। तब श्री राघवन् ने कहा कि अगर जापानियों ने आइन्दा कभी ऐसा न करने का खुल्लम-खुल्ला वायदा न किया और उन लड़कों को न लौटाया, तो मैं इन्स्टाट्यूट का बन्द कर दूंगा। एक सिविलियन के लिए ऐसा कहना बड़े साहस की बात थी। जापानी लोग अपने मातहत लोगों को अपनी इच्छा के खिलाफ आवाज उठाने देने में एतबार नहीं रखते। इस बात का डर था कि जापानी गेस्टापो शायद चुपचाप श्री राघवन् का खातमा कर देंगे, किन्तु वह बहादुर आदमी अपने निश्चय पर अटल रहा। आखिर में जापानियों को क़बूल करना पड़ा कि उन लड़कों को जापानी फौज ले गई थी। श्री राघवन् ने जापानियों की इस मनमानी की खुल्लम-खुल्ला मुखालफत की और मध्यस्थ महकमे से कह दिया कि मेरा इन्स्टीट्यूट जापानियों के लिए जासूस तैयार करने का कारखाना नहीं है। उन्होंने यह भी साफ कह दिया कि किसी हिन्दुस्तानी को अपनी मर्जी के खिलाफ़ जापानी फौज के साथ काम करने को मजबूर नहीं किया जा सकता। उन्होंने सब हिन्दुस्तानियों को कौन्सिल ऑफ़ ऐक्शन की इजाजत के बिना जापानियों के साथ काम न करने की सलाह दी।

आख़िर २९ नवम्बर १९४२ को श्री राघवन् ने ज़बरदस्ती लड़कों को ले जाने के इस वाक़ये के प्रतिवाद में स्वराज इन्स्टीटयूट बन्द कर दिया। जापानी लोग इससे बड़े नाराज हुए और उन्होंने इसे अपने सम्राट् की बेइज्ज़ती बतलाकर श्री राघवन् को पेनांग के उनके घर में नज़रबन्द कर दिया और किसी का भी उनसे मिलने जाना बन्द कर दिया। श्री राघवन् आ० हि० लीग की मलाया शाखा के सदर थे। उनकी गिरफ्तारी से मलाया के सभी हिन्दुस्तानियों में बड़ी उदासी छा गई।

इसी प्रकार के वातावरण में कौन्सिल ऑफ़ ऐक्शन की सिंगापुर में एक बैठक हुई और उसने अपनी मांगें पेश करते हुए जापानी सरकार से बैंकाक की कान्फ्रेंस की मांगों का साफ जवाब चाहा। उसने

जापानियों को चेतावनी दी कि अगर १५ दिन के अन्दर कोई तसल्लीदेह जवाब न मिला, तो आ० हि० फौज और आजाद हिन्द संघ तोड़ दिये जायंगे।

मध्यस्थ महकमे के जनरल इवाकुरो ने कौन्सिल ऑफ् ऐक्शन को सलाह दी कि जापानी सरकार को ऐसी कड़ी चिट्ठी लिखना सही रास्ता नहीं है, और वह शायद अल्टीमेटम समझा जाय। तब कौन्सिल ने वह चिट्ठी भेजने का इरादा छोड़ दिया और जनरल इवाकुरो ने वायदा किया कि मैं जापानी सरकार से जल्दी ही जवाब मंगा दूंगा। सैगोन और तोकियो को इसके लिए खास आदमी भेजे गये।

इस पर जापानी बड़े वज़ीर जनरल तोजो ने एक गोल-माल बयान दिया कि हिन्दुस्तान के किसी हिस्से को लेने की जापान की इच्छा नहीं है। किन्तु कौन्सिल ऑफ ऐक्शन की इतने से तसल्ली नहीं हुई और पहली तैयार की हुई चिट्ठी जापानी सरकार के पास भेजने के लिए जनरल इवाकुरो को दे दी गई। इसमें ख़ास मांगें ये थीं कि :—

(१) बैंकौक कान्फ्रेंस के निर्णयों की बाक़ायदा मन्जूरी दी जाय।

(२) आ० हि० फौज और आजाद हिन्द संघ के काम में जापानियों की दस्तन्दाजी बन्द की जाय।

(३) हिन्दुस्तानी लड़ाई के क़ैदी जनरल मोहनसिंह की कमान में ही पहले की तरह रहें।

अक्तूबर १९४२ में आ० हि० फौज के कायम होने के बाद एक नये जापानी युद्ध-कैदी ने उन सब हिन्दुस्तानी सिपाहियों को अपने नीचे लिया था, जो आ० हि० फौज में शामिल नहीं हुए थे। जनरल मोहनसिंह इनको भी अपने ही मातहत रखना चाहते थे, क्योंकि उनको वे आ० हि० फौज के लिए रिज़र्व समझते थे। जापानियों ने इन मांगों को कबूल करने से इनकार कर दिया और एक नया संकट पैदा हो गया। जनरल मोहनसिंह ने तब आ० हि० फौज के ऊंचे अफ़सरों की एक बैठक बुलाई और उनकी राय मांगी। उन सबकी राय थी कि

हमको अपनी मांगों पर डटे रहना चाहिए और जापानी लोग न मानें तो आ० हि० फौज को तोड़ देना चाहिए।

८ दिसम्बर १९४२ को जापानियों ने कर्नल गिल को, इस शुबह पर कि वह ही इस सब संकट का जड़ में है, गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने उसको ब्रिटिश जासूस बतलाया और कहा कि उसी के उकसाने से मेजर ढिल्लन बर्मा में अंग्रेजों से जा मिला। उसके दल के वे सब लोग भी, जो हिन्दुस्तानी नेताओं से सम्पर्क क़ायम करने के लिए उसके साथ बर्मा गये थे, गिरफ्तार कर लिये गए।

कर्नल गिल की गिरफ्तारी के बाद कौन्सिल ऑफ ऐक्शन के सब मेंबरों ने इस्तीफे दे दिये। फौज में वह लोग यह महसूस करते थे कि जापानी अपने वायदे से फिर गये हैं और हमें उनसे कोई वास्ता नहीं रखना चाहिए। मैंने और मेरे दल के दूसरे लोगों ने, जिनको जापानियों पर कभी ऐतबार नहीं हुआ था, जापानियों को सहयोग देना बंद करने के लिए यह बिलकुल ठीक मौक़ा समझा। हमने आ० हि० फौज के खिलाफ खूब प्रचार करके जनरल मोहनसिंह को फौज तोड़ देने की सलाह दी।

कौन्सिल ऑफ़ ऐक्शन के सदर श्री रासबिहारी बोस इस राय के थे कि हिन्दुस्तानी आज़ादी की तहरीक के रास्ते की सब दिक़्क़तें और रुकावटें जापानी सरकार के साथ बातचीत करके दूर की जा सकती हैं। उन्होंने कहा कि मैं खुद तोकियो जाकर बड़े वजीर तोजो से बातचीत करके सब दिक्क़तों को दूर करा दूंगा और जनरल मोहनसिंह को धीरज रखने की सलाह दी। किन्तु जनरल मोहनसिंह व कौन्सिल ऑफ़ ऐक्शन के दूसरे मेम्बरों ने श्री बोस की एक न सुनी और हालात दिन पर दिन बिगड़ते गए।

दिसम्बर १९४२ के बीच के क़रीब श्री रासबिहारी बोस ने वातावरण को शान्त करने की कोशिश की। उन्होंने जनरल मोहनसिंह को एक चिट्ठी लिखी कि कोई ऊंचा अफ़सर मेरे पास मेरे होटल में भेजो और मैं सारी हालत उसको समझा दूंगा। लेकिन जनरल मोहनसिंह

ने उनको सूखा जबाव दे दिया कि कोई अफ़सर आपसे मिलना नहीं चाहता और मैं किसी अफ़सर को आपसे मिलने नहीं दूंगा । इस पर श्री रासबिहारी बोस ने जापानियों को हुक्म लिखकर दे दिया कि जनरल मोहनसिंह को गिरफ्तार कर लिया जाय ।

तब जनरल इवाकुरो ने २० दिसम्बर १९४२ को जनरल मोहनसिंह को बुला भेजा और गिरफ्तार कर लिया शुरू-शुरू में जापानियों ने जनरल मोहनसिंह से बहुत अच्छा बरताव किया । उनको सिंगापुर के पास सेंट जान के टापू में एक अलग बंगला दिया गया । उनको अपने साथ सात आदमी रखने की इजाज़त थी, जिन में दो उनके ए. डी. सी. थे और बाकी रसोइया और अरदली वग़ैरह थे । बाद को उनका तबादला सुमात्रा को कर दिया, और अंग्रेज जब वहां पहुंचे, तो उन्होंने अपने आपको अंग्रेज़ों के सामने पेश किया, और वे दिल्ली के लाल क़िले में ले आये गए । जनरल मोहनसिंह को पहले ही से अपनी गिरफ्तारी का ख़याल हो गया था, और उन्होंने अफ़सरों को हिदायतें दे दी थीं कि मेरे गिरफ्तार होते ही आ० हि० फौज को तोड़ दिया जाय। उनकी गिरफ्तारी का हाल मालूम होते ही उन हिदायतों पर अमल किया गया । सब हथियार इकट्ठे करके रख दिए गए, पार्टी के और ओहदों के सब बिल्ले जला दिए गए और सब फौजी ट्रेनिंग बन्द कर दी गई ।

इस समय जापानियों के खिलाफ भावना बहुत प्रबल थी । और सब अफसरों और सिपाहियों न कभी जापानियों का विश्वास न करने का इरादा कर लिया था ।

आ० हि० फौज ने जापानी मध्यस्थ विभाग को एक चिट्ठी लिखकर इत्तिला दी कि सब अफसरों और सिपाहियों ने युद्धबन्दी की हैसियत में रहने का फैसला कर लिया है । जापानियों ने उनको क़ैदी मानना क़बूल न किया । उन्होंने कहा कि जहां तक जापानियों का ताल्लुक़ है, तुम लोग एक बार आज़ाद मान लिये गए हो और अब

फिर कैदी नहीं माने जा सकते। तब हमने कहा कि अगर हम आज़ाद हैं, तो हम अपनी आज़ादी के हक़ से फ़ायदा उठायेंगे और मलाया, थाइलैंड और बर्मा में सिविलियन के तौर पर बस जायेंगे। जापानियों ने हमें कैम्प से बाहर नहीं जाने दिया।

श्री रासबिहारी बोस का कहना था कि मोहनसिंह को आ० हि० फौज के जनरल के ओहदे से स्तीफा देने का तो पूरा अख़्त्यार था, लेकिन फौज को तोड़ने का कोई अख़्त्यार न था, क्योंकि वह उनकी निजी चीज़ न थी। वह हिन्दुस्तान की फौज थी, न कि मोहनसिंह की। श्री रासबिहारी बोस ने यह भी बाक़ायदा ऐलान कर दिया कि मैंने मोहनसिंह की गिरफ्तारी का हुक्म दिया है और उनको आजाद हिन्द फौज का प्रधान सेनापति मुकर्रर करते वक़्त मैंने उनको जनरल का जो पद दिया था, वह अब वापिस ले लिया जाता है।

क़रीब दो मास तक यही हालत रही। इस बीच श्री रासबिहारी बोस और जापानियों ने सिपाहियों और अफ़सरों में आ० हि० फौज न छोड़ने के लिए जबरदस्त प्रचार किया। ज्यादहतर अफ़सर और सिपाही आ० हि० फौज में रहना नहीं चाहते थे, लेकिन जापानियों कुछ छोटे अफ़सर मिल गये, जो एक पिट्ठू आ० हि० फौज खड़ी करने को तैयार थे।

बिदादरी में जनरल इवाकुरो के लेक्चर

फ़रवरी १९४३ में फौज में जापानियों के प्रबल प्रचार के बाद जापानी जनरल इवाकुरो ने आ० हि० फौज के सब अफ़सरों को, जो क़रीब ३०० थे, बिदादरी में बुलाकर एक लेक्चर दिया। इस लेक्चर की ख़ास बातें ये थीं :—

(क) बैंकौक में पूर्वीय एशिया के रहने वाले सब हिन्दुस्तानियों के नुमाइन्दे इकट्ठे हुए थे, उनके फ़ैसले के मुताबिक़ आ० हि० फौज खड़ी की गई थी।

(ख) जापानी सरकार ने हिन्दुस्तानियों को अपने मुल्क की आज़ादी के लिए लड़ने की इच्छा के प्रति हमदर्दी ज़ाहिर की थी, और इसी वजह से इस लड़ाई के तरीक़े और ज़रियों पर ग़ौर करने के लिए बैंकौक में इकट्ठ होने के लिए इनका इन्तज़ाम किया था।

(ग) इन नुमाइन्दों ने एक कौन्सिल ऑफ ऐक्शन का चुनाव करके श्री रासबिहारी बोस को उसका सदर बनाया था, और श्री बोस ने कप्तान मोहनसिंह को आ० हि० फौज का जनरल सदर मुकर्रर किया था।

(घ) जापानी सरकार ने सदर को सब तरह का मदद देनें का वायदा किया था और

(ङ) जनरल मोहनसिंह को, अगर वे चाहें तो, अपने ओहदे से इस्तीफ़ा देने का तो हक़ था, लेकिन सदर की इजाज़त के विना फौज को तोड़ने का कोई हक़ न था। फौज को छिन्न-भिन्न करने की हर कोशिश को ग़दर समझा जायगा।

यह बड़े संकट का वक्त था। जापानी लोग ज़ोर-जबरदस्ती आ० हि० फौज को चलता रखना चाहते थे। इस वक्त वे कुछ ऐसे लोगों की तलाश में थे, जिससे कि वे उन्हें बलिदान का बकरा बनाकर बाक़ी लागों में फौज न छोड़ने के लिए भय पैदा कर सकें। जितने भी लोग वहां हाज़िर थे वे जापानियों की नीयत की सचाई समझ गये और उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा। मैं यह सब बरदाश्त न कर सका और मैंने जनरल इवाकुरो को जवाब दिया। मैंने उससे यह क़बूल करा लिया कि आ० हि० फौज ज़बरदस्ती, धोखेबाज़ी तथा जापानियों के दबाव से भरती की गई है और बैंकौक को जो आदमी गये थे, वे हमारे नुमाइन्दे नहीं थे। इसलिए अगर्चे हम क़ानूनन बैंकौक के फैसलों से बंधे हैं तो इन्साफ़न जापानियों को हमें ऐसी तहरीक में रहने के लिए मजबूर करने का कोई हक़ नहीं, क्योंकि हिन्दुस्तान को आज़ाद करने की पवित्र तहरीक में धोखा-धड़ी और जोर-जबरदस्ती के लिए कोई जगह नहीं

हो सकती। वह इससे सहमत हो गया और हरेक को आज़ादी दी गई कि वह चाहे, तो आ० हि० फौज में रहे और चाहे न रहे।

अगले दिन जनरल इवाकुरो ने मुझे दिल खोलकर बात-चीत करने के लिए अपने बंगले पर बुला भेजा। उसने मुझसे कहा कि कल की बैठक में तुम्हारी दलीलों को मैंने अच्छी तरह समझ लिया और मैं चाहता हूं कि तुम जैसा आदमी आ० हि० फौज का लीडर बने। क्या तुम यह ज़िम्मेदारी उठाओगे ? मैंने कहा कि "नहीं, क्योंकि न तो मुझमें लियाक़त है और न लोगों का मुझ पर इतना ऐतबार है। लोगों का एतबार न तो जापानियों पर रहा है, और न अपने नेताओं पर।"

तब उसने मुझसे मेरी राय पूछी कि सच्ची आ० हि० फौज कैसे खड़ी की जा सकती है, जिसमें लोग खुशी से शामिल हों। मैंने नीचे लिखे सुझाव पेश किये:—

(क) हिन्दुस्तान की आज़ादी का सवाल पवित्र समझा जाय, उसके बारे में हरेक बात की बुनियाद सचाई पर हो। जापानी लोग हमसे अपना मतलब निकालने की कोशिश करना छोड़ दें।

(ख) आ० हि० फौज में भरती होने के लिए किसी के साथ ज़ोर-जबरदस्ती न की जाय। जो भरती हो, वह अपनी मरजी से अच्छी तरह सोच-समझकर हो। जो फौज को छोड़ना चाहें, उन्हें छोड़ने की इजाज़त दी जाय।

(ग) आखिर में मैंने उससे कहा कि हिन्दुस्तान से बाहर सिर्फ़ एक आदमी ऐसा है, जो सच्ची आ० हि० फौज चला सकता है और वह है नेताजी सुभाषचन्द्र बोस। मेरा मतलब सच्ची आ० हि० फौज से यह है कि यह एक मज़बूत लड़ने वाली फौज हो, सिर्फ़ प्रचार के लिए नहीं।

वह मुझसे रजामन्द हो गया और उसने मुझे यक़ीन दिलाया कि मैं नेताजी को जर्मनी से सिंगापुर बुलवाने की पूरी कोशिश करूंगा। मैंने उससे कह दिया कि इस शर्त पर कि नेताजी सिंगापुर आयें और

उनके आने तक कोई फौजें टापू से बाहर न भेजी जायें, बहुत से अफ़सर और सिपाही आ० हि० फौज में रहना क़बूल करेंगे । इसी शर्त पर मैंने आ० हि० फौज में रहना क़बूल किया और मैं फौजी दफ्तर के डाइरेक्टर के जनरल स्टाफ़ का मुखिया मुकर्रर किया गया ।

आ० हि० फौज का दुबारा संगठन करने में हमने इन बातों का ख़याल ख़ास तौर पर रखा कि :—

(क) जो कोई फौज को छोड़ना चाहे वह छोड़ सकता है और उसे सताया नहीं जायगा ।

(ख) जो आ० हि० फौज में रहेंगे, वे जापानियों के बेईमान निकलने पर, उनसे भी लड़न को तय्यार रहेंगे ।

(ग) जापानी लोग हमसे अपना मतलब नहीं निकालेंगे ।

जब जापानियों ने ग़ैर-वालंटियरों को सीधे अपने नीचे ले लिया था । हमें इसी बात का सोच था कि इस संकट के बाद आ० हि० फौज में भरती न होने वाले अफ़सरों और सिपाहियों से कैसा बरताव किया जायगा । हमें यह डर था कि वे प्रशान्त महासागर के टापुओं को भेजे जायंगे और वहां हालत बहुत ख़राब होगी ।

इस संकट के वक़्त जनरल मोहनसिंह की गिरफ्तारी के बाद श्री रासबिहारी बोस ने आ० हि० फौज के सब कैम्पों का इन्तज़ाम करने व फौजों में कड़ा अनुशासन रखने के लिए निम्न लिखित अफ़सरों की एक कमेटी मुकर्रर की:—

लेफ्टिनेंट कर्नल ए० डी० लोकनाथन, जे० के० भोंसले, एम० जेड० कियानी और एहसान कादिर ।

यह कमेटी आ० हि० फौज को दुबारा संगठित करने का काम करती रही ।

आ० हि० फौज का दुबारा संगठन

हर किसी ने यह महसूस किया कि पहली आ.हि. फौज की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि उसे सिर्फ़ एक आदमी चलाता था । इसलिए

इस दफा दूसरी आ० हि० फौज के लिए फौजी दफ्तर की एक डाइरेक्टरेट खोलने का फैसला किया गया, जो कि आ. हि. फौज के सब कामों की देख-भाल करे। फौजी दफ्तर का डाइरेक्टर एक फौजी अफसर था, जो कि आ० हि० संघ के नीचे था। इसके अलावा एक फौजी कमांडर के नीचे एक फौज का हेडक्वार्टर खोलने का फैसला किया गया। लड़ाई के मैदान में लड़ने वाली फौज की टुकड़ियों की कमान इसी कमांडर के हाथों में थी। अध्यक्ष ने कर्नल जे. के. भोंसले को फौजी दफ्तर का डाइरेक्टर और कर्नल एम. जेड कियानी को सेना का कमांडर मुकर्रर किया।

जो फौज में रहना नहीं चाहते थे, उन सबको युद्ध-कैदी की हैसियत में रहने का मौका दिया गया। करीब २००० अफसर और सिपाही फिर युद्ध-कैदी बन गये। दुबारा संगठित आ० हि० फौज में यह कमी युद्ध-कैदियों और सिविलियनों में से नये आदमी भरती करके पूरी की गई। नये आदमी अब बड़ी तादाद में आने लगे। जापानियों ने दुबारा संगठित आ० हि० फौज को बाकायदा इत्तहादी सेना मान लिया, जिसका दरजा और हैसियत जापानी सेना के बराबर ही थी। उन्होंने बैंकोक-कान्फ्रेंस के निश्चयों को स्वीकार करने का भी वायदा किया।

आ० हि० संघ का दुबारा संगठन करने और उसके सदर के लिए एक सलाहकार कौन्सिल कायम करने के लिए पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों के नुमाइन्दों की एक बैठक बुलाई गई। इस बैठक में यह ऐलान भी किया गया कि पूर्वीय एशिया में आने पर नेता जी सुभाषचन्द्र बोस संघ के सदर होंगे।

आ० हि० संघ और आ० हि० फौज के दुबारा संगठन का एक खाका अन्यत्र दिया गया है।

आ० हि० फौज के दुबारा संगठन के बाद भी जापानियों ने अपना काम निकालने का पुराना खेल जारी रखा। उन्होंने तो इसे और भी बढ़ाने तथा आ० हि० फौज व आ० हि० संघ की मुखालिफत करके

उसे कमजोर करने की कोशिश की। उन्होंने यह महसूस किया कि जनरल मोहनसिंह इसलिए संकट पैदा कर सके कि उनके हाथ में बहुत ज्यादाह ताक़त दे दी गई थी। इसलिए उन्होंने श्री रासबिहारी बोस के सामने एक ऐसी स्कीम रखी, जिससे उन्होंने आ० हि० फौज को दो अलग-अलग हिस्सों में बांट दिया।

(१) फौजी दफ्तर का डायरेक्टर, जिसके अफ़सर जनरल भौंसले थे, आ० हि० फौज की मामूली पालिसी और रुपये-पैसे की देख-भाल करता था। यह सीधा सदर श्री रासबिहारी बोस के मातहत था। इसका फौजों से सीधा कोई ताल्लुक न था।

(२) फौज जनरल एम० जेड़० कियानी के नीचे थी और वह फौज के शासन, ट्रेनिंग और अनुशासन के लिए जिम्मेवार थे। इस प्रकार जो काम पहले जनरल मोहनसिंह को सौंपा गया था, वह अब दो कमांडरों में बांट दिया गया।

सिर्फ़ इतना ही नहीं। जापानियों ने यह महसूस करके कि हिन्दुस्तानी अफ़सर बड़े चालाक हैं और वे अपनी फौजों को जापानियों के काम में लाये जाने के लिए कभी रज़ामन्द न होंगे; सिवलियनों के लिए अलग ट्रेनिंग सेन्टर खोले। इनमें सिविलियनों को कई तरह की ट्रेनिंग दी जाती थी, जिनमें से ख़ास आ० हि० फौज के लिए रंगरूट पैदा करना था। ये कैम्प सीधे संघ के नीचे थे और जापानी अफ़सर इनकी देख-भाल करते थे। कर्नल अहसान क़ादिर इन कैम्पों के कमांडर थे। इनके सब मास्टर आ० हि० फौज के सिपाही और अफ़सर थे। कुछ कैम्पों में रंगरूटों को राजनीतिक ट्रेनिंग देने के लिए सिविलियनों से भी काम लिया जाता था। ये सब कैम्प सीधे आ० हि० संघ के सदर के नीचे थे, आ० हि० फौज के नीचे नहीं।

हमको शुबहा हुआ कि जापानी लोग सिविलियन आबादी में से एक और आ० हि० फौज खड़ी करने की कोशिश कर रहे हैं, जो कि आ० हि० फौज के कुछ टंटा खड़ा करने पर उसकी जगह आ खड़ी

होगी। इस प्रकार जापानी लोग एक ही साथ तीन अफ़सरों के साथ अलग-अलग खेलने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने एक हिन्दुस्तानी अफ़सर को दूसरे से भिड़ाने की भरसक कोशिश की, लेकिन अपनी ईमानदारी और देश-प्रेम के कारण हिन्दुस्तानी अफ़सरों ने जापानियों की कठपुतली बनने से इनकार कर दिया।

आजाद हिन्द संघ व मलाया में उसकी शाखाओं ने संकट में खास हिस्सा लिया था। इसलिए उसके खिलाफ़ जापानियों ने हिन्दुस्तानी युवक संघ नामक एक और जमात खड़ी की। नौजवानों की यह तहरीक मध्यस्थ महकमे की खुफ़िया मदद से चलाई गई थी और वह पूरे तौर पर जापानियों के हाथ में थी। ये लोग कौन्सिल ऑफ़ ऐक्शन के सिविलियन मेंबरों की खूब बदनामी करते फिरते थे। इस कौन्सिल ने जापानियों द्वारा हिन्दुस्तानियों से अपना काम निकालना बंद करने के लिए दिसंबर १९४२ में इस्तीफ़ा दे दिया।

इस तरह आ० हि० संघ और आ० हि० फौज के दुबारा संगठन के बाद भी जापानी लोग उनके काम में दस्तन्दाजी करते रहे। सिर्फ़ फर्क इतना था कि अब वे पहले की तरह खुल्लम-खुल्ला नहीं करते थे। उन्होंने अपने ढंग बदल दिए। हालत अब भी तसल्ली देने वाली न थी। जनरल जे. के. भोंसले ने ये सब कमजोरियां श्री रासबिहारी बोस को समझाई। श्री बोस ने इन खराबियों को दूर करने की भरसक कोशिश की। उन्होंने हमको हमेशा यह सलाह दी कि, अब आगे और फ़िसाद मत खड़ा करो, क्योंकि हमारी आने वाली लड़ाई में वक्त एक बड़ी खास चीज़ है। इन झगड़ों में वक्त खराब मत करो। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भी जल्दी ही आने वाले हैं। मार्च से जुलाई १९४३ तक यही हालत रही और तब नेताजी ने आकर श्री बोस के हाथों से हिन्दुस्तान की आज़ादी के आन्दोलन का काम अपने हाथों में संभाल लिया।

श्री रासबिहारी बोस

सन् १९११ में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के बाद श्री रास-बिहारी बोस जापान भाग गए और वहां आपने जापानियों के एक आध्यात्मिक नेता श्री तोयामा के यहां पनाह ली। जब पूर्वीय एशिया की लड़ाई शुरू हुई, तो आपको जापान में रहते क़रीब ३० बरस बीत गये थे। इतने दिनों तक आप जिस मौके की इन्तज़ार में थे वह अब उपस्थित हुआ था। लड़ाई शुरू होने से पहले भी वे अपनी प्यारी मातृभूमि की आज़ादी के लिए लगातार क्रान्तिकारी काम करते रहे थे। १९१४ में आपने कोमा-गाता-मारू की यात्रा का संगठन किया। एक जहाज भर हथियार और गोला-बारूद इकट्ठे करके कोमा-गाता-मारू नामक एक जापानी जहाज किराए पर करके उसे हिन्दुस्तान भेजने की कोशिश की, लेकिन अंग्रेजों का पहले से इसका पता चल गया और उन्होंने जहाज और उस पर के सब क्रान्तिकारी हिन्दुस्तानियों और लड़ाई के सामान को पकड़ लिया।

अपनी दूरन्देशी से आपने पहले से ही ठीक वक्त पर जापानी सहायक विदेश मंत्री श्री एफ़ एम. सुगियामा से मिलकर इस बात का इन्तजाम कराया कि जापान के क़ब्ज़ा किये हुए देशों में हिन्दुस्तानी दुश्मन न क़रार दिये जायं और इस तरह पूर्वीय एशिया में रहने वाले अपने हज़ारों देश भाइयों का जान, माल और इज्ज़त का रक्षा की, तथा हमेशा के लिए उनका एहसान हासिल किया।

नेता जी बोस कहा करते थे कि जब हम बच्चे थे, तो श्री रास-बिहारी बोस कौमी वीर समझे जाते थे और उनका नाम नई पीढ़ी में स्फूर्ति भरता था।

आप जन्म भर महान् क्रान्तिकारी रहे।

आपको किसी तरह का लालच नहीं दिया जा सकता था, और अपनी मातृभूमि की इज्ज़त को आप सबसे ऊपर रखते थे। आप जापान में

३० बरस रहे और अंग्रेज़ों ने आपके सिर के लिए जिन्दा या मुर्दा; एक लाख रुपये इनाम रखा था। अपने एक बड़े ऊंचे जापानी ख़ानदान की लड़की से शादी कर ली थी। इन सब बातों से भी आपकी देशभक्ति में बिलकुल फ़र्क नहीं आया था।

आप जापानियों को पूर्वीय एशिया में रहने वाले किसी दूसरे हिन्दुस्तानी की बनिस्बत अधिक अच्छी तरह पहचानते थे, और ऊंचे जापानी फौजी और सियासी दायरों में आपका काफ़ी असर था।

जापानी फौज का यह खास कायदा है कि मुकामी कमान्डरों को, चाहे वे कितने ही छोटे हों, बहुत बड़े अख्तियार होते हैं, और उनमें से हर एक यह महसूस करता है कि लड़ाई में जापान को फतह के लिए कोई बड़ा काम करके दिखाना उसका जाती फर्ज है।

यही महसूस करने के कारण जापानी मध्यस्थ अफ़सर ऐसे तरीकों पर अमल करते थे, जिनसे यह मालूम होता था कि जापानी लोग हमसे अपना उल्लू सीधा करने पर तुले हुए हैं इसमें अचरज नहीं कि हिन्दुस्तानी अफ़सर उनका यकीन नहीं करते थे, और अक्सर धीरज खो देते थे। लेकिन रासबिहारी बोस जापानियों को अच्छी तरह पहचानते थे और उनको हमेशा इस बात का यकीन रहता था कि वे टोकियो के ऊंचे अफ़सरों से लिखा-पढ़ी करके हमारी दिक्कतों को दूर करा देंगे। इसी वजह से वे हमको ज्यादह धीरज रखने की सलाह देते थे।

४ जुलाई १९४३ को श्री बोस ने बड़ी खुशी से हिन्दुस्तानी आजादी के आन्दोलन की जिम्मेवारी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को सौंप दी और बुढ़ापे में आराम करने के लिए अलग होगये।

जनवरी १९४५ में ६२ बरस की उम्र में टोकियो में उनका स्वर्गवास हो गया।

: ४ :

नेताजी पूर्वीय एशिया में

आज़ाद हिन्द फौज में इस गड़बड़ के बाद जापानी और हिन्दुस्तानी फौजों के बीच बात-चीत चलाने वाले जापानी मध्यस्थ महकमे के मुखिया जनरल इवाकुरो ने किसी-न-किसी तरह जापानी सरकार को इस बात के लिए क़ायल कर लिया कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जब तक खुद अपने हाथ में सारा इन्तजाम नहीं लेंगे, तब तक सच्ची आज़ाद-हिन्द फौज कभी खड़ी नहीं की जा सकती और इसलिए नेता जी को बर्लिन से सिंगापुर लाने का इन्तज़ाम करना चाहिए। इस पर जापानी सरकार ने कहा कि इस लड़ाई के जमाने में बर्लिन से सिंगापुर पहुंचना नेताजी के लिए मुमकिन नहीं। रास्ता इतना ख़तरनाक है कि कोई इतनी जोखिम उठाये भी, तो उनके जिन्दा पहुंचने की उम्मीद सौ में पांच फ़ी सदी से ज्यादह नहीं। जापानी सरकार ने जनरल इवाकुरो से कहा कि इस बात पर इसरार करना ठीक नहीं; क्योंकि इसमें नेताजी सुभाषचन्द्र की मौत लाजमी है। यह सफ़र सिर्फ पनडुब्बी के ज़रिये किया जा सकता है और रास्ते के सब समुद्रों में अंग्रेजी और अमेरिकन जहाज़ गश्त लगाते रहते हैं। उनसे बचकर निकलना नामुमकिन है। जनरल इवाकुरो ने अपनी सरकार को फिर लिखा कि हिन्दुस्तानी आज़ादी के आन्दोलन के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि नेताजी कितनी ही जोखिम के होते हुए भी यह सफर करें। इवाकुरो के शब्द यह थे कि "मैं जानता हूं कि नेताजी के सही-सलामत पहुंचने में बड़ा भारी जोखिम है, पर यहां के सब हिन्दुस्तानियों का ख़याल है कि जब तक नेताजी खुद इस आन्दोलन की बागडोर नहीं सम्भालेंगे, तब तक वे लोग हिन्दुस्तान की आजादी के

लिए ज़ोरदार लड़ाई नहीं लड़ सकते। अगर नेताजी सही-सलामत नहीं पहुंचे, तो हम समझ लेंगे कि इस वक्त परमात्मा को हिन्दुस्तान की आज़ादी मंजूर नहीं। अगर रास्ते के सब ख़तरों को पार करके भी नेताजी सही-सलामत यहां पहुँच गये, तो हम समझेंगे कि परमात्मा की मर्जी यही है कि हिन्दुस्तान उनकी कोशिशों से आज़ाद हो।"

बहरहाल जापानी सरकार यहां के हिन्दुस्तानियों की इच्छा नेता जी को जतला देवे और रास्ते के खतरे भी बतला देवे। फैसला नेताजी खुद कर लेंगे। जापानी सरकार इस पर रजामन्द हो गई।

तब बर्लिन के जापानी राजदूत ने नेताजी के पास जाकर उनको पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों की इच्छा बतलाई और रास्ते के खतरे के बारे में भी कहा। उसने नेताजी से साफ कह दिया कि सही-सलामत पहुंचने का अवसर सिर्फ सौ में पांच हैं। आपकी जान बड़ी क़ीमती है, इसलिए मैं आपको ऐसी जोखिम उठाने की सलाह हरगिज नहीं दूंगा। नेताजी ने जवाब दिया कि रास्ते के सब खतरों के होते हुए भी मैं यह सफ़र ज़रूर करूंगा। अगर मैं रास्ते में मारा भी जाऊं, तो मुझे यह तसल्ली तो रहेगी कि मैं हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ते-लड़ते मरा और मैं ऐसी मौत का स्वागत करूंगा।

तब नेताजी एक जर्मन पनडुब्बी में बैठकर चल दिये। मडगास्कर पहुंचकर हिन्दमहासागर को पार कर पेनांग से गई हुई जापानी पन-डुब्बी में आप सवार हो गये और पेनांग आ गये। वहां से हवाई जहाज से आप टोकियो पहुंच गये।

३ जून १९४३ को श्री रासबिहारी बोस नेता जी से मिलने और उनको सिंगापुर लाने के लिए टोकियो चल दिए। चलने से पहली रात को श्री बोस ने कुछ आजाद हिन्द फौज के अफ़सरों को एक दावत दी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के पहुंच जाने की खबर बिलकुल छिपाकर रखी गई। जब अफ़सरों ने श्री रासबिहारी बोस से टोकियो जाने का कारण पूछा, तो उन्होंने जवाब दिया कि मैं आप लोगों के लिए एक

तोहफ़ा लाने जा रहा हूं।

२० जून १९४३ को टोकियो के रेडियो ने नेताजी के वहां पहुंचने का ऐलान कर दिया। बर्लिन से टोकियो तक के सफ़र में नेताजी के साथ उनका ए.डी. सी. भी आबिदअलीहसन नाम का एक मुसलमान नौजवान रहा। टोकियो में नेताजी का ऐसा शानदार स्वागत हुआ। जैसा कि शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य को कई बार परास्त करने वाले एक बड़े क्रान्तिकारी नेता का होना चाहिए था।

टोकियो पहुंचते ही नेताजी ने प्रेस-वक्तव्य दिया। इसमें आपने कहा था कि "पिछले महायुद्ध में धोखेबाज़ ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने हमारे नेताओं को चकमा दिया था। इसीलिए, बीस बरस से ज्यादह हुए, हमने कभी उनके धोखे में न आने का वायदा किया था। बरसों से वर्तमान पीढ़ी आज़ादी की लड़ाई लड़ती आ रही है और आज के मौके का इन्तज़ार करती रही है। आज हिन्दुस्तानियों के लिए आज़ादी के प्रभात का शुभ अवसर उपस्थित हुआ है हम जानते हैं कि ऐसा मौक़ा सौ बरस तक हमारे हाथ न लगेगा। इसलिए हमने उससे पूरा फ़ायदा उठाने का पक्का इरादा कर लिया है। हिन्दुस्तान के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नतीजा हुआ है नैतिक पतन, संस्कृति का नाश, आर्थिक बरबादी और राजनीतिक गुलामी। हमारा यह फ़र्ज है कि हम अपने खून से आज़ादी की कीमत चुकायें। हम इस तरह अपनी कुरबानियों से जो आज़ादी प्राप्त करेंगे उसकी रक्षा हम अपनी ताकत से कर सकेंगे। जिस दुश्मन ने तलवार खींची है, उसके साथ हमें तलवार से ही लड़ना चाहिए। सिविल नाफ़रमानी अब हथियार की लड़ाई में बदल जानी चाहिए। हिन्दुस्तानी जब बड़ी तादाद में इस आग में पवित्र होंगे तभी वे आज़ादी के हक़दार बन सकेंगे।

२१ जून १९४३ को नेता जी ने पहली दफ़ा टोकियो के रेडियो से भाषण दिया। आजाद हिन्द के सब कैम्पों में इसके सुनने का इन्तज़ाम किया गया था। नेता जी ने कहा कि जहां तक हिन्दुस्तान

का सम्बन्ध है, हमारे लिए सबसे ख़ास बात हिन्दुस्तान के पास की हालत है। हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज में किसी भी ब्रिटिश जनरल को यह कल्पना भी न हुई होगी कि अंग्रेजों का कोई दुश्मन कभी भी भविष्य में पूरब की ओर से हिन्दुस्तान पर हमला कर सकता है और अंग्रेज फौजों का सारा ध्यान हमेशा पश्चिमोत्तर की सरहद पर ही रहा है। सिंगापुर का जहाज़ी अड्डा अंग्रेजों के हाथ में था और वे समझते थे कि हिन्दुस्तान के लिए कोई खतरा नहीं है। लेकिन, जब जनरल यामाशीता तूफ़ान की तरह आगे बढ़ते चले गये, तो दुनिया ने समझ लिया कि अंग्रेज़ों की फ़ौजी नीति कौड़ी कीमत की भी नहीं है। तब से जनरल वेवल हिन्दुस्तान की पूर्वी सरहद पर क़िलेबन्दी करने की सिरतोड़ कोशिश कर रहे थे। किन्तु हिन्दुस्तानी आपस में पूछा करते थे कि "अगर अंग्रेजों को सिंगापुर बनाने में बीस बरस लगे हैं और खोने में सिर्फ़ एक ही हफ्ता लगा है, तो ब्रिटिश कमांडर-इन-चीफ़ या उसके उत्तराधिकारी को अपनी इस क़िलेबन्दी से पीछे हटने में कितना समय लगेगा? ट्यूनिस, तिम्बकट, लम्पडूसा या अलास्का में जो कुछ हो रहा है, उसमें हिन्दुस्तानियों की विशेष दिलचस्पी न थी, पर हिन्दुस्तान के अन्दर या उसकी सरहद के पार जो कुछ हो रहा था, उसमें हमारी विशेष दिलचस्पी थी। हमारे लिए बड़ी बात यह थी कि पहले तो बर्मा को फिर से जीतने की बड़ी शेखी बघारी गई थी, किन्तु वहां से भी दुम दबाकर भागना पड़ा था। सिंगापुर में सबसे बड़ी हार थी; लेकिन उससे भी कोई बड़ी रद्दो-बदल नहीं हुई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कठोर नीति वैसी ही बनी रही। हमारे शासकों की यह धारणा रही है कि भले ही कोई मरे या जिये और कितने ही साम्राज्य बनें या बिगड़ें, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमेशा ही क़ायम रहेगा। आप इसे राजनीतिज्ञता का दिवाला या ख़याली पुलाव कह सकते हैं; पर इसमें भी एक राज़ है। ब्रिटिश साम्राज्य हिन्दुस्तान के सहारे फला-फूला है। अंग्रेज़ लोग, चाहे वे किसी सियासी पार्टी के हों, जानते हैं कि हिन्दुस्तान से फ़ायदा उठाने

की उनको ज़रूरत है। उनके साम्राज्य का मतलब है हिन्दुस्तान। वे उस साम्राज्य को बचाने के लिए जी-जान से लड़ रहे थे। इसलिए इस महायुद्ध में अंग्रेज़ों के भाग्य में कुछ भी क्यों न बदा हो; वे आख़िर तक अपने साम्राज्य को बचाने की यानी हिन्दुस्तान को अपने चंगुल में रखने की कोशिश करेंगे। इसलिए, अगर मैं साफ़ कहूं तो इस कठिन हालत में भी अंग्रेज़ों के लिए हिन्दुस्तान की आज़ादी को मानने से इनकार करना पागलपन नहीं है, बल्कि पागलपन यह उम्मीद करना है कि अंग्रेज़ लोग खुशी से अपना साम्राज्य छोड़ देंगे। किसी हिन्दुस्तानी को भुलावे में नहीं रहना चाहिए कि किसी दिन इंग्लैंड हिन्दुस्तान की आज़ादी को मानने के लिए तैयार हो जायगा। लेकिन, इसका मतलब यह भी नहीं है कि अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ हिन्दुस्तान से कभी समझौता नहीं करेंगे। मैं समझता हूं कि इस साल ऐसे समझौते की एक और कोशिश की जायगी। पर मैं अपने देशभाइयों को बतला देना चाहता हूं कि समझौते से अंग्रेज़ लोग हिन्दुस्तान की आज़ादी को कभी क़बूल नहीं करेंगे, बल्कि हिन्दुस्तानियों को उल्लू बनाने की कोशिश करेंगे। बहुत दिनों तक बात चलाने का मतलब आज़ादी की लड़ाई के रास्ते से लोगों को हटाकर उनकी शक्ति को कमज़ोर कर देना है, जैसा कि दिसम्बर १९४१ में किया गया था। इसलिए हमको ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ समझौते की उम्मीद हमेशा के लिए और बिलकुल छोड़ देनी चाहिए। हमारी आज़ादी में किसी समझौते की गुंजाइश नहीं है। आज़ादी तभी मिलेगी, जब अंग्रेज़ और उनके दोस्त हिन्दुस्तान को बिलकुल छोड़ देंगे और जो लोग दर-असल आज़ादी चाहते हैं, उनको उसके लिए लड़ना पड़ेगा और अपने ख़ून की शकल में उसकी क़ीमत अदा करनी पड़ेगी।

भाइयो और दोस्तो! हम आज़ादी के लिए, हिन्दुस्तान के भीतर और बाहर, अपनी पूरी ताक़त लगाकर लड़ाई चलाएं। हम दृढ़ विश्वास

के साथ लड़ाई जारी रखें। एक दिन ब्रिटिश साम्राज्यवाद जरूर भस्म हो जायगा और उसकी राख में से आज़ाद हिन्दुस्तान का जन्म होगा। इस लड़ाई में पीछे हटने और हिचकिचाने की कोई गुंजाइश नहीं। हम तब तक आगे ही बढ़ते चले जायंगे जब तक कि विजय और आज़ादी न मिलेगी।"

: ५ :

नेता जी सिंगापुर में

नेताजी के आने का ठीक समय गुप्त रखा गया था। केवल आज़ाद हिन्द फौज के अफसरों और प्रमुख हिन्दुस्तानी नागरिकों को इस बारे में जानकारी दी गई थी।

२ जुलाई १९४३ को लगभग ११ बजे प्रातः सब हिन्दुस्तानी नागरिक, जापानी दूत, सैनिक स्टाफ़ और आज़ाद हिन्द फौज के बड़े अफसर गरफौजी हवाई अड्डे पर उनका स्वागत करने के लिए इकट्ठे हुए। आजाद हिन्द फौज के चुने हुए आदमियों को लेकर, उनको सलामी देने के लिए एक दल बनाया गया था, जो वहां मौजूद था। दोपहर को दो एंजिनों का एक जापानी हवाई जहाज आया और हवाई अड्डे पर उसी जगह उतरा जहां हम उनके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ सेकिंडों में ही, जो हमें घंटों के समान लम्बे मालूम हुए, हवाई जहाज का द्वार खुल गया और नेताजी उसमें से अपने सेक्रेटरी आबिद-हसन के साथ बाहर आ गए।

श्री रासबिहारी बोस, कर्नल यामामोतो और जापानी सम्पर्क विभाग के अफसर श्री सेनदा भी उसी हवाई जहाज में थे। और टोकियो से नेताजी के साथ ही आए थे।

नेताजी हवाई जहाज से उतरते ही सीधे हमारे पास आए आर हममें से प्रत्येक से हाथ मिलाकर कुछ-कुछ बातें भी कीं। मुझे रोमांच हो आया था। मेरे जीवन में यह पहला अवसर था। जब मैंने उन्हें देखा था। मैं उनसे बड़ी-बड़ी आशायें बांधे बैठा था और उनके प्रत्येक कार्य-कलाप को बड़ी दिलचस्पी के साथ देख रहा था। वे एक हल्का भूरा सूट पहने हुए थ और सिर पर गांधी टोपी लगाये हुए

थे। हमसे मिलनें के बाद उन्होंनें सैनिक दल की सलामी ली और अपनें निवास-स्थान को चले गए।

इस बीच में उनके आगमन का समाचार बिजली की तरह फैल गया और पुरुष स्त्रियां और बालक उनके स्वागत के लिए उलट पड़े। उनके प्रति आश्चर्यजनक प्रेम और प्रशंसा का भाव प्रकट किया गया था। हिन्दुस्तानी, चीनी, मलाया वासी और जापानी सभी लोगों की विशाल भीड़ों का वहाँ जन-समुद्र-सा लहरा रहा था। लोग उस महान् क्रान्तिकारी के दर्शन के लिए भीड़ के पैरों तले कुचले मरते थे।

उनका सीधा और अकड़ा हुआ शरीर था। ऊंचा सिर, जो अभिमान से दृढ़ हो रहा था और मुस्कराता हुआ चेहरा था जिसनें लागों के हृदयों पर जादू-सा डाल दिया था। हमें विश्वास हुआ कि यह वह नेता ह जो हमें हमारे लक्ष्य तक पहुंचा सकता है।

दूसरे दिन जुलाई १९४३ में नेता जी आजाद हिन्द फौज के प्रमुख अफसरों और हांकांग, थाइलैंड, वर्मा, बोर्नियो आदि से आये हुए लीग के नेताओं को मिले। हम फौजी अफ़सरों को जिस बात ने प्रभावित किया वह था उनका आधुनिक लड़ाई और आधुनिक हथियारों के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान; जो उनकी बातचीत से प्रकट हो रहा था।

४ जुलाई को नेता जी ने पूर्ण एशियावासी हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन का एक आरम्भिक अधिवेशन किया। कैथे इमारत में एक सभा हुई। इमारत का हाल खचाखच भरा हुआ था। इस सभा में श्रीरासबिहारी बोस नें एक ऐतिहासिक भाषण दिया और हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के आन्दोलन की बागडोर नेता जी के हाथ में सौंप दी।

नेता जी ने उस भारी उत्तरदायित्व को, जो उन्हें सौंपा गया था, स्वीकार करते हुए कहा—

"मित्रो, अब वह समय आगया है जब हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के उपासकों को मैदान में उतरना चाहिए। युद्ध के संकट-काल में कार्य करनें के लिए अनुशासन और उद्देश्य के प्रति सुदृढ़ वफादारी की जरु-

रत है। इसलिए मैं पूर्वी एशिया के अपने सब देशबासियों से अपील करता हूं कि वे एक ठोस सैनिक व्यूह बना लें और हमारे सामने जो लड़ाई आ रही है उसके लिए तैयार हो जायें। मुझे विश्वास है कि वे इसके लिए तैयार हो जायंगे।

मैंनें कई बार सार्वजनिक रूप से घोषित किया है कि मैं जब सन् १९४२ में एक विशेष उद्देश्य को लेकर अपनें घर से रवाना हुआ था तो तब मेरे साथ के बहुसंख्यक लोग मुझसे सहमत थे। उसके बाद खुफिया पुलिस की रुकावटों के बावजूद अपने देश के लोगों से मेरा लगातार सम्पर्क कायम है।

विदेशों में रहने वाले देश भक्त हिन्दुस्तानी देश के भीतर स्वतन्त्रता की लड़ाई के लिए लड़ने वाले लोगों के सच्चे संरक्षक हैं। मैं प्रत्येक व्यक्ति को विश्वास दिला सकता हूं कि हमने अब तक जो कुछ भी किया है, वह हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए ही किया है और आगे भी हम जो कुछ करेंगे वह देश की स्वतन्त्रता के लिए ही होगा। हम ऐसा कोई भी काम नहीं करेंगे जो हिन्दुस्तान के हितों के विरुद्ध होगा या हमारे लोगों की इच्छाओं के विपरीत होगा।......

अपनी सब शक्तियों को भली-भांति और पूरी तरह संगठित करनें के लिए मैं स्वतन्त्र भारत की एकस्थायी सरकार बनाना चाहता हूं। हम अपनें त्याग और बलिदान के द्वारा स्वतन्त्र होकर ऐसी शक्ति उपार्जित करेंगे जिससे हम अपनी स्वतन्त्रता को सदा कायम रख सकेंगे।...... मैं आपको सावधान करता हूं कि यद्यपि हमें अपनी अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास है, लेकिन फिर भी हमें शत्रु की शक्ति का अनुमान कम नहीं लगाना चाहिए। हमें स्थायी रूप से कहीं-कहीं हटना भी पड़ सकता है। इसके लिए हमें तय्यार रहना चाहिए। हमारे सामनें भयंकर लड़ाई आ रही है, क्योंकि हमारा शत्रु बहुत शक्तिमान, बेधड़क और निर्भय है। स्वतन्त्रता के इस अन्तिम अभियान में हमें भूख, प्यास, कष्ट की स्थितियों के दबाव से की गई भाग-दौड़ और मृत्यु का सामना करना पड़ेगा।

जब आप इस जांच में खरे उतरेंगे तभी आप स्वतन्त्रता ले सकेंगे। मुझे विश्वास है कि आप इसमें अवश्य ऐसा ही करेंगे और उसके द्वारा अपने गुलाम और गरीब देश को स्वतन्त्र करायेंगे और समृद्ध बनाएँगे।"

५ जुलाई १९४४ का आजाद हिन्द फौज के निर्माण की घोषणा संसार को सुना दी गई। उस दिन नेता जी ने सिंगापुर में म्यूनिसिपल भवन के सामने आजाद हिन्द फौज की सब पल्टनों की परेड देखी। निरीक्षण के बाद उन्होंने फौज को सम्बोधित करते हुए कहा—

"हिन्दुस्तान की आजादी की फ़ौज के सिपाहियो,

आज मेरी जिन्दगी में सबसे अधिक अभिमान करने का दिन है। आज ईश्वर की कृपा से मुझे संसार के सामने यह घोषणा करन का अवसर मिला है कि हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करने वाली सेना बन चुकी है। यह सेना इस वक्त सिंगापुर में लड़ाई के मैदान में कतार बनाये खड़ी हैं। यह वही सिंगापुर है, जो कभी ब्रिटिश साम्राज्य का दुर्ग था। आजाद हिन्द फौज वह सेना है जो हिन्दुस्तान को अंग्रेजों के जुए से मुक्त करेगी.......हर एक हिन्दुस्तानी को अभिमान होना चाहिए कि इस हिन्दुस्तानी फौज का संगठन बिलकुल हिन्दुस्तानी नेताओं के नेतृत्व में किया गया है और जब वह इतिहास में अमर रहने वाला समय आयगा तब हिन्दुस्तानी नेताओं के नेतृत्व में ही यह सेना लड़ाई के मैदान में उतरेगी। आज हम अंग्रेजी साम्राज्य के इस कब्रिस्तान पर खड़े हैं। इस समय एक बालक तक को यह सन्तोष है कि जो ब्रिटिश साम्राज्य कभी सर्व शक्तिमान् था वह अब भूत काल की चीज बन गया है।

साथियो! मेरे सैनिको! आपकी लड़ाई का नारा होगा-चलो दिल्ली; हममें कितने स्वतंत्रता की इस लड़ाई में जीवित बचेंगे, यह मैं नहीं जानता। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि आखिर में जीत हमारी होगी और हमारा काम तब तक खत्म न होगा जब तक कि हम दिल्ली में ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे कब्रिस्तान लाल किले के सामने विजयी सेना के रूप में परेड न कर लेंगे।....

अपने अब तक के सार्वजनिक जीवन में मैंने सदा ही यह अनुभव किया है कि यद्यपि हिन्दुस्तान अन्य सब प्रकार से स्वतंत्रता के लिए तयार है, लेकिन एक चीज उसके पास नहीं है और वह है आजादी की फौज। अमरीका के जार्ज वाशिंगटन इसलिए लड़कर स्वतंत्रता ले सके, क्योंकि उनकी अपनी फौज थी। गौरीबाल्डी इटली को इसलिए स्वतंत्र करा सके, क्योंकि उनके साथ उनके सशस्त्र स्वयं सेवक थे। यह आपके लिए गौरव की बात है कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय सेना के निर्माण के लिए आप पहले आगे आये हैं और आपने उसका संगठन किया है। जो सैनिक अपने देश के प्रति सदा वफादार रहते हैं, जो सब हालतों में अपने कर्त्तव्य को पूरा करते हैं और जो अपनी जानें देने के लिए सदा तैयार रहते हैं, वे अजेय होते हैं। आप इन तीनों आदर्शों को अपने हृदय में अच्छी तरह से बिठा लें।

साथियो, आज हिन्दुस्तान की आशायें और उसकी महत्त्वाकांक्षाय आप में निहित हैं। इसलिए आप अपना आचरण ऐसा बनाइयें कि आपके देशवासी आपको धन्यवाद दें और अगली पीढ़ी आप पर अभिमान कर सके मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं अंधकार में और प्रकाश में, दुःख में और सुख में, कष्टों में और विजय में सदा आपके साथ रहूंगा। इस समय मैं अपके सामने भूख, प्यास, कष्ट-सहन बलात्- प्रयाण और मृत्यु के सिवा कुछ दूसरी चीज प्रस्तुत नहीं कर सकता। हममें से कौन-कौन हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र देखने के लिए जीवित बचते हैं, यह एक छोटी बात है। हमारे लिए तो यही काफी कि हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो जायगा और हम उसे स्वतन्त्र करने के लिए अपना सर्वस्व दे देंगे।"

६ जुलाई को आजाद हिन्द फौज की एक और रस्मी परेड की गई जिसमें म्यूनिसिपल भवन के सामने जापान के प्रधान मंत्री जनरल तोजो का सम्मान किया गया था। फौज की सलामी लेने के बाद नेता जी और तोजो थोड़ी देर बातचीत करने के लिए एक कमरे में चले गये। बातचीत

में तोजो ने नेता जी को आजाद हिन्द फौजके निर्माण पर बधाई दी और उन्हें विश्वास दिलाया कि जापानी जाति उनका पूरी सहायता देगी।

६ जुलाई १९४३ को नेताजी ने हिन्दुस्तानी नागरिकों और आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की एक सार्वजनिक सभा की और एक भावनापूर्ण भाषण में कहा –

"मैं आपसे बिलकुल साफ-साफ यह कहना चाहता हूं कि मैंने अपना घर और अपना देश क्यों छोड़ा और मैं ऐसी मंजिल पर क्यों चल पड़ा जिसमें हर तरह के खतरे थे। मैं एक अंग्रेजी जेल में सुरक्षित रखा गया था। मैंने वहां ही निश्चय किया कि मुझे अंगरेजों के पंजे से निकल भागना है चाहे उसमें मुझे अपना सब कुछ खतरे में डालना पड़े। वहां बने रहना मेरे लिए बहुत आसान था और उसमें सुरक्षितता भी अधिक थी। लेकिन मैंने यह अनुभव किया कि हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की खातिर मुझे विदेशों की यह यात्रा करनी ही होगी और इसमें जो जोखम है उसका खयाल छोड़ देना होगा।

अपने कर्त्तव्य के पालन में अपने प्राण देने की शक्ति मुझमें है या नहीं, यह निश्चय करने के लिए मने पूरे तीन मास प्रार्थना और मनन में बिताय। हिन्दुस्तान से निकल भागने से पहले, मुझे जेल से निकलना था और एसा करने के लिए मुझे अपनी रिहाई के लिए भूख-हड़ताल करनी पड़ी। मैं यह जानता था कि ब्रिटिश सरकार के बन्दी अपनी रिहाई के लिए न तो कभी हिन्दुस्तान में झुका पाये हैं और न आयरलेण्ड में। मैं यह भी जानता था कि ब्रिटिश सरकार को झुकाने के प्रयत्न में टेरेंस मेकस्विनी और जतीनदास को अपने प्राण देने पड़े थे। लेकिन मुझे यह निश्चय था कि मुझे एक ऐतिहासिक कार्य पूरा करना है। इसलिए मैं तो इस खतरे में कूद पड़ा। ७-दिन के उपवास के बाद ही सरकार घबरा गई और उसने मुझे रिहा कर दिया। उसने विचार किया था कि वह एक या दो मास के बाद मुझे फिर गिरफ्तार कर लेंगी। लेकिन मैं तो गिरफ्तारी से पहले

ही स्वतन्त्र हो गया।

मित्रो! आप जानते हैं कि सन् १९२१ में विश्वविद्यालय से निकलने के बादसे ही मैं स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए सक्रिय भाग लेता रहा हूं। पिछले २० वर्षों में मैंने सभी स्वतन्त्रता आन्दोलनों में हिस्सा लिया है। इसके अलावा मुझे सरकार हिंसात्मक या अहिंसात्मक गुप्त क्रान्तिकारी आन्दालनों से सम्बंधित होने के सन्देह में बिना मुकदमा चलाये बार-बार जेलों में बन्द करती रही है। इस अनुभव के आधार पर मैंने यह नतीजा निकाला था कि हम हिन्दुस्तान में रहकर जो भी प्रयत्न करेंगे वे देश को स्वतन्त्रता दिलाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। उनसे अंग्रेज हमारे देश से नहीं निकाले जा सकते।

संक्षेप में हिन्दुस्तान से मेरे आने का कारण देश में चलने वाले स्वतन्त्रता आन्दोलन को बाहर से मदद पहुंचाना है। दूसरी ओर बाहर से पहुंचने वाली सहायता, जिसकी देश के भीतरी संघर्ष को बहुत सख्त जरूरत है, वास्तव में बहुत कम है। जिस सहायता की देश में हमारे देशवासियों को जरूरत थी और अब भी है, वह दो प्रकार की हैं — नैतिक और भौतिक। प्रथम उन्हें नैतिक दृष्टि से यह विश्वास होना चाहिए कि उनकी जीत निश्चित है। दूसरे, उन्हें बाहर से फौजी सहायता मिलनी चाहिए।

वह समय अब आगया है जब हम समस्त संसार को, खुल्लम-खुल्ला बता देना चाहते हैं कि हम अपने देश को किस प्रकार स्वतंत्र करना चाहते हैं। हम अपने शत्रुओं को भी यह बात कह देना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के बाहर के हिन्दुस्तानी, खास तौर से पूर्वी एशिया के निवासी हिन्दुस्तानी, एक लड़ाकू सेना बना रहे हैं जो हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सेना पर हमला करने के लिए पर्याप्त रूप से शक्तिमान् होगी। हम जब हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सेना पर हमला करेंगे तो वहां क्रान्ति हो जायेगी; देश की नागरिक जनता में ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानी फौज में भी, जो इस समय अंग्रेजी झंडे के नीचे लड़ रही है। जब ब्रिटिश सरकार पर इस प्रकार

भीतर और बाहर दोनों ओर से हमला किया जायेगा तो उसकी शक्ति टूट जायेगी और हिन्दुस्तान के लोग अपनी स्वतन्त्रता फिर प्राप्त कर लेंगे। इसलिए मेरी योजना के अनुसार तो हमें इस बात की चिन्ता भी नहीं करनी चाहिए कि हिन्दुस्तान के प्रति धुरी देशों का रुख क्या रहता है। यदि हिन्दुस्तान के रहने वाले और हिन्दुस्तान के बाहर रहने वाले हिन्दुस्तानी अपने कर्तव्य का पालन करेंगे तो हिन्दुस्तानियों के लिए अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से धकेल बाहर करना सम्भव है। वे इस प्रकार अपने देश के ३८८० लाख आदमियों को स्वतन्त्र कर सकते हैं, मित्रो! पूर्वीय एशिया के ३० लाख हिन्दुस्तानियों का नारा यह होना चाहिए– 'पूरी लड़ाई के लिए पूरी भर्ती' उस पूरी तैयारी में से मैं कम-से-कम तीस लाख सैनिकों की भर्ती और ३ करोड़ डालर के संग्रह की आशा करता हूं। मैं वीर हिन्दुस्तानी नारियों का भी एक मृत्युंजयी दस्ता बनाना चाहता हूं, जो सन् १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध में झांसी की रानी लक्ष्मी बाई ने जैसी तलवार चलाई थी, वैसी तलवार चला सकें।

हिन्दुस्तान में हमारे देशवासियों पर इस समय बड़ी मुसीबत है। उनकी मांग है कि दूसरा मोर्चा खोला जाय। आप पूर्वी एशिया में पूरा भर्ती कर दें और मैं आपको वचन देता हूं कि मैं दूसरा मार्चा खोल दूंगा। वह हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के संघर्ष के लिए खोला गया सच्चे अर्थों में दूसरा मोर्चा होगा।"

: ६ :

नेताजी ने आजाद हिन्द फौज की कमान संभाली

२५ अगस्त को नेता जी ने नियमित रूप से आजाद हिन्द फौज की सीधी कमान संभाली और एक निम्नलिखित खास हुक्मनामा निकाला—

"हिन्दुस्तान के स्वतंत्रता आन्दोलन और आजाद हिन्द फौज के हित की दृष्टि से, मैंने आज से अपनी सेना की सीधी कमान संभाल ली है।

यह मेरे लिए प्रसन्नता और गर्व की बात है। किसी भी हिन्दुस्तानी के लिए हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की सेना का सेनापति होने से बढ़कर कोई दूसरी बात सम्मानजनक नहीं हो सकती।

मैं अपने आपको ३८ करोड़ हिन्दुस्तानियों का सेवक मानता हूं। मैंने अपना कर्तव्य इस तरीके से पूरा करने का संकल्प किया है जिसमें इन ३८ करोड़ लोगों के स्वार्थ सुरक्षित रह सकें और प्रत्येक हिन्दुस्तानी मुझमें पूरा विश्वास रख सकें। हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की सेना विशुद्ध राष्ट्रवाद, पूर्ण न्याय और निष्पक्षता के आधार पर ही बनाई जा सकती है।

अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता की अगली लड़ाई में आजाद हिन्द फौज को महत्त्वपूर्ण हिस्सा अदा करना है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए हमें अपनी सेना बनानी होगी जिसका एक ही ध्येय होगा—हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता और एक ही इच्छा होगी—हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता प्राप्त करना या प्राण देना। आजाद हिन्द फौज जब खड़ी होगी तो वह संगमरमर की दीवार की भांति दुर्भेद्य होगी और जब वह कूच करेगी तो वह स्टीम रोलर की भांति बन जायेगी।

हमारा काम सुगम नहीं है। लड़ाई लम्बी और बहुत कठिन होगी; लेकिन हमें अपने उद्देश्य की अजेयता में पूरा विश्वास है। ३८ करोड़ लोगों को, जो कुल मानव जाति के पांचवें भाग के बराबर हैं, स्वतन्त्र होने का अधिकार है और वे अब स्वतन्त्रता की कीमत चुकाने के लिए तैयार हैं। इसलिए इस पृथ्वी पर ऐसी कोई शक्ति नहीं जो अब हमें अपने स्वतन्त्रता के जन्म सिद्ध अधिकार से वंचित कर सके।

साथियो! हमारा कार्य शुरू हो गया है। 'दिल्ली चलो' का नारा लगाते हुए हमें तब तक लड़ते जाना है जब तक कि हमारा राष्ट्रीय झंडा नई दिल्ली में वायसराय-भवन पर फहराने नहीं लग जाता और आजाद हिन्द फौज हिन्दुस्तान की राजधानी में पुराने लाल किले के भीतर विजय परेड नहीं करती।

२ मार्च १९४३ को समस्त पूर्वी एशिया में महात्मा गांधी की ७५ वीं वर्ष-गांठ मनाई गई। इस अवसर पर फरेर पार्क की एक विराट सभा में भाषण देते हुए नेता जी ने कहा—

'हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई में महात्मा गांधी का क्या स्थान है, यह मैं बताना चाहता हूं। महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तान की जो सेवा की है और उसकी स्वतन्त्रता के लिए जो कार्य किया है, वह अद्वितीय और बजोड़ है। उनका नाम हमारे राष्ट्रीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

जब पिछला महायुद्ध समाप्त हुआ और हिन्दुस्तान के नेताओं ने अपने देश को स्वतन्त्र करने की मांग की जिसका उनसे वादा किया गया था, तो उन्हें पहली बार यह मालूम हुआ कि उनको धोखा दिया गया है। उनकी मांग का उत्तर रौलट एक्ट के रूप में दिया गया जिसके द्वारा हिन्दुस्तानियों को पहले से मिली हुई थोड़ी-बहुत स्वतन्त्रता भी छिन गई। जब उन्होंने उस काले कानून के विरुद्ध आपत्ति की तो जलियां वाला बाग का हत्या-कांड हुआ। पिछले महा युद्ध में हिन्दुस्तान के लोगों ने जो बलिदान किये थे उसका बदला रौलट एक्ट

और जलियांवाला बाग के हत्या-कांड के रूप में चुकाया गया।

सन् १९१९ की दुखद घटनाओं के बाद हिन्दुस्तानी कुछ समय तक स्तब्ध रह गए और निष्क्रिय हो गए। अंग्रेजों और उनकी फौज ने स्वतन्त्रता के लिए किये गए सब प्रयत्न निर्दयता के साथ कुचल दिए। वैधानिक आन्दोलन, अंग्रेजी चीजों का बहिष्कार और सशस्त्र क्रांति सभी स्वतन्त्रता दिलाने में असफल रहे। हिन्दुस्तानी उस समय निराश हो गए और उस अन्धकार में लड़ाई का कोई नया तरीका और नया हथियार ढूंढ ही रहे थे कि ऐसे उपयुक्त समय पर गांधी जी अपना असहयोग या सत्याग्रह-सविनय अवज्ञा-का नया तरीका लेकर सामने आए। ऐसा प्रतीत हुआ मानो ईश्वर ने उन्हें हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता का मार्ग दिखाने के लिए भेज दिया हो। तुरंत सारा राष्ट्र स्वेच्छा से उनके झंडे के नीचे इकट्ठा होगया। हिन्दुस्तान की रक्षा हो गई। अब प्रत्येक हिन्दुस्तानी के मुख पर आशा और विश्वास की झलक दिखाई देती थी एक बार फिर विश्वास हो गया कि अन्त में विजय हमारी ही होगी।

२० वर्ष से अधिक समय से महात्मा गांधी स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न कर रहे हैं और इसमें सारा देश उनका साथ दे रहा है।

यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है कि अगर सन् १९२० में वे अपना लड़ाई का नया हथियार लेकर न आए होते तो हिन्दुस्तान की गुलामी इस समय शायद और भी अधिक गहरी होती। हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने जो सेवायें की हैं वे अनुपम और अद्वितीय हैं। इन स्थितियों में अपने जीवन में कोई भी व्यक्ति इससे अधिक सफलता नहीं पा सकता। महात्मा गांधी की तुलना कुछ-कुछ शायद मुस्तफ़ा कमाल पाशा से की जा सकती है, जिन्होंने प्रथम महायुद्ध के बाद तुर्कों की रक्षा की और जिन्हें बाद में तुर्कों ने 'गाजी' की उपाधि से विभूषित किया।

१९२० से हिन्दुस्तान के लोगों ने महात्मा गांधी से दो बातें सीखी हैं, जो स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए आवश्यक बातें हैं। उन्होंने पहली

बात जातीय स्वाभिमान और आत्म-विश्वास की सीखी है, जिसके परिणाम-स्वरूप अब उनके हृदयों में क्रान्तिकारी जोश उछाल मार रहा है। दूसरी बात जो उन्होंने उनसे प्राप्त की यह एक सार्वदेशिक संस्था है, जा अब हिन्दुस्तान के दूरतम गांवों में जा पहुंची है।

महात्मा गांधी ने हमारे पैर स्वतन्त्रता की सड़क पर मजबूती से जमा दिये हैं। वे और दूसरे नेता इस समय जेलों के भीतर कष्ट पा रहे हैं। इसलिए महात्मागांधी ने जो कार्य शुरू किया है वह अब हिन्दुस्तान और उसके बाहर रहने वाले देश के दूसरे अधिकारियों को पूरा करना है।

मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं कि जब महात्मा गांधी ने दिसम्बर १९२० में राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में अपना कार्य-क्रम उपस्थित किया था तो उन्होंने कहा था, "यदि आज हिन्दुस्तान के पास तलवार होती तो उसने वह खींच ली होती।" आगे महात्मा जी ने कहा था कि चूंकि सशस्त्र क्रान्ति का प्रश्न ही नहीं उठता इसलिए देश के सामने एक मात्र मार्ग असहयोग या सत्याग्रह का रह जाता है। तब से अब समय बदल गया है और अब हिन्दुस्तानियों के लिए तलवार खींच लेना सम्भव हो गया है। हमें प्रसन्नता है और हम गर्व अनुभव करते हैं कि हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की सेना अब बन चुकी है और उसके सैनिकों की संख्या बढ़ रही है।......"

अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की स्थापना

हिन्दुस्तानी स्वतन्त्रता लीग का जो ऐतिहासिक सम्मेलन २१ अक्तूबर १९४३ को १०-३० बजे सिंगापुर की कैथे बिल्डिंग में बुलाया गया था, उसमें पूर्वी एशिया भर के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इसमें श्री रासबिहारी बोस ने स्वागत-भाषण पढ़ा और कर्नल चटर्जी ने सेक्रेटरियेट की रिपोर्ट पढ़ी। तब नेताजी मंच पर आये और डेढ़ घंटे तक उनका जोशीला भाषण होता रहा। हजारों श्रोताओं का विशाल

जन-समुदाय मंत्र-मुग्ध-सा उनका भाषण सुनता रहा। उन्होंने हिन्दुस्तानी में अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की स्थापना का महत्त्व समझाया। उनके भाषण का तामिल अनुवाद सिंगापुर के प्रसिद्ध वकील श्री चिदम्बरम् ने किया।

जब नेताजी ने हिन्दुस्तान के प्रति वफादारी की शपथ ली तो वह विशाल भवन गगन-भेदी हर्ष-ध्वनियों से गूंज उठा। वे इतने विह्वल हो रहे थे कि एक बार तो कई मिनट तक उनकी आवाज रुकी रही, लेकिन उनका भावावेश जिससे उनका गला रुंधा हुआ था, इतना नहीं दब सका कि वे अपनी आवाज निकाल सकें। उनका यह भावावेश बताता था कि शपथ का प्रत्येक शब्द उनके हृदय में से कितनी गहराई से निकल रहा था और इस अवसर की पुनीतता का उनके ऊपर कितना प्रभाव था। कभी ऊँची और कभी नीची, लेकिन मजबूत आवाज में उन्होंने पढ़ा—

"ईश्वर को साक्षी करके मैं यह पुनीत शपथ लेता हूं कि मैं सुभाषचन्द्रबोस, हिन्दुस्तान और अपने ३८ करोड़ देशवासियों को स्वतंत्र करने के लिए स्वतंत्रता की इस पुनीत लड़ाई को अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक जारी रखूंगा।" वे यहां रुक गये। ऐसा लगा कि वे रो पड़ेंगे। हममें से प्रत्येक आदमी अपने मन में 'इन्हीं' शब्दों को दुहरा रहा था। हम सब आगे को और झुकते जा रहे थे जिससे हम नेताजी की उस संगमरमर जैसी सफेद आकृति तक पहुंच सकें। सभा उनमें ही निमग्न हो गई थी। सभा में अगाध शांति थी। अपने ओठों को बन्द किये हुए और आँखों में आंसू रोके हुए हम नेता जी के उस भावावेश से संभलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय उन्होंने गम्भीर आवाज में, जसे चर्च में बाजा बजता है, कहा—

"मैं सदा हिन्दुस्तान का सेवक बना रहूंगा और अपने ३८ करोड़ भाइयों और बहनों के कल्याण-क्षेम की रक्षा करूंगा। यह मेरा सबसे बड़ा कर्त्तव्य होगा।

स्वतंत्रता लेने के बाद भी हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए सदैव अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक बहाने के लिए तैयार रहूंगा।"

वह उत्तजना अब दूर होगई थी और हम फिर बिना रुकावट के सांस ले सकते थे ।

तब अस्थायी सरकार का प्रत्येक सदस्य उस विशाल समारोह के सामने आया और सभी नें व्यक्तिशः शपथ ली। "ईश्वर को साक्षी करके में यह शपथ लेता हूं कि मैं अपने देश हिन्दुस्तान को और अपने ३८ करोड़ देशवासियों को स्वतंत्र करने के लिए अपने नेता सुभाषचद्र बोस के प्रति पूरी तरह से वफादार रहूंगा और इस उद्देश्य की खातिर अपना जीवन और सर्वस्व देन के लिए सदा तयार रहूंगा।"

तब नेता जी ने यह घोषणा पढ़ी, जो हमारे देश के इतिहास में एक प्रमुख दस्तावेज के रूप में सदा कायम रहेगी—

"सन् १८५७ में बंगाल में अंग्रेजों से पहली बार हारने के बाद हिन्दुस्तान के लोगों ने सौ वर्ष तक कठिन और भाषण लड़ाइयां लड़ीं। इस समय के इतिहास में अद्वितीय वीरता और आत्म-बलिदान के उदाहरण भरे पड़े हैं। इस इतिहास के इन पृष्ठों में बंगाल के सिराजुद्दौला और मोहनलाल, दक्षिण भारत के हैदरअली, टीपू सुलतान और वेलू थाम्पी. महाराष्ट्र के अप्पासाहिब भोंसले और पेशवा बाजीराव, अवध की बेगमें, पंजाब के सरदार श्यामसिंह अटारी वाला और अंत में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तांतिया टोपी, डुमरांव के महाराजा कुंवरसिंह और नाना साहिब के नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखे हुए हैं। दुर्भाग्य से हमारे पूर्वजों ने पहले यह नहीं अनुभव किया कि अंग्रेज सारे हिन्दुस्तान के लिए ही बेहद खतरनाक हैं, इसलिए उन्होंने संयुक्त मोर्चा बनाकर उनका मुकाबला नहीं किया। अंत में जब हिन्दुस्तानियों ने असली स्थिति को पहचाना तो उन्होंने संगठित होकर कार्रवाई की और सन् १८५७ में बहादुरशाह के झंडे के नीचे उन्होंने स्वतंत्र मनुष्यों के रूप

में अपनी अन्तिम लड़ाई लड़ी।

सन् १८५७ में अंग्रेजों द्वारा बलात् निःशस्त्र किय जाने और आतंक एवं पाशविकता का शिकार बनाये जाने के बाद, हिन्दुस्तान के लोग कुछ समय तक दबे पड़े रहे, लेकिन सन् १८८५ में राष्ट्रीय महा-सभा कांग्रेस की स्थापना होने पर नवीन जागृति का युग आरम्भ हो गया। सन् १८८५ से पिछले महायुद्ध के अन्त तक हिन्दुस्तान के लोगों न अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए आन्दोलन और प्रचार, अंग्रेजी माल का बाहिष्कार, आतंकवाद और तोड़-फोड़ और अंत में सशस्त्र क्रांति ये सब तरीके आजमा लिये। लेकिन ये सभी प्रयत्न व्यर्थ गये। अंत में सन् १९२० में जब हिन्दुस्तान के लोग अपनी असफलता के कारण निराश होकर अंधकार में मार्ग हीन भटक रहे थे तब महात्मा गांधी असहयोग और सविनय अवज्ञा का नया हथियार लेकर सामने आये।

इस प्रकार हिन्दुस्तान के लोगों ने अपनी-अपनी राजनीतिक चेतना ही प्राप्त नहीं की, बल्कि वे फिर राजनीतिक दृष्टि से संगठित हो गए। वे अब एक आवाज में बोल सकते थे और सम्मिलित उद्देश्य को प्राप्त करने की इच्छा लेकर कार्य कर सकते थे। सन् १९३७ से १९३९ तक आठ प्रांतों में कांग्रेसी सरकार बनीं। उन्होंने यह दिखा दिया कि हिन्दुस्तान के लोग अपना शासन-कार्य खुद संभाल सकते हैं। इस प्रकार वर्तमान विश्व-युद्ध से पूर्व हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की अन्तिम लड़ाई के लिए भूमि तय्यार हो चुकी थी।

भारत में अंग्रेजी राज्य ने हिन्दुस्तानियों को अपनी मक्कारी से निराश कर दिया था और उन्हें अपनी लूट-पाट से भुखमरी और मृत्यु की हालत में पहुंचा दिया था। इससे अंग्रेजी राज्य के प्रति हिन्दुस्तानियों की सद्भावना जाती रही थी और उसकी स्थिति डांवाडोल होगई थी। अब इस दुखदायी राज्य के अन्तिम तस्मे को तोड़ने के लिए केवल एक चिनगारी की जरूरत है। इस चिनगारी को

जलाना ही हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की सेना का काम है।

अब चूंकि स्वतन्त्रता का प्रभात समीप है । इसलिए हिन्दुस्तानियों का कर्त्तव्य है कि वे अपनी स्थायी सरकार बना लें और उस सरकार के झंडे के नीचे अन्तिम संघर्ष छेड़ दें। लेकिन चूंकि हिन्दुस्तान के सब नेता इस समय जेलों में हैं और देश के भीतर लोग बिलकुल बेहथियार हैं, इसलिए अब पूर्वीय एशिया के भारतीय स्वतन्त्रता संघ का यह कर्त्तव्य है कि वह अस्थायी आजाद हिन्द सरकार बना ले।

अस्थायी सरकार को इस बात का हक है और वह इसके लिए मांग भी करती है कि हिन्दुस्तानी उसके प्रति वफादार रहें और उसका साथ दें। वह नागरिकों को गारंटी देता है कि उनको धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी और उनको समान अधिकार प्राप्त होंगे तब उनको समान अवसर दिया जायेगा। वह अपना यह इरादा घोषित करती है कि वह सारे राष्ट्र के सुख और समृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहेगी और राष्ट्र की सब संतानों से एक समान वर्ताव करेगी और भूत काल में विदेशी सरकार ने चालाकी से जो मतभेद पैदा कर दिये हैं उनका उन्मूलन करेगी।

ईश्वर के नाम पर और पिछली पीढ़ियों के नाम पर जिन्होंने सब लोगों को एक जाति के रूप में मिला रखा था और उन मृत वीरों के नाम पर जिन्होंने हमारे लिए वीरता और बलिदान की परम्परा छोड़ी है, हम हिन्दुस्तान के लोगों का आवाहन करते हैं कि वे हमारे झंडे के नीचे इकट्ठे हों और हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए लड़ें। हम उन्हें आवाहन करते हैं कि वे अंग्रेजों और उनके भारतीय मित्रों के विरुद्ध अंतिम लड़ाई छेड़ें और वीरता तथा धैर्य के साथ अंत में अपनी विजय का विश्वास लेकर तब तक इस लड़ाई को चलायें जब तक कि शत्रु हिन्दुस्तान की भूमि से हटा न दिया जाय और हिन्दुस्तान के लोग एक बार फिर स्वतन्त्र जाति न बन जायें।

इस पर अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की ओर से निम्न व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये–

सुभाषचन्द्र बोस-सरकार के प्रधान, प्रधान मन्त्री, युद्ध और विदेश-मंत्री, कप्तान लक्ष्मी–महिला संगठन, एस० ए० अय्यर—प्रकाशन और प्रचार; ले० कर्नल ए० सी० चटर्जी—राजस्व, ले० कर्नल एन० एस० भगत, लेफ्टिनेंट कर्नल ज० के० भोंसले, ले० कर्नल गुलजारसिंह, ले० कर्नल एम० जैड० कियानी, ले० कर्नल ए० डी० लोकनाथन, ले० कर्नल अहसान कादिर, ले० कर्नल शाहनवाज—सशस्त्र फौजों के प्रतिनिधि, ए० एम० सहाय सेक्रेट्री, रासबिहारी बोस—सर्वोच्च सलाहकार, करीम गनी, देवनाथदास, डी० एम० खान, वाई० येलप्पा, जे०, थिती, सरदार ईश्वरसिंह—सलाहकार, ए० एन० सरकार कानूनी सलाहकार।

लड़ाई की घोषणा

२५ अक्तूबर १९४३ को अस्थायी आजाद हिंद सरकार ने सिंगापुर में म्युनिसिपल भवन के सामने अकस्मात् हिन्दुस्तानी नागरिकों और आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के विराट समारोह की मौजूदगी में ब्रिटेन और संयुक्त राज्य के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा की। नेताजी ने यह घोषणा पढ़ी:—

मन्त्रियों की कौंसिल ने अपनी दूसरी बैठक में आधी रात के बाद ५ मिनट व्यतीत होने पर यह प्रस्ताव पास किया है—

"अस्थायी आजाद हिन्द सरकार ब्रिटेन और संयुक्त राज्य के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा करती है।" जैसे ही यह घोषणा की गई वैसे ही नारों से आकाश फटने लगा और अनेक हर्ष ध्वनियों के साथ यह खबर सुनी गई। १५ मिनिट तक ५०००० मनुष्यों का यह विराट समुदाय बेकाब रहा। लोगों ने कई जगह घेरा तोड़ डाला और सभा-मंच पर पहुंचने का प्रयत्न किया। जब नेताजी ने उनको यह कहा कि वे अपने-अपने स्थानों पर खड़े रहें और अपने हाथ उठाकर इसे स्वीकृति प्रदान

करें, तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो हाथों का एक जंगल खड़ा हो। उसके बाद फौज के सिपाहियों ने अपनी बन्दूकें उठाईं और उन्हें अपने कन्धों पर रखा। उन्होंने अगणित संगीनें उठाकर अपनी स्वीकृति दी। मैं इस दृश्य को कभी नहीं भूलूंगा। मैंने झांसी की रानी दस्ते की कुछ महिलायें देखीं जो उत्साह की तीव्रता से मूर्च्छित हो गई थीं। वे भूमि पर अचेत पड़ी थीं और मुट्ठियां बांधे हुए लड़ाई के नारे लगा रहीं थीं—'चलो दिल्ली, चलो दिल्ली।'

: ७ :

रानी झांसी रेजीमेण्ट

नेताजी अपने विगत अनुभव के आधार पर भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में भारताय स्त्रियों के सहयोग के महत्त्व को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते थे अतएव सिंगापुर आने के कुछ ही दिन पश्चात् उन्होंने भारतीय स्त्रियों की एक विशेष सांग्रामिक सेना, जिसका नाम 'रानी झांसी रेजीमेण्ट' हो, तैयार करने के संबंध में अपनी उत्कट अभिलाषा प्रकट की। तदनुसार १२ जुलाई को 'भारतीय स्वातन्त्र्य लीग' की स्त्रियों ने भारतीय स्त्रियों की एक विशाल सभा आयोजित की। उस सभा में नेता जी ने व्याख्यान दिया। कुछ भारतीय स्त्रियां १०-१२ मील चलकर सभा में सम्मिलित होने के लिए आई थीं। नारियों में, जो सदैव से पुरुषों के समान ही भारतीय स्वतन्त्रता के लिए बलिदान करने के लिए उत्सुक रही हैं, उस समय बड़ा भारी जोश था और बड़ी भारी उमंग थी।

नेताजी ने निम्न शब्दों में व्याख्यान दिया:—

"वहनो, आप सबको भली-भांति मालूम है कि हमारे स्वाधीनता-संग्राम में भारतीय महिलाओं ने एक ख़ास भाग लिया है, और विशेष रूप से पिछले बाईस सालों में। सन् १९२१ से, जब कि गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस का पुनर्जन्म हुआ था, महिलाएं राष्ट्र की क्रान्ति में एक महत्त्वपूर्ण भाग लेती आई हैं। यह केवल कांग्रेस के सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Civil disobedience) के ही सम्बन्ध में नहीं है, प्रत्युत गुप्त क्रान्तिकारी आन्दोलन के विषय में भी है। वस्तुतः मेरे लिए यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी कि

एसा काई सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र नहीं है, ऐसा कोई राष्ट्रीय आन्दोलन का अंग नहीं है, जिसमें भारतीय महिलाओं ने प्रसन्नता पूर्वक और वीरता पूर्वक भाग न लिया हो। चाहे वह बिना खाये-पिये गांव-गांव घूमना हो, चाहे वह सभा पर सभा करना और उसमें व्याख्यान देना हो, चाहे वह दरवाजे-दरवाजे आजादी का संदेश पहुंचाना हो, चाहे वह चुनाव लड़ने की दौड़ धूप हो, चाहे सड़कों पर सरकारी कानून को तोड़ने के लिए जुलूस निकालना हो और उसमें भले ही ब्रिटिश पुलिस द्वारा अमानुषिक लाठी-चार्ज ही मिले हों; चाहे वह वहादुरी से जेल जाना और बुरे बर्त्ताव, अपमान और घृणित बर्त्ताव आदि को सहन करना हो, कहीं भी हमारी बहनें पीछे नहीं रही हैं। हमारी बहादुर बहनों ने गुप्त क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भी लोक-विख्यात भाग लिया है। उन्होंने यह दिखा दिया है कि यदि आवश्यकता पड़े तो वे अपने भाइयों के समान बन्दूक भी चला सकती हैं। यदि आज मैं अपना पूरा विश्वास आप लोगों में प्रकट करता हूँ तो वह इसलिए है कि मैं जानता हूँ कि हमारी बहनें किस योग्य हैं और इसीलिए मैं बिना थोड़ी भी अत्युक्ति के कहता हूँ, कि कोई भी ऐसा दुःख नहीं है, जो हमारी बहनें सहन न कर सकें।

"इतिहास हमें यह बतलाता है कि प्रत्येक साम्राज्य का पतन भी उसी प्रकार से होता है जिस प्रकार से उसका उदय तथा उत्थान होता है और अब वह समय आगया है, कि ब्रिटिश साम्राज्य संसार के धरातल से अदृश्य हो जाए। हम अपनी आंखों से देखते हैं कि किस प्रकार यह साम्राज्य संसार के इस भाग से अदृश्य हो गया है। यह संसार के दूसरे भाग से भी अदृश्य हो जायगा और भारतवर्ष से भी····

"यदि यहां पर अथवा कहीं और जगह कोई ऐसी नारी हो जो यह सोचती हो कि राइफल कन्धे पर रखना एक ऐसा कार्य है जो कि स्त्रियों के लिए नहीं है, तो मैं उससे इतिहास के पृष्ठ पलटने को कहूंगा। सन् १८५७ के गदर में, जो भारत का आजादी का युद्ध था, बहादुर

झांसी की रानी ने क्या किया! यह रानी लक्ष्मीबाई ही थीं, जिन्होंने खुली हुई नंगा तलवार हाथ में लेकर घोड़े पर सवार होकर अपने सैनिकों का युद्ध-क्षेत्र में नेतृत्व किया। यद्यपि यह हमारा दुर्भाग्य था कि वे असफल रहीं, और वे ही क्या असफल रहीं, समग्र भारत असफल रहा। लेकिन हमें उस कार्य को, जिसको झांसी की रानी ने १८५७ में प्रारम्भ किया था और उसमें असफल रही थीं, पूरा करना है और जारी रखना है।........

"अतएव सबसे वाद के इस अन्तिम स्वातन्त्र्य संग्राम में हम न केवल एक; बलिक हजारों झांसी की रानियां चाहते हैं। महत्त्व इस बात का नहीं है कि आप कुल कितनी राइफलें उठा सकती हैं अथवा कितनों को मार सकती हैं। महत्त्व तो इस ओजस्वी उदाहरण के अमर प्रभाव का है।"

व्याख्यान के अन्त में नेताजी ने 'रानीझांसी रेजीमेण्ट' और 'रेडक्रास यूनिट में भरती होने की अपील की। असंख्य महिलाओं ने तुरन्त अपनी सेवायें समर्पित कर दीं। फलतः उनके लिए सिंगापुर में ट्रेनिंग कैम्प शुरू कर दिया गया। सिंगापुर में रेजीमेण्ट मे सम्मिलित होने वाली स्वयं-सेविकाओं में युवतियां और प्रौढ़ नारियां थीं और उनमे से अधिकांश उच्च और सम्भ्रान्त परिवार की थीं। उनमें हिन्दू, मुसलमान और सिख लड़कियां थीं। ऐसी लड़कियां थीं जो भारत के कोने-कोने से आई हुई थीं। ट्रेनिंग कैम्प में कोई आनन्द-प्रद सुविधाएं नहीं थीं। उनको बड़ी सख्त ट्रेनिंग दी गई, उन्हें मशीन-गनों, टामी-गनों, हाथ की बन्दूकों और भारी राइफलों आदि को ले जाना और उनका प्रयोग करना सिखाया गया। उन्हें बड़ी कड़ी शारीरिक शिक्षा भी दी गई और उनके सामने भारतवर्ष के सामाजिक और आर्थिक संगठन के संबंध में व्याख्यान भी दिये गए कैम्प में उनको बहुत सादा भोजन मिलता था। केवल, मछली और सादी तरकारियां ही उनको भोजन में प्राप्त होती थीं। रात में सोने के लिए उनको कोमल और आनन्द-प्रद चारपाइयां नहीं मिलती थीं। वे कड़े लकड़ी के तख्त पर केवल एक कंबल बिछाकर सोती थीं।

कैम्प के नियम और कायदे बड़े ही कड़े थे। उनके निकट कोई जा न सकता था और सप्ताह में केवल एक ही बार उनके संबन्धी उनसे मिल सकते थे। सवेरे से लेकर शाम तक वे ट्रेनिंग प्राप्त करती रहती थीं। नेता जी द्वारा डा० लक्ष्मी स्वामीनाथन्, जो कि एक स्फूर्तिमती एवं वीर युवती प्रतीत होती थीं, उनकी कमाण्डर नियुक्त की गईं।

छः महीने के अल्प-काल में उन्होंने अपनी सब ट्रेनिंग पूरी कर ली और वे प्रायः वैसी ही शिक्षिता एवं अनुशासन-सम्पन्न होगईं जैसा कि कोई भी आजाद हिन्द फौज का सैनिक होता था। विशेषतः संगीन चलाने में वे बड़ी दक्ष थीं, और उनमें से प्रत्येक युवती ब्रिटिश सेना के खिलाफ अपनी संगीनों का प्रयोग करने के लिए उत्सुक थी।

१९४४ के प्रारम्भ में जब कि आजाद हिन्द फौज की अन्य टुकड़ियां इम्फाल पर आक्रमण करने के लिए ब्रह्मा की ओर जा रही थीं, रानी झांसी रेजीमेन्ट की स्त्रियों ने अपने रक्त से लिखकर एक प्रार्थना-पत्र नेताजी के पास भेजा; जिसमें उन्होंने नेता जी को यह सूचना दी कि वे मोर्चे पर जाने एवं अपने जीवन को देश की स्वतन्त्रता के हेतु समर्पित करने के लिए उतना ही उत्सुक हैं, जितना कि आजाद हिन्द फौज का कोई पुरुष सैनिक। इस पत्र में उन्होंने नेताजी से शीघ्र अवसर दिये जाने की प्रार्थना भी की। नेताजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और रानी झांसी रेजीमेन्ट सिंगापुर से रंगून चली आई, और वहां १९४४ के प्रारम्भ में स्वयं-सेविकाओं के शिक्षण के लिए एक दूसरा कैम्प प्रारंभ किया गया। इस समय तक संख्या २००० तक पहुंच चुकी थी। और भी हजारों स्त्रियां फौज में सम्मिलित किये जाने के लिए उत्सुक थीं। परन्तु अनेक विभिन्न शासन व प्रबन्ध संबन्धी कठिनाइयों के कारण वे सम्मिलित नहीं की जा सकीं।

जब आजाद हिन्द फौज ने इम्फाल पर आक्रमण प्रारम्भ किया, तो रानी झांसी रेजीमेन्ट की टुकड़ियां मेमो पहुंचाई गईं। उनमें दो

विभाग थ। एक नर्स अर्थात् उपचार विभाग था, जिसका प्रारम्भिक कार्य-क्रम वास्तविक संग्राम में भाग लेना ही था। रानी झांसी रेजीमेण्ट की प्रत्येक स्वयं-सेविका युद्ध में और अस्पताल में नर्स की भांति काम करन, दानों ही में दीक्षित की गई थी। रानी झांसी रेजीमेण्ट के इस उपचार विभाग (Nursing section) ने जो अमूल्य कार्य किये, उनका वर्णन हम अपनी पुस्तक में और कहीं कर चुके हैं और मैं उनको यहां नहीं दुहराऊंगा।

संग्राम विभाग (Fighting section) के संबन्ध में नेताजी का यह विचार था कि वे इम्फाल की विजय के पश्चात् वास्तविक संग्राम में भाग लें। उनका यह भी विचार था कि जब कलकत्ता विजित किया जायगा, तो वहां पर होने वाली आजाद हिन्द फौज की विजय में रानी झांसी रेजीमेन्ट सबसे आगे होगी। यद्यपि इम्फाल की विजय में हमारी असफलता के कारण रानी झांसी रेजमेन्ट को वास्तविक युद्ध में भाग लेने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, फिर भी मुझे विश्वास है कि यदि उन्हें एक अवसर दिया गया होता तो उन्होंने अवश्य ही अपने को कुशल घोषित किया होता। उनमें से सब बाघिनियों के समान वीर थीं और चट्टान की तरह दृढ़ थीं। अपनी ट्रेनिंग के अन्तिम दिनों में प्रति सप्ताह दो दिन कम-से-कम बीस सेर बोझ के बारूदी थैले और राइफल लादकर उनको १५-२० मील तक लम्बा मार्च करना पड़ता था। रोज सबेरे शारीरिक शिक्षा के समय वे तेज चाल से एक बार में दो मील दौड़ा करती थीं। अक्टबर १९४४ में एक समय आजाद हिन्द फौज की उत्सव सम्बन्धी परेड हुई। प्रायः ३००० सैनिक परेड कर रहे थे। रानी झांसी रेजीमेन्ट दाईं ओर थी और सबसे आग चलने वाली यूनिट थी। सभी जापानी जनरल, बर्मी मिनिस्टर और रंगून के अन्य प्रसिद्ध नागरिक परेड देखने के लिए आये हुए थे। नेताजी बीच में खड़े हुए बातें कर रहे थे और सारी टुकड़ियां खुले हुए विशाल परेड-ग्राउण्ड में उनके सामने पंक्ति-बद्ध खड़ी थीं।

नेताजी के व्याख्यान के समाप्त होने के पश्चात् सेनाओं को मार्च करते हुए नेता जी को सलामी देने का हुक्म दिया गया। जैसे ही रानी झांसी रेजीमेन्ट गुजर रही थी, हवाई हमले की सूचना की घण्टी बजी। पास के हवाई स्टेशन से जापानी लड़ाके हटा दिये गए। ब्रिटिश बम-वर्षक और लड़ाक जहाज रंगून पर हमला करने के लिए आ रहे थे। कुछ ही क्षण में वे आ गए और एक भयानक मशीनगनों का युद्ध हमारे बिलकुल ऊपर ही प्रारम्भ हो गया। जापानी जनरलों के समेत सम्पूर्ण दर्शक गंभीर खतरे को समझते हुए भाग खड़े हुए और उन्होंने पास की खाइयों में अपनी रक्षा के लिए शरण ली। नेता जी मञ्च पर शान्त रूप से ऐसे खड़े हुए थे मानों पत्थर की मूर्ति हों। रानी झांसी रेजीमेण्ट की लड़कियों ने मार्च जारी रखा और बिलकुल ठीक तरह से कदम रखती हुईं उनके सामने से निर्भय रूप में ऐसा गुजर गईं जैसे कुछ भी न हुआ हो। शत्रु के जहाज एकदम उसी स्थान पर जहां हमारी परेड हो रही थी, बहुत नीचे आ गए। उनमें से एक तो लगभग एक पेड़ की ऊंचाई से उड़ता हुआ नेता जी से १०० गज से भी कम दूरी से होकर निकला। इस जहाज पर हवाई-जहाज-विध्वंसक बन्दूकों ने आग बरसाई। नेता जी के सामने होकर गुजरती हुई रानी झांसी रेजीमेंण्ट की एक वीर सैनिका के एक गोली लगी और उसका सिर उड़ गया तथा वह तत्क्षण मर गई। फिर भी कुछ भी हलचल न फैली और बाकी पूरी रफ्तार से चलती रहीं। शत्रु के जहाज ने, जिसके पास लगभग ६ मशीनगनें हो सकती थीं, यदि आग बरसाना आरम्भ कर दिया होता तो नेता जी और रानी-झांसी रेजीमेंण्ट के सम्पूर्ण सैनिक मारे गए होते।

दिसम्बर, ४४ के प्रारम्भ में एक दूसरे मौके पर जब रानी झांसी रेजीमेण्ट के कुछ सैनिक रंगून से बंकोक हटाये जा रहे थे, उनकी ट्रेन पर ब्रिटिश गोरिल्लों ने हमला किया। हमारी सैनिकाओं ने तुरन्त शत्रु के ऊपर अग्नि-वर्षा की और उसे वापिस लौटने के लिए विवश कर दिया। इस युद्ध में उनमें से दो मारी गईं और दो घायल हुईं, परन्तु

उन्होंने शत्रु को इससे कहीं भारी हानि पहुंचाई ।

मानसून ऋतु के मध्य-काल में रंगून से बकौक हटाये जाते समय उन पर जो विकट आपत्तियां पड़ीं, और जिनको उन्होंने दृढ़ निश्चय और साहस के साथ हँस-हँस कर झेला, उनका पूरा वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। हटाये जाते समय अपने पूरे हथियार और पूरी पोशाक को लादे हुए उन्होंने २०० मील पैदल पार किये। रानी झाँसी रेजिमेण्ट के कार्यों द्वारा निःसन्देह यह प्रमाणित हो गया कि ऐसा कोई काम नहीं है जो हमारी भारतीय नारियां न कर सकें और यदि उन्हें अवसर दिया जाये, तो अधिक नहीं तो वे उतनी योग्य तो हैं ही जितनी कि संसार के दूसरे राष्ट्रों की स्त्रियां ।

आजाद हिन्द फौज के हथियार डालने के पूर्व नेताजी ने स्वयमेव व्यक्तिगत रूप से यह पता ले लिया था कि प्रत्येक लड़की अपने पिता माता के पास सुरक्षित रूप में वापिस भेज दी गई है।

: ८ :

सुभाष ब्रिग्रेड

आजाद हिन्द फौज की सीधी कमान अपने हाथ में लेने के बाद तुरंत नेताजी ने सिंगापुर के सनिक सदर मुकाम में बड़े अफसरों का एक सम्मेलन बुलाया। निम्न अफसर उसमें मौजूद थे :—

१. मेजर जनरल जे० के० भोंसले	५. कर्नल आई० जे० कियानी
२. ,, ,, एम० जेड० कियानी	६. ,, गुलजारसिंह
३. ,, ,, अजीज अहमद	७. ,, हवीवुर्रहमान
४. ,, ,, शाहनवाज	८. ,, प्रेमकुमार सहगल

इस सम्मेलन में नेताजी ने दक्षिण पूर्वी एशिया को समस्त जापानी फौज के प्रधान सेनापति फील्डमार्शल तेरोंची के साथ हुई अपनी बात-चीत बताई। यह अगली लड़ाई में हिन्दुस्तानी फौज के नियुक्त करने के सम्बन्ध में थी।

नेताजी ने बताया कि तेरोंची ने उन्हें यह कहा कि चूंकि आजाद हिन्द फौज पूर्वी एशिया की लड़ाई में हार चुकी है और उसका साहस टूट चुका है, इसलिए उनके खयाल से उसके सनिक जापानी सैनिकों की भांति नहीं लड़ सकेंगे।

दूसरी बात उन्होंने यह कही कि आजाद हिन्द फौज, जो कभी ब्रिटिश भारतीय फौज का अंग रह चुकी है, ब्रिटिश व्यवस्था के अधीन रहकर लड़ने की ही अभ्यस्त है जिसमें बहुत-सा बढ़िया खाना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है, लेकिन जापानी सेना में बिलकुल विपरीत अवस्था है। लड़ाई में सैनिकों को बड़ी कठिनाइयां सहनी होती हैं और बहुत थोड़े भोजन पर रहना पड़ता है। उन्होंने कहा कि आजाद हिन्द फौज इन कठिनाइयों के सामने न टिकेगी।

अन्त में उन्होंने कहा कि आजाद हिन्द फौज ऐसे सिपाहियों की बनी हुई सेना है जो कभी ब्रिटेन के भड़ैत थे। उन्हें कोई राजनीतिक शिक्षण नहीं मिला उनमें कोई राजनीतिक भावना नहीं है। इसलिए भी वे अंग्रेजों की ओर, जहां उन्हें अच्छा खाना, तनख्वाह और अपने कई वर्ष के पहले देखे हुए परिवारों से भेंट की अधिक सम्भावना है, जो मिलने के लोभ को न रोक सकेंगे।

इसलिए उन्होंने नेता जी के सामने यह सुझाव रखा कि आजाद हिन्द फौज का मुख्य भाग सिंगापुर में छोड़ दिया जाय, क्योंकि उसको लड़ाई की जरूरत न पड़ेगी। उन्होंने कहा कि लड़ने का सब काम जापानी सैनिक कर लेंगे। वे ही हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करा लेंगे। जापानी केवल यह चाहते हैं कि उन्हें हिन्दुस्तान के लोगों की सद्भावना और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए नेता जी का सहयोग मिल जाय। उन्होंने यह सुझाव भी रखा कि आजाद हिन्द फौज की एक छोटी टुकड़ी, जिसमें विशेष कर्मचारी और खुफिया दल हो, आगे की पंक्तियों में जा घुसने और प्रचार करने के लिए काम में लाई जाय; जिससे ब्रिटिश भारतीय सेना की सैनिक भावना की दृढ़ता टूट जाय।

नेता जी ने तेरोंची को जो उत्तर दिया वह संक्षिप्त और दो टूक था। उन्होंने उनको कहा—

"जापानियों के बलिदान से प्राप्त की हुई हिन्दुस्तानियों की स्वतन्त्रता मेरे लिए गुलामी से बदतर है।" उन्होंने तेरोंची को कहा कि मणिपुर की लड़ाई हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई है, इसलिए यह हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय सम्मान के विरुद्ध होगा कि आजाद हिन्द फौज के सनिक तो पीछे रहें और जापानी उस प्रदेश में आगे बढ़ें। नेता जी ने आग्रह किया कि आगामी लड़ाई में आजाद हिन्द फौज आगे-आगे चलनी चाहिए जिससे हिन्दुस्तान की पवित्र भूमि पर गिरने वाले खून का पहली बूंदें आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के खून की बूदें हों। वे यह मानते थे कि हिन्दुस्तानियों को इस बात का अधिकतम प्रयत्न करना

चाहिए कि हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता उनके अपने प्रयत्न से मिले और तब भी यदि उनके अधिकतम उद्योग और बलिदान करने पर भी वे उसे प्राप्त न कर सके तो वे जापानियों की सहायता मांगेंगे। जापानी कमांडर इससे सहमत हो गये; लेकिन उन्होंने नेता जी से अनुरोध किया कि वे पहले एक चुना हुआ ब्रिगेड लड़ाई में भेजें जिससे इस सम्बन्ध में परीक्षण हो सके। यदि यह सिद्ध हो जाय कि आजाद हिन्द फौज के सैनिक भी जापानियों की भांति ही लड़ सकते हैं और कठिनाइयां सहन कर सकते हैं तो बाकी आजाद हिन्द फौज भी लड़ने के लिए भेज दी जाय।

यह सब कहने के बाद नेता जी ने सब अफ़सरों को इस सम्बन्ध में अपनी अपनी सम्मतियां देने के लिए कहा। अंत में यह तय किया गया कि पहला छापामार रेजिमैन्ट बनाया जाय और उसमें पहले ३ ब्रिगेडों अर्थात् गांधी ब्रिगेड, आजाद ब्रिगेड और नेहरू ब्रिगेड के अच्छे-से-अच्छे चुने हुए सैनिक रखे जायं। यह ब्रिगेड पहले लड़ाई में भेजा जाय और यदि यह संतोषजनक सिद्ध हो तो आजाद हिन्द फौज लड़ाई में उतरेगी।

मैं उनका कमांडर बनाया गया कर्नल सादुरसिंह सेकंड कमांडर एवं कर्नल महबूब अहमद रेजीमेन्टल् एडजटॅट नियुक्त किये गए।

यह रेजीमेन्ट टाइपिंग में सितम्बर १९४३ में संगठित किया गया और सैनिकों ने खुद इसका नाम "सुभाष ब्रिगेड" रखा। नेताजी ने इस पर अपनी स्वीकृति नहीं दी थी, क्योंकि उनका कहना था कि आजाद हिन्द फौज के ब्रिगेडों के नाम जीवित लोगों के नामों पर न रखे जायें। उन्होंने बार-बार हिदायतें निकालीं कि कोई भी उसे सुभाष ब्रिगेड न कहे; लेकिन सैनिकों को इसका पालन करने में कठिनाई प्रतीत होती थी।

टाइपिंग में आने पर ब्रिगेड का उचित रूप में पुनर्संगठन किया गया। इसकी पहली, दूसरी और तीसरी पल्टनों की कमान मेजर पी. एस. रतूड़ी, मेजर रामसिंह और मेजर पदमसिंह को सौंपी गई। यह आज्ञा निकाली गई थी कि दो महीने के भीतर ब्रिगेड को लड़ाई के

लिए तैयार कर दिया जाय। पहले डिवीजन के दूसरे तीन ब्रिगेडों की तरह यह ब्रिगेड भी मझोली मशीनगनों, हलकी मशीनगनों, बन्दूकों और दस्ती बमों से लैस किया गया था।

आजाद हिन्द फौज के छापामार ब्रिगेडों के साथ तोपें या मैदानी तोपें नहीं रहती थी जिनसे उन्हें उनकी गोलाबारी की मदद मिल सके। उनके पास बेतार के तार के यंत्र या टेलीफोन से बात करने के साधन भी नहीं रहते थे। मशीनगनों में बेल्टों और मेगजीनों की बड़ी कमी थी। दूरबीनें और दूसरे औजार एवं मशीनगनों के फालतू हिस्से भी उपलब्ध न थे और न कोई पशु या यांत्रिक सवारियां थीं जिन पर रख-कर इन यन्त्रों को देश में होकर ले जाया जासके।

ब्रिगेड के साथ इलाज की व्यवस्था बिलकुल नाकाफी थी। ३००० आदमियों की सेवा संभाल के लिए केवल पांच डाक्टर थे। उन्हें भी आगे और पाछे के स्थानीय अस्पतालों में बांट देना पड़ता था। डाक्टरों के पास खासतौर के कोई चीर-फाड़ के औजार नहीं थे और दवाएं भी कम थीं। कपड़ों और जूतों की बेहद कमी थी। कुछ सैनिकों को नंगे पैरों ही अत्यन्त दुर्गम और जहरीले कीड़ों से भरे हुए मलाया के वनों में जंगली लड़ाई का अभ्यास करना पड़ता था।

इन स्थितियों में पहली छापामार रेजीमेन्ट बर्मा की लड़ाई में भाग लेने के लिए दो मास के थोड़े से समय में तय्यार करना पड़ा कर्नल एम. जेड. कियानी डिवीजन के कमांडर और क्वार्टर मास्टर एड-जूटेंट ले० कर्नल एल. एन. खोसला के उद्योग से यह कार्य किया गया। हथियारों, सामान और कपड़ों की कमी दूसरे दोस्तों से इन चीजों को लेकर पूरी की गई।

लेकिन जापानियों ने कोई सहायता नहीं दी। नेताजी ने दैवी-शक्ति-प्राप्त पुरुष की भांति कार्य किया। उन्होंने नागरिकों से विशाल धन-राशि इकट्ठी की। उन्होंने स्वेच्छा से सहायता दी और बाजार से जो कुछ मिल सका आजाद हिन्द फौज को साधन-सम्पन्न करने के लिए

खरीद कर दिया। वे सदा यह कहते रहे कि यह हमारी लड़ाई है और हमें इसके लिए जापानियों पर बहुत ज्यादा निर्भर नहीं रहना चाहिए।

सैनिकों को बड़ी तेजी से मानसिक और सैनिक शिक्षा दी गई। सैनिक शिक्षा में विशेष ध्यान जंगली लड़ाई की ओर दिया गया। सैनिकों के सामने दिये गए विशेष भाषणों के समय में उनसे बिलकुल खुलकर बातें करते थे और बिलकुल साफ-साफ और निश्चित शब्दों में उन्हें उन कठिनाइयों को बताते थे जो उनको सहनी थीं। जो लोग उसके लिए तैयार न थे उन्हें वे पीछे रहने की सलाह देते थे। लेकिन सैनिक एक स्वर से कहते थे, "नेता जी हमें एक मौका दीजिए, हम सारे संसार को दिखा देंगे कि कथित भडैंत हिन्दुस्तानी सैनिक हिन्दुस्तान की आजादी के लिए ऐसी ही वीरता से लड़ सकते हैं जैसी वीरता से संसार के किसी भी देश के सैनिक। नेता जी ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को यह भी कहा कि वे कभी भी जापानियों की ऐसी आज्ञायें स्वीकार न करेंगे जिनसे जातीय उत्कृष्टता या कोई दूसरी शासनिक भावना झलकती हो। उन्होंने उनको कह दिया था कि हम हिन्दुस्तानी हैं और उन्हें सदा इसका अभिमान रहेगा कि हिन्दुस्तानी दुनिया की अन्य किसी जाति की भाँति ही अच्छे हैं।

वे कहते थे कि जापानी अंग्रेजों के साथ लड़ाई लड़ने में सहायता देकर हमारे साथ कोई खास रियायत नहीं कर रहे हैं। वे बताते थे कि जब तक हिन्दुस्तान अंग्रेजों के आधीन है और वे उसका उपयोग जापान के विरुद्ध लड़ाई के केन्द्र के रूप में करते हैं, तब तक पूर्वी एशिया में जापानियों का साम्राज्य कदापि सुरक्षित नहीं हो सकता। अपने स्वार्थ के लिए यह आवश्यक हो गया है वे आजाद हिन्द फौज को हिन्दुस्तान से अंग्रेजों को निकाल बाहर करने में सहायता दें। उसके अलावा आजाद हिन्दुस्तान में जापान को व्यापारिक व आर्थिक दृष्टि से बहुत लाभ होगा। वह हिन्दुस्तान से माल का स्वतन्त्र आदान-प्रदान कर सकेगा।

लेकिन उन्होंने सदा अपने सिपाहियों को चेतावनी दी कि जहां हमारे मुल्क का आजादी का सवाल आता है, वहां हमें किसी का भा, अपने साथी जापानियों का भी, विश्वास करने की जरूरत नहीं। उसमें धोखे से बचने की निश्चित गारंटी हमारी फौजी ताकत ही हो सकती है और हमें इसे हिन्दुस्तान में घुसते-घुसते सौ गुनी कर लेना है। इस सम्बन्ध में उनकी हिदायतें बिलकुल साफ थीं। वे कहते थे कि यदि आप किसी भी जापानी को हिन्दुस्तान के ऊपर किसी भी तरह का नियंत्रण जमाता हुआ पायें तो तुरंत मुड़ पड़ें और उनसे भी ऐसी ही शक्ति के साथ लड़ें जैसी शक्ति से आप अंग्रेजों से लड़े हैं।

उन्होंने सैनिकों को चेतावनी दी थी कि वे करोड़ों भूखे मरते हुए लोगों की फौज के सिपाही हैं। इसलिए उन्हें सब आराम तलबी छोड़ देनी चाहिए और लड़ने एवं बंगाल के अपने भाइयों की तरह भूख मरने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। उन्होंने आज्ञा दी थी कि "आप जनता के उद्धारक हैं, इसलिए कोई लूट या बलात्कार की घटना नहीं होनी चाहिए। जो कोई भी किसी हिन्दुस्तानी या जापानी को यह अपराध करता हुआ देखे उसे तुरंत गोली मार दे।" उन्होंने अपने सैनिकों को शिक्षा दी थी कि वे स्त्रियों का सम्मान अपनी माताओं और बहनों का भांति करें।

वे अपने सैनिकों से ऐसी ही बातें करते थ जैसे मनुष्य मनुष्य से बातें करता है। इसलिए जब अवसर आया तो उनके सैनिक मनुष्यों की भांति ही लड़े। वे अपने सैनिकों पर भरोसा करते थे और वे उन्हें प्यार करते थे। उनके लिए हजारों ने बिना झिझक अपने प्राण दे दिये। ४ जुलाई को उन्होंने सिंगापुर में एक भाषण में अपने सैनिकों और अफसरों को कहा था कि आजाद हिन्द फौज के जिन सैनिकों ने हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने का निश्चय किया है, उन्हें जानना चाहिए कि मैं तो एक फकीर हूं। मेरे पास न तो बन्दूकें हैं, न टैंक और न हवाई जहाज हैं, जिन्हें मैं अपनी फौज को दे सकूं और न मेरे पास

असीमित धन या खजाना है जिससे मैं अपनी फौज को आराम से रख सकूं।" उन्होंने उनको कहा था कि "दिल्ली के अभियान में मेरे पास आपको देने के लिए केवल भूख, प्यास बलात् कूच और अन्त में मृत्यु है। मुझे स्वतन्त्रता के मूल्य के रूप में रक्त दीजिये और मैं आपको देश की स्वतन्त्रता दूंगा।" सब सैनिकों ने एक आवाज़ में उत्तर दिया—नेता जी, यदि अपना रक्त बहाकर हम हिन्दुस्तान को स्वतंत्र कर सकते हैं, तो हम वादा करते हैं कि हम ऐसा बलिदान करेंगे जिससे मणिपुर के मैदानों में खून की नदियाँ बह उठेंगी। असली लड़ाई में जो अप्रैल और मई १९४४ में हुई, उन्होंने अपना वचन पूरा निबाहा और अपना रक्त खूब बहाया। उनमें ४००० सैनिक मारे गये और उनके वादे के अनुसार मणिपुर के मैदानों में उनके रक्त की नदियां बह निकलीं। वहां आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के इस रक्त में हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों और ईसाइयों का रक्त घुल-मिल कर एक हो गया। और एक उद्देश्य के लिए महान्, स्वतंत्र और संयुक्त भारत के निर्माण के लिए प्रवाहित हुआ।

यह सब एक ऐसे नेता की अधीनता में हुआ और उस महान् उद्देश्य के लिए किया गया जिसके लिए सुभाष, गांधी, आजाद और नेहरू ब्रिगेडों के सैनिकों ने अपने छुफिया और बहादुर दलों के सैनिकों के साथ मिलकर हिन्दुस्तान और बर्मा की सीमा पर अंग्रेजों द्वारा इकट्ठी की गई भयंकर फौजों का सामना करने का निश्चय किया था। असली लड़ाई का, जो वहां लड़ी गई, पूरा विवरण पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

: ६ :

आज़ाद हिन्द फौज बर्मा को

सुभाष ब्रिगेड रेजीमेन्ट की पहली पार्टी न अपनी ट्रेनिंग समाप्त करके और हथियार व सामान पूरी तरह से लैस होकर १६ नवम्बर सन् १९४३ को ताइपिंग से रेल के जरिये रंगून का कूच किया। आखिरी पार्टी ने ताइपिंग से २४ नवम्बर को कूच किया।

इस पार्टी के कूच करने के समय स्टेशन पर अत्यन्त स्पर्शी मर्म दृश्य देखने में आया। जिन सिपाहियों को बीमार और कमज़ोर होने की वजह से डाक्टरों ने ताइपिंग में रोक दिया था, वे सब गाड़ी के इंजन के आगे पटरी पर लेट गये और उन्होंने अपने लिए अनुमति मिले बिना गाड़ी को चलने से रोक दिया। उनका कहना था कि हमने नेता जी के सामने प्रण किया है कि हम भारत माता के लिए बलिदान होंगे। तब हमें क्यों रोका जाता है और हमें अधिकार से क्यों वंचित रखा जाता है? बहुत समझाने पर कि अच्छे होने पर आप सबको अगली पार्टी के साथ भेजा जायगा, वे हटे और गाड़ी चली।

ताइपिंग से स्याम (थाईलण्ड) में चुम्पौंग तक का रास्ता पेनांग होकर रेल से तय किया गया। चुम्पौंग से कावाशी तक का ९० मील का रास्ता कुछ ने लारियों पर पार किया और कुछ ने पैदल पूरा किया। कावाशी से मुरगई तक नदी का रास्ता स्टीम बोट या नौकाओं से तय किया गया। मुरगई से तेवाय और ये तक की मंजिल प्रायः पैदल ही पूरी की गई। ये से मोलमीन होकर रंगून तक ट्रेन में यात्रा की गई।

जनवरी १९४४ के शुरू में रेजीमेण्ट का बड़ा हिस्सा रंगून पहुंच गया। ताइपिंग से रंगून पहुंचने में पांच सप्ताह लगे। इस अरसे में प्रायः चार सौ मील का सफर तो पैदल ही पूरा किया गया। जापानियों के साथ साधारण-सी गुत्थम-गुत्था या हाथापाई होने के अलावा कोई

और घटना रास्ते में नहीं घटी। एक बात जरूर साधारण कही जा सकती है कि जिस रास्ते को तय करने में जापानियों को पांच दिन लगते थे, उसको हमारे सिपाही मोर्चे पर जल्दी-से-जल्दी पहुंचने की उत्सुकता में दो दिन में पार कर लेते थे। हमारे सिपाही औसतन ८० पौण्ड भार ढोते हुए भी एक दिन में २५ मील चल लेते थे। "शहीदे भारत' कप्तान अमरीकसिंह और कप्तान संतसिंह की 'परवाना' और 'जंगजू' कम्पनियों ने तो दो-एक बार एक दिन में ३८ मील तक का रास्ता तय किया था।

पेगू से २० मील पूर्व में वाव नाम के स्थान पर ११ बजे अंग्रेजी लड़ाकू हवाई जहाजों न हमारी गाड़ी पर हमला किया। हमारी साधारण-सी हानि हुई। एक मारा गया और दो घायल हुए। हमारे साथ यात्रा करने वाले जापानियों को कुछ अधिक हानि झेलनी पड़ी। उनके ८ सिपाही मारे गये और ६ घायल हुए। इस प्रकार हमारी फौज का गढ़वाली सिपाही जीतसिंह युद्ध का पहला शहीद था। बाद में पूरी फौजी इज्जत के साथ उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया गया।

रंगून में पड़ाव

रंगून पहुंचने पर हमारी रेजीमेन्ट (सुभाष ब्रिगेड) मिगलाडोन की फौजी बैरकों में ठहरा और फिर मोर्चों पर कूच करने की आखिरी तय्यारियां की गईं।

रंगून में हमें अधिकतर प्रबन्ध-सम्बन्धी जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ा, वे ये थीं—

१ यातायात—सब रसद, हथियार, गोला-बारूद और घायलों का ले जाने के लिए हमारे पास सिर्फ पांच मोटर लारियां थीं। मरम्मत के लिए न तो कोई अच्छा वर्कशाप था और न फ़ालतू पुर्जे ही थे। कभी-कभी जापानी मोटर कम्पनियां हमारी मदद करती थीं, पर यह मदद बिलकुल नाकाफ़ी थी। हमने जापानियों से और गाड़ियां प्राप्त करने का

भरसक कोशिश की; पर हम कामयाब न हुए। खच्चर वगैरा लद्दू जानवर भी तो नहीं मिल सके। इसलिए रिज़र्व गोला-बारूद, भारी मशीनगनें और दवाइयां सब कुछ सिर पर ढोकर लेजाना पड़ता था।

२ कपड़े—आ० हि० फौज के पास गरम कपड़ों की बहुत कमी थी। चिन की पहाड़ियों व कादलान की घाटी में हमको लड़ना पड़ा और वहां बहुत सख्त सर्दी थी। हमारे सिपाहियों के पास सिर्फ एक पतला सूती कम्बल और एक गरम कुरता था। बड़े कोट और गरम कपड़े प्राप्त करने के लिए हमारी सब कोशिशें बेकार हुईं।

३ मच्छरदानियां—हमें मालूम था कि कबावा की घाटी, गंगातासू और कलादान का घाटी आदि के जिन मोर्चों पर हमें लड़ना है, वहां भयानक मलेरिया होता है, फिर भी हमें ठीक मच्छरदानियां नहीं मिल सकीं।

४ संकट-काल के लिए रसद—लड़ाई के वक्त काम में लाने के लिए रसद हमारे पास नहीं थी। रंगून में एक खास तरह का "शक्करपारा बिस्कुट" सिपाहियों के लिए तैयार किया गया। इसको बनाने में नेताजी ने खुद खास दिलचस्पी ली।

नेता जी ४ जनवरी १९४४ को एक जापानी हवाई जहाज से रंगून पहुंचे और वहां अपना अगला सदर मुकाम कायम किया। नेता जी ने महसूस किया कि चढ़ाई करने में वक्त बहुत थोड़ा रह गया है उन्होंने फौज के मोर्चे पर जाने की तय्यारी करने में हर बात में बड़ी दिलचस्पी ली और जहां तक हो सका हर बात की निगरानी खुद की। उन्होंने सारी कठिनाइयों का मजबूती से सामना किया। जापानी आ० हि०फौज को जितनी मदद दे सकते थे या जितनी उन्हें देनी चाहिए थी, उतनी नहीं दे रहे थे। उन्होंने हर तरह के वायदे गोल-मोल शब्दों में किय और कहा कि मोर्चे पर सब जरूरी सामान मिल जायगा। ये वायदे कभी भी पूरे नहीं हुए। सबसे जरूरी बात जल्दी-से-जल्दी

मोर्चे पर पहुंचकर धावा बोलना था। सिपाहियों ने नेता जी से कहा कि आप गरम कपड़े और गाड़ियों वग़ैरह के इन्तजाम के झंझट में फंसे रहें। उनको मोर्चे पर पहुंचने की जल्दी थी और उन्होंने कहा कि हम वहां पहुंचकर "चर्चिल सप्लाई" अर्थात् अंग्रेजों के रसद भंडार में से सब सामान ले लेंगे।

जापानी फौज से समझौता

आ० हि० फौज के सामने की इन्तजामी दिक्क़तों से बढ़कर आ० हि० फौज और जापानी फौज के बीच के ताल्लुक और सहयोग का सवाल था।

७ जनवरी १६४४ को नेता जी बर्मा के जपानी कमान्डर इन चीफ जनरल कवावे से मिलने गये। उनके साथ में भी गया। उस मौके पर आ० हि० फौज से लड़ाई में काम लेने व आ० हि० फौज और जापानी फौज के बीच सहयोग के सवाल पर बहस हुई। जापानी सेनापति ने नेता जी से कहा कि ज्यों ही आप हुक्म दें जापानी फौज धावा बोलने को तय्यार है। जनरल कवावे चाहते थे कि आ० हि० फौज को छोटी-छोटी टुकड़ियों में बांटकर जापानी फौज में शामिल कर लिया जाय। नेता जी को यह हर्गिज मंजूर न था कि "सुभाष ब्रिगेड" छोटी-छोटी टुकड़ियों में बंटकर अपनी अलग हस्ती खो दे। उन्होंने इस पर जोर दिया कि आ० हि० फौज के बटालियन के छोटे टुकड़े हर्गिज न किये जायं और उसके सब अफ़सर हिन्दुस्तानी हों। जापानी कमाण्डर इन चीफ़ ने यह बात मान ली। यह भी तय पाया कि ये दोनों फौजें लड़ाई को एक ही नीति पर चलें और नेता जी व जापानी कमांडर इन चीफ़ आपस में मिलकर पहले इसे तय कर लें। लड़ाई में मोर्चे का एक हिस्सा आ० हि० फौज को सौंपा जाय। यह फ़ैसला भी होगया कि हिन्दुस्तान की जमीन का चप्पा-चप्पा अंग्रेजों के हाथ से आजाद होने पर आ० हि० फौज को इन्तजाम के लिए सौंप दिया जाय और मेजर जनरल चटर्जी

इन हिस्सों के गवर्नर बनाये जायं। इसके अलावा अंग्रेजी फौज से छीना हुआ सब लड़ाई का सामान, स्टोर और मशीनें वग़ैरह आ० हि० फौज को आरजी सरकार को सौंप दी जायं।

दोनों फौजों की हैसियत के मसले पर भी बहस हुई जनरल कवाबा ने यह भी स्वीकार किया कि आ० हि० फौज मित्र या साथी फौज समझी जाय और उसका दरजा हर बात में बराबर हो। इसलिए यह तय पाया कि दोनों फौजों के अफसर जब आपस में मिलें, तो जिस अफसर का दरजा नीचा हो, चाहे वह किसी भी फौज का हो वह ऊंचे अफसर को पहले सलाम करे। दूसरा टेढ़ा सवाल यह था कि जब दोनों ओर के बरा-बर दरजे के अफसर मिलें तो कौन किसको पहले सलाम करे। जापानी कमांडर इन चीफ ने कहा कि जापानी फौज पहली होने से ऊंची है, इस लिए आ० हि० फौज का अफसर पहले सलाम करे। नेता जी ने इस पर सख्त ऐतराज किया और कहा कि इसका मतलब यह निकलता है कि हम अपना देश का निचला दरजा मान लेते हैं और हम इस पर कभी रजामन्द नहीं हो सकते। नेता जी ने कहा कि जब दोनों फौजों के बरा-बर दरजे के अफसर मिलें, तो दोनों को एक साथ सलाम करना चाहिए। इसे जापानियों ने मान लिया।

इस पर भी बहस हुई कि जब आजाद हिन्द फौज जापानी जनरल हेडक्वार्टर के मातहत लड़ रही हो, तो क्या उस पर जापानी फौजी कानून लागू होगा। जापानी कमान्डर इन चीफ ने नेता जी से कहा कि पूर्वीय एशिया की सब मित्र सेनाओं—मंचूरिया, नानकिंग, बर्मा और स्याम की फ़ौजों-पर जापानी-फ़ौजी क़ानून लागू है, इसीलिए आज़ाद हिन्द फौज पर भी उसका लागू होना बिलकुल मुनासिब है। इसको मान लेने का मतलब यह निकलता है कि जापानी फौजी पुलिस आ० हि० फौज के किसी भी अफ़सर या सिपाही को नेता जी से पूछे बिना गिरफ्तार कर सकती थी। नेता जी ने इसे मानने से इनकार कर दिया और कहा कि आ० हि० फौज का अपना फौजी क़ानून है और हम उसके अनुशासन

तथा क़ायदों में जापानियों को कभी दस्तन्दाज़ी करने नहीं दे सकते। जापानी सेनापति इस पर चकराया और बोला कि ऐसी बात पर फैसला देने का मुझे अख्त्यार नहीं। मैं टोकियो को लिखकर इस बारे में पूछूंगा, लेकिन, मुझे संदेह है कि वे भी शायद ही इससे मंजूर करें।' उसको नेताजी ने साफ कह दिया कि हमारे लिए यह उसूल की बात है और हम इस बारे में जापानियों की बात हरगिज नहीं मान सकते। नेताजी अपना काम अपने तरीके से करते रहे और टोकियो की सरकार को उनकी बात माननी पड़ गई।

आखिर में नेताजी ने सारी स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए कहा कि मैं और पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानी भावी हमलों को हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई मानते हैं; इसलिए हिन्दुस्तान की इज्जत का यह तकाजा है कि हिन्दुस्तानी खुद अपनी पूरी ताकत इसमें लगा दें और उसके लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानियां करें। मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान पर चढ़ाई में अगुवा आ० हि० फौज हो और हिन्दुस्तान की ज़मीन पर सबसे पहले गिरने वाला खून आ० हिन्द फौज के सिपाही का हो। नेताजी ने जापानी कमांडर-इन-चीफ से यह भी कह दिया कि मैंने अपने सिपाहियों से और हिन्दुस्तान के भीतर के अपने देश-वासियों से यह कह दिया है कि आ० हि० फौज उनको अंग्रेजों की गुलामी से छुड़ाने के लिए आरही है और मैंने अपने सिपाहियों को हुक्म दे दिया है कि हिन्दुस्तान की जमीन पर जो कोई भी, चाहे वह हिन्दुस्तानी हो या जापानी, लूट-मार करता हुआ पाया जाय, उसे देखते ही फौरन गोली से उड़ा दो। जापानी सेनापति ने इन बातों को पसन्द किया और वायदा किया कि मैं भी जापानी फौज को ऐसे ही हुक्म दे दूंगा। नेताजी ने जनरल कवाबा से यह भी कह दिया कि हिन्दुस्तान की जमीन पर सिर्फ हिन्दुस्तान का तिरंगा झंडा फहराने दिया जायगा। इस भेंट के अन्त में जापानी कमांडर-इन-चीफ़ ने नेताजी को यकीन दिलाया कि बर्मा में जापानी फौज रसद, दवाइयों और घायलों की देख-भाल वगैरह के

बारे में आ० हि० फौज को सब मुमकिन मदद देगी।

आ० हि० फौज और जापानी फौज के बीच सहयोग के इन बुनियादी उसूलों को तय करने के बाद नेताजी अपने हेडक्वार्टर को लौट आये और आ० हि० फौज की सब जरूरियात का इन्तजाम करने म लग गये। उन्होंने काम करने में न दिन देखा न रात और फौज के व पूर्वीय एशिया के खासकर बर्मा के रहने वाले सिविलियनों में एक नई रूह फूंक दी। बहुत से हिन्दुस्तानियों ने अपना सब कुछ आज़ाद हिन्द सरकार को दे दिया। इनमें से हबीब बताई और खन्ना के नाम खास तौर पर लेने लायक हैं। इन देशभक्तों ने कई लाख रुपये की जायदाद दे दी और अपने देश के वास्ते फ़कीर हो गए। इसके लिए उनको "सेवके हिन्द" के ख़िताब के सिवा और क्या मिला?

नेताजी अपने आदमियों की सुख-सुविधा, आराम, रहन-सहन, खान-पान और अस्पताल के इन्तजाम में बड़ी दिलचस्पी लेते थे और अक्सर खुले मैदान की ट्रेनिंग का मुआइना करके आया करते थे। इसी बीच उन्होंने आजाद हिन्द सरकार के दफ़्तर, व आजाद हिन्द फौज को मलाया से बर्मा आने का हुक्म दे दिया।

आ० हि० फौज मोर्चे की ओर

२४ जनवरी १९४४ को बर्मा में जापानी कमाण्डर इन चीफ़ जनरल स्टाफ़ के मुखिया जनरल काताकुरा ने नेताजी को रिपोर्ट दी, हिन्दुस्तान-बर्मा की सरहद पर अंग्रेजी फौजों पर जल्द ही होने वाली चढ़ाई की पूरी चालें समझाईं और यह भी बतलाया कि इस चढ़ाई में आ० हि० फौज को क्या काम सौंपा गया है। यह भेंट बिलकुल खुफ़िया थी, और इसमें सिर्फ तीन आदमी हाजिर थे, जनरल काताकुरा, नेता जी और मैं। नेताजी की बातचीत से मालूम होता था कि वे फौजी हुनर बहुत अच्छी तरह समझते थे। उनके कुछ सुझाव जापानी सेनापति को बहुत पसन्द आये और बाद को जापानी जनरल हेडक्वार्टर ने भी

मान लिया । इस भेंट में जनरल काताकुरा ने बतलाया कि जापानियों का इरादा फौजों की चढ़ाई के साथ ही कलकत्ते पर भारी बमबारी करने का है । नेता जी ने इसकी मुख़ालिफ़त करते हुए कहा कि अगर कलकत्ते पर फौजी और सिविल जगहों का खयाल किये बिना अन्धाधुन्ध बमबारी की जाय, तो उससे लोगों को बड़ा डर व नुक़सान होगा और मुझ पर से हिन्दुस्तानियों का विश्वास उठ जायगा । जापानी नेताजी की बात मान गये ।

पूरी योजना के लिए नेता जी से मंजूरी मिल जाने पर नं. १ रेजीमेंट (सुभाष ब्रिगेड) को सिर्फ़ मैदान में लड़ाई लड़ने के मतलब से बर्मा में जापानी जनरल हेडक्वार्टर (जो कि "मोरी बुताई" कहलाता था) के मातहत कर दिया गया ।

२७ जनवरी १९४४ को मैं जापानी कमांडर इन चीफ़ से जाकर मिला और लड़ाई के लिए कूच करने को उससे आख़िरी विदा ली । जापानी सिपहसालार ने मुझसे कहा कि तुम्हारा ब्रिगेड (सुभाष ब्रिगेड) आ० हि० फौज का पहला बड़ा लड़ने वाला दल है जो लड़ाई पर जारहा है । उस पर सबकी नज़र होगी और वे देखेंगे कि आ० हि० फौज जापानियों के बराबर सख्तियां सह सकती और लड़ सकती है कि नहीं । मैं आ० हि० फौज की लड़ने की लियाक़त की हर तरह से आज़माइश करूंगा । मैंने उसको यक़ीन दिलाया कि हम हर तरह की आज़माइश के लिए और सब सख्तियां बरदाश्त करने के लिए तैयार हैं । तब उसने नं. १ गोरिल्ला रेजीमेन्ट (सुभाष ब्रिगेड) के काम के बारे में तफ़सीलवार हुक्म दिया ।

नं. १ ब्रिगेड को यह काम सौंपा गयाः—

(अ) नं. १ बटालिन (मेजर पी० एस० रतूड़ी की कमान में) प्रोम-टंगुप-मीग-क्याकटा-पलेटवा के रास्ते से कलादान की घाटी में लड़ेंगे । वहां अंग्रेज लोग अपनी पश्चिम अफ्रीका की हब्शी पलटन लाये, जिसकी बड़ी तारीफ़ है ।

(आ) नं० २ और ३ बटालियन (मेजर रणसिंह और पदमसिंह की कमान में) मांडले और कलेवा के रास्ते से हाका और फालम के चिन की पहाड़ियों के इलाके में जायेगी।

यह सब फौज मेरे मातहत थी—

इसके बाद और व्यौरेवार हुक्म मेम्यो में उत्तरी वर्मा की जापानी कमान से मिलते रहने वाले थे। इसके साथ ही कुछ जापानी अफसर और नानकमीशन्ड अफसर हर बटालियन के साथ कर दिये गए। इन लोगों का काम था कि वे जापानी हेडक्वार्टर व आस-पास की दूसरी फौजी टुकड़ियों के लिए मध्यस्थ का, दुभाषिये का और जापानी भंडारों से रसद, गाड़ियों तथा दवाई वगैरह का इन्तजाम करें।

३ फरवरी १९४४ को नेताजी ने रेजीमेंट के सामने अपनी विदाई की तकरीर की। यह तकरीर पूर्वीय एशिया में दी गई उनकी सबसे अधिक जोशीली और हिला देने वाली तकरीरों में से थी। तीन हजार सिपाही सारे फौजी किट के साथ डेढ़ घन्टा तक निश्चल खड़े हुए पूरे ध्यान के साथ उनका भाषण सुनते रहे। नेताजी ने कहा "तुम ही मेरी बाजुओं की ताकत हो। तुम्हारी ही ताकत से मैं अपने हकों की हिफाजत करूंगा, और मैदान में तुम्हारी कारगुजारी पर ही सब कुछ निर्भर होगा। नेताजी ने चेतावनी दी कि आजाद हिन्द फौज का यही पहला बड़ा दल लड़ाई पर जा रहा है और जापानी लोग हर तरह से आपका इम्तहान लेंगे। इसलिए आप लोगों में से जो कोई उससे डरता हो, उसे मैं यहीं रह जाने की सलाह दूंगा। सिपाहियों ने आपको विश्वास दिलाया कि इस मैदान से पीछे रहकर या दुश्मन को पीठ दिखाकर हिन्दुस्तान के नाम को नहीं लजायेंगे।

४ फरवरी १९४४ को नं. १ बटालियन के आगे जाने वाले दल (एडवान्स पार्टी) रेलगाड़ी से प्रोम को और नं. २ व ३ बटालियन मांडले को रवाना हो गये।

नं. १ गोरिल्ला रेजीमेंट के अलावा बहुत-सी छोटी-छोटी टुकड़ियां

पहले से ही मोर्चे पर गई हुई थीं। वे ८–१० के जत्थों में जापानी फौजों के साथ लगा दी गई थीं। खबरें लाने, गिरफ्तार हुए कैदियों से पूछ-ताछ, करने में ब्रिटिश हिन्दुस्तानी फौजों में लाउड स्पीकरों और पैम्फलेटों के जरिये प्रचार करने का काम वे करती थीं। वे नीचे लिखे मुताबिक आ. हि. फौज के आला अफसरों के मातहत मुख्तलिफ हिस्सों में काम कर रहीं थीं—

(अ) अराकान क्षेत्र—शहीद कर्नल एल. एस. मिश्रा सरदारे जंग और मेजर मेहरदास सरदारेजंग के मातहत।

(आ) विशनपुर क्षेत्र—कर्नल एस. ए. मल्लिक सरदारेजंग के मातहत।

(इ) कोहिमा क्षेत्र—शहीद मेजर मघरसिंह और शहीद मेजर अजमेरसिंह के मातहत।

बाद को इन्होंनें लड़ने और खबरें लाने में बड़ी कारगुजारी दिखलाई। फरवरी १९४४ में अंग्रेजी ७वीं डिवीजन मांगडा बुथियांडांग की तरफ घिर गई और प्रायः खतम हो गई। यह खसूसन कर्नल एल. एस. मिश्रा और मेजर मेहरदास की मातहत दल की कार्रवाइयों की वजह से हुआ। यहां हरिसिंह को "शेरे हिन्द" तमगा मिला। यह तमगा अंग्रेजी विक्टोरिया क्रॉस के बराबर है। इस बहादुर सिपाही ने अकेले सात अंग्रेज सिपाहियों को मारा था। बिशनपुर की तरफ कर्नल एस. ए. मल्लिक के मातहत जत्थे ने बड़ी बहादुरी दिखाई और यह जत्था इम्फाल से सिर्फ दो मील रह गया था। कर्नल मल्लिक ने मनीपुर रियासत के जीते हुए हिस्से का इन्तजाम भी अपने हाथ में ले लिया था। कोहिमा की तरफ मेजर मघरसिंह के मातहत जत्थों ने बहुत अच्छा काम किया। इधर शहीद कप्तान गुरबचनसिंह, शहीद लेफ्टिनेन्ट सोहनलाल, कप्तान मुहम्मदहुसैन और लेफ्टिनेन्ट आसिफ ने बड़ी बहादुरी दिखलाई।

नं० १ बटालियन सुभाष ब्रिगेड के काम

आखिरी हुक्म पाकर बटालियन का अगला हिस्सा ४ फरवरी को रेल से, रंगून से प्रोम को रवाना हो गया। बटालियन का बड़ा हिस्सा ५ और ६ तारीख को मेजर पी. एस. रतूड़ी की कमान में रवाना हुआ। रेलवे लाइन और हवाई जहाजों से बम-वर्षा के कारण बहुत नुकसान पहुंचा था, फिर भी बटालियन बगैरह किसी भारी दिक्कत के पहुंच गईं। प्रोम से टौंगप तक का करीब १०० मील का रास्ता सिपाहियों ने पैदल चलकर तय किया और भारी सामान जापानी लारियों में ले जाया गया। टौंगप से म्योहौंग तक भी १५० मील पैदल चलना पड़ा और भारी सामान नावों से लाने के लिए छोड़ दिया गया। टौंगप में हमारे कैम्प पर दुश्मन के हवाई जहाजों से भारी बम-वर्षा हुई, जिससे १६ आदमी मर गये। हमारा सामान लाने वाली नावों पर दुश्मन के लड़ाकू हवाई जहाजों ने मशीनगनें चलाईं। आखिर में हमारी बटालियन क्याकटा में जमा हुई और मार्च १९४४ के मध्य में वहां बटालियन का अड्डा बनाया गया।

कुछ दिन बाद खबर मिली कि पश्चिमी अफ्रीकन हबशियों का एक पूरा डिविजन कलादान नदी के पूरब की ओर से किनारे-किनारे दक्खिन की ओर बढ़ रहा है और अपने पीछे सड़क बनाता जा रहा है। कलादान नदी के पूर्वी किनारे-किनारे जाने वाली इस सड़क को पश्चिमी समुद्र के किनारे से मिलाने के लिए एक और सड़क भी बन रही है। ये दोनों सड़कें कलादान गांव से उत्तर की ओर कुछ मील पर मिलेंगी। यह जगह टेटमा कहलाती है और यहां हब्शी लोग नदी पर पुल बनाने की कोशिश कर रहे हैं। मेजर रतूड़ी को पश्चिमी किनारे के अफ्रीकनों को नदी पार करने से रोकने का काम सौंपा गया।

मेजर पी. एस. रतूड़ी ३०० आदमियों को साथ लेकर चला, पर उसके टेटमा पहुंचने से पहले ही हब्शी लोग बड़ी तादाद में नदी पार

कर चुके थे और कलादान के पूरबी किनारे की पहाड़ियों में किलेबन्दी कर चुके थे। मेजर रतूड़ी ने फौरन धावा बोल दिया और घने बांस के जंगलों में होते हुए दुश्मन को घेर लिया और खतम कर दिया। फिर कलादान के किनारे-किनारे आगे बढ़ा। बालचरों से खबर मिली कि दुश्मन की एक और पूरी बटालियन एक पहाड़ी पर जमा हुई है। मेजर रतूड़ी ने दो चुनी हुई कम्पनियां लेकर रात के वक्त धावा बोल दिया। और ठीक दुश्मन के पड़ाव पर पहुँच गया। फिर इशारा पाते ही किरचें लेकर दुश्मन की खाइयों में कूद पड़े। घमासान किरचों की लड़ाई हुई और हमारे सिपाही "भारतमाता की जय" "नेताजी की जय" के नारे लगाते हुए खूब लड़े, न खुद पर दया चाही, और न दुश्मन पर दया की। आखिर जब दुश्मन ने देखा कि उनका सामना करने वाला जान हथेली पर लेकर लड़ रहा है, तो वह खाइयां छोड़ एक दम भाग खड़ा हुआ और नदी पार करने के वास्ते बेतहाशा अपनी नावों की तरफ दौड़ा। दुश्मन की बड़ी फौज भारी तोपों के साथ नदी के पच्छिमी किनारे पर पड़ाव डाले हुए थी पर हमारे सिपाही दुश्मन को इस तरह सस्ता छोड़ देना नहीं चाहते थे, उन्होंने भागते हुए दुश्मन का पीछा किया और नावों पर जोर से मशीनगनें चलाईं और कम-से-कम सोलह नावें डुबा दीं। तब नदी पार के दुश्मन ने हम पर तोपों से भी गोलाबारी शुरू की और हमारे पास उनका जवाब देने के लिए मशीनगनों और हाथ गोलों से बढ़कर हथियार नहीं थे। इसलिए हमारे १४ आदमी मरे और २२ घायल हुए। दिन निकलते-निकलते दुश्मन का एक भी आदमी पूरबी किनारे पर नहीं रहा और वे सब पच्छिमी किनारे पर भाग गये। ऐसा अन्दाज है कि इस लड़ाई में हमने दुश्मनों के २५० आदमियों को मारा या घायल किया और बहुत-सा सामान हथियार, गोला बारूद तथा बढ़िया खाना, जैसा हमें अरसे से न मिला था, लूट में मिला।

इस बीच जापानी कुमुक पहुंच गई और हम नदी के दोनों किनारों

पर आगे बढ़ने लगे। घमासान लड़ाई के बाद हमने ५० मील उत्तर को पलेटवा और उसके बाद डलेटमे ले लिये।

कुछ देर आराम करके हम फिर आगे चल दिये। डलेटमे से करीब ४० मील पच्छिम की ओर हिन्दुस्तान की सरहद दिखाई देती थी और हमारे सिपाही हिन्दुस्तान की पवित्र जमीन पर पहुँचकर तिरंगा कौमी झंडा गाड़ना चाहते थे। वे इसके लिए बेताब थे और आराम करना नहीं चाहते थे। अब मई का महीना शुरु हो गया था। हिन्दुस्तान की जमीन पर सबसे पास की ब्रिटिश चौकी मौडोक की थी। मेजर रतूड़ी ने जल्दी ही उस पर हमला बोलने का इरादा कर लिया। लगातार पीछा किये जाने और पीछे हटते रहने से अब तक दुश्मन बिलकुल घबरा गया था और हमारे सिपाही खूब जोश में थे। वे दुश्मन पर खूब गालिब हो गये थे।

रात के वक्त बिजली की तरह तेजी से मौडोक पर धावा बोला गया। दुश्मन अकचका गया और बहुत-सा सामान छोड़ कर भाग निकला। हमें बड़ी तादाद में रसद, आटा, घी, चीनी वगैरा और काफी हथियार व गोला-बारूद मिले। इनमें तीन मारटर भी थे, जिनकी हमें बड़ी जरूरत थी।

हिन्दुस्तान की सरजमीन पर आ. हि. फौज के पैर रखने का नजारा बहुत ही हृदय-स्पर्शी था। सिपाहियों ने चित लेटकर मातृभूमि की उस पवित्र जमीन को चूमा, जिसको आजाद करने के लिए वे आगे बढ़े थे। बड़ी खुशियों के साथ बाकायदा झंडा गाड़ने की रस्म अदा की गई और आ. हि. फौज का कौमी गीत गाया गया। वह गीत यह है:

सब सुख चैन की बरखा बरसे, भारत भाग है जागा।
पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंगा॥
चंचल सागर, विन्ध्य, हिमालय, नीला जमुना गंगा,
तेरे नित गुन गायें, तुझ से जीवन पायें, सब तन पायें आशा।
सूरज बनकर जग में चमके, भारत नाम सुभागा॥

जय हो, जय हो, जय हो—जय–जय–जय जय हो।
भारत नाम सुभागा।
सुबह सकारे पंख पखेरू, तेरे ही गुन गायें,
बास भरी भरपूर हवायें, जीवन में रस लायें,
सब मिलकर हिन्द पुकारें, जय आजाद हिन्द के नारे,
प्यारा देश हमारा।
सूरज बनकर जग में चमके भारत नाम सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो—जय–जय–जय जय हो।
भारत नाम सुभागा।
सबके दिल में प्रीत बसावे तेरी मीठी बानी।
हर सूबे के रहने वाले, हर मजहब के प्राणी।
सब भेदो फर्क मिटा के सब गोद में तेरी आ के।
गूथें प्रेम की माला।
सूरज बनकर जग में चमके, भारत नाम सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो—जय–जय–जय जय हो।
भारत नाम सुभागा।

मौडोक पर कब्जा करने के बाद उसके आसपास कई चौकियां बनाई गई। अब रसद का इन्तजाम बहुत मुश्किल से होने लगा। हमको सब रसद नाव के जरिये पलेटवा से लानी पड़ती थी, और जहाँ हमारा सप्लाई का अड्डा था वहां दुश्मन के हवाई जहाज रात-दिन हमला करने लगे।

इस वजह से और मौंगडा-बुथियाडांग की तरफ से अंग्रेजों के आने वाले हमले के डर से जापानी कमांडर ने पीछे हटने का इरादा किया और मेजर रतूड़ी को भी ऐसी ही सलाह दी। मेजर रतूड़ी ने अपने अफसरों को बुलाकर सब हालत समझाई, और दाईं तथा बाईं तरफ की जापानी फौजों के पीछे हटने के इरादे का हाल बतलाया। अफसरों

ने एक आवाज से कहा, "अगर जापानी पीछे हटना चाहते हैं, तो उन्हें पीछे हटने दो। हमें तो दिल्ली पहुंचने का हुक्म है और दिल्ली हमारे सामने की तरफ है। हिन्दुस्तान की जमीन पर कौमी झंडा गाड़कर हम उसे उखाड़ कैसे सकते हैं ?

हमें जहां कहीं दुश्मन मिला, हमने उसे हराया। अब हम उसके सामन पीछे कैसे हट सकते हैं ? जापानी पीछे हट सकते हैं, क्योंकि टोकियो उनकी पीठ की तरफ है। पर, हमारी मंजिल तो दिल्ली का लाल किला हमारे सामने है। हम पीछे नहीं हट सकते।"

मौजूदा रसद का हिसाब करके और फौजी हालत को देखकर मेजर रतूड़ी ने कौमी झंडे की हिफाजत के लिए कप्तान सूरजमल की कमान में एक कम्पनी मौडोक में छोड़ दी और बाकी फौज को सप्लाई के अड्डे के नजदीक हटा लेने का इरादा कर लिया। इस कम्पनी का वहीं डट रहना जान-बूझ कर खुदकुशी करने जैसा था। उनके सामने ही अंग्रेजी फौज थी। वह लगातार अपनी ताकत बढ़ा रही थी और जल्दी ही या देर से कई गुनी तादाद में उन पर हमला करने वाली थी। हमारे आदमियों ने हिन्दुस्तान की जमीन के कुछ हिस्से पर कब्जा कर लिया था और अब उस पर डटे रहने का पक्का इरादा कर लिया। जापानियों ने जोश देखकर उसकी तारीफ की और उनका साथ देने तथा उनके भाग्य में हिस्सा बटाने के लिए जापानी सिपाहियों की आधी कम्पनी उनके साथ ही छोड़ देने का इरादा कर लिया। ये जापानी सिपाही सीधे कप्तान सूरजमल की कमान में रखे गए। जापानी फौज की तवारीख में शायद यह पहला ही मौका था कि जापानी सिपाही एक विदेशी अफसर की मातहत रखे गए थे।

मेजर रतूड़ी, कप्तान सूरजमल और आ. हि. फौज के दूसरे अफसरों व सिपाहियों ने अपनी बहादुरी और कुरबानियों से जापानियों को यकीन दिला दिया कि जब अपने मुल्क की इज्जत और आजादी के लिए लड़ने का मौका हो, तो हिन्दुस्तानी दुनिया के किसी मुल्क के

सिपाही से बहादुरी में कम न थ। जापानियों को पहले यकीन न था कि आ. हि. फौज लड़ाई में जाकर उसकी सख्तियों को बरदाश्त कर सकेगी। लेकिन, अब उन पर इतना असर हुआ कि उन्होंने खुद अपने आदमियों को एक हिन्दुस्तानी अफसर के नीचे रखना मंजूर कर लिया। बर्मा का जापानी कमांडर इन चीफ नेताजी के पास गया, और उनके सामने सिर झुकाकर बोला "श्रीमान् हम गलती पर थे। आ. हि. फौज के सिपाहियों के बारे में हमारा खयाल गलत था। हमें अब मालूम हो गया कि वे भाड़ के टट्टू नहीं हैं, बल्कि सच्चे देशभक्त हैं।"

कप्तान सूरजमल और उसके बहादुर सिपाही मई से सितम्बर १९४४ तक मौडोक में रहे। इन दिनों प्रायः रोज अंग्रेजी फौजें उन पर हमला करती थीं, लेकिन वे एक बार भी एक कदम भी पीछे नहीं हटे। हमारे सिपाहियों के लड़ने का ढंग की एक मिसाल यहां दी जाती है।

"लवावा में आ. हि. फौज की एक चौकी थी। यहां दूसरे लेफ्टिनेंट अमरसिंह की मातहत सिर्फ २० सिपाही ही थे। एक दिन आठ बजे सवेरे दुश्मन की करीब १५० की एक टुकड़ी ने इस पर हमला किया। उनके पास भारी तोपें और छिपने के लिए धुआं छोड़ने के औजार थे। हमारे आदमियों के पास सिर्फ मशीनगनें और बन्दूकें थीं और गोलियां भी बहुत थोड़ी थीं। उन्होंने दुश्मनों के गोलों का कुछ जवाब न दिया और उनको पास आने दिया। जब दुश्मन नजदीक आ गया, तो उन्होंने अचानक उन पर जोर से गोलियां चलानी शुरू कर दीं, जिससे दुश्मन के कई सिपाही मरे और उसको पीछे हटना पड़ा। दोपहर के करीब दुश्मन ने फिर हमला किया। इस दफा हमला करने से पहले दुश्मन ने जोर से गोलाबारी की और चौकी के चारों तरफ धुआं छोड़ दिया। इस हमले का भी हमारे आदमियों ने ठंडे दिमाग से सामना किया और दुश्मन को पहले की तरह बहुत से सिपाही खोकर पीछे हटना पड़ा। उस दिन दुश्मन हमारी चौकी को ले लेने पर तुला हुआ मालूम

होता था, पर हमारे वीर भी उसको रोकनें पर तुले हुए थें और हर आदमी इसके लिए अपनी जान हथेली पर लिये हुए था। शाम को पांच बजे दुश्मन ने तीसरी बार फिर हमला किया। इस दफा दुश्मन ने पहले हमलों से ज्यादह तैयारियां करके हमला किया। हमले से पहले घंटें भर तक छः लड़ाकू हवाई जहाज वड़े-बड़े बम गिराते रहे और फिर मशीनगनों से हमारी खाइयों पर गोलियां बरसाते रहे। उन्होंने २० मिलिमीटर की गोलियां चलाईं, जो कि अक्सर टैंकों और (बख्तरबन्द गाड़ियों पर चलाई जाती हैं। इसके बाद तोपों से भारी गोलावारी की। दुश्मन ने सोचा कि इस भारी हमले से हमारी चौकी खतम हो चुकी है। इसलिए वह निडर होकर चौकी की तरफ वढ़ा चला आया। किन्तु परमात्मा हमारी तरफ था। इस सब बमबारी और गोलावारी से हमारा सिर्फ एक आदमी मरा। हमारे आदमियों ने गोलियां बिलकुल न चलाईं और दुश्मन जब बिलकुल पास आ गया, तो जोर से गोलियां चलानी शुरू कर दीं। दुश्मन ने सोचा कि उनका सामना कोई न करेगा। पर उसको एकदम पीछें हटने को लाचार होना पड़ गया। इतने में कप्तान सूरजमल भी, जो कुछ मील दूर था, ५० आदमियों की कुमुक लवावा ले आया। वहां आने पर उसने देखा कि बार-बार हमले होने पर भी उसके सिपाही हिम्मत नहीं हारे थें और उनमें जोश भरा हुआ था। कप्तान सूरजमल ने दुश्मन की लल-कार का जवाव देने और कुछ मील दूर उसके अड्डें पर जाकर धावा करने का इरादा किया। उसने दिन छिपने पर चुपके से ५० आदमियों के साथ जाकर दुश्मन के कैम्प पर धावा वोल दिया। दुश्मन इसके लिए विलकुल भी तैयार न था, और वह घबरा कर बिना कुछ देखें भाले इधर-उधर भाग गया। कैम्प में गड़बड़ मच गई। दुश्मन के कैम्प पर क़ामयावी के साथ हमला करके और काफी हथियार व गोला-बारूद लूटकर कप्तान सूरजमल अपनें कैम्प को लौट आया।

कप्तान सूरजमल के इस साहस भरे धावे से दुश्मन ऐसा डर गया कि बहुत दिनों तक हमको कोई तकलीफ न हुई।

सितम्बर १९४४ में इम्फाल की लड़ाई में नाकामयाबी के बाद नेताजी ने अपनी सब फौजों को वापस आने का हुक्म दिया। नं० १ बटालियन को रंगून लौटने का हुक्म हुआ। पहले तो उनको विश्वास ही न हुआ कि यह हुक्म नेताजी का था और उन्होंने उसे मानने से इन्कार कर दिया। फिर बाद को जब उन्हें यकीन हो गया कि नेताजी ने ही उन्हें वापस बुलाया है, तो वे रंगून जाने को तैयार हो गये। वे हर लड़ाई में जीते थे, फिर भी वापस जाने को मजबूर होने से उनका दिल टूट गया था। बटालियन नवम्बर के बीच में रंगून में इकट्ठी हुई।

लड़ाई में इस बटालियन का एक बड़ा बहादुर सिपाही कप्तान कबूलसिंह और ३० सिपाही शहीद हुए। लड़ाई में इस बटालियन को मलेरिया व पेचिश की बीमारी ने बहुत सताया और रंगून में पहुंचने के वक्त करीब-करीब सभी को मलेरिया सता रहा था।

नं० २ और ३ बटालियन (सुभाष ब्रिगेड) के काम

रेजीमेण्ट के हेडक्वार्टर की अगली पार्टियां और ये दोनों बटालियनें ४ और ५ फरवरी १९४४ को रंगून से ट्रेन से मांडले के लिए रवाना हुई। रास्ते में बहुत से रेल के पुलों को दुश्मन के हवाई जहाजों ने तोड़ दिया था। इसलिए बहुत जगह दूर-दूर तक पैदल चलना पड़ा।

मेजर महबूब अहमद और मेजर रामस्वरूप के साथ ५ फरवरी १९४४ को मोटर कार से रंगून से चल दिया और ८ फरवरी को मांडले पहुंचा। १० फरवरी को मैं उत्तर बर्मा की सब जापानी फौजों के कमांडर जनरल मुटागुची से मिलने मेमयो गया। उसने मुझे बताया कि शीघ्र ही शुरू की जाने वाली लड़ाई में मेरी

सेना को कौन-सा भाग अदा करना होगा। संक्षेप में उसकी योजना यह थी कि नं० १ रेजीमेण्ट छाका-फालम के मोर्चे पर जाकर वहां रक्षा-पंक्ति कायम करे। लुशाई ब्रिगेड और आईजाल ब्रिगेड नाम की अंग्रेजों की दो ब्रिगेड उस क्षेत्र में मोर्चे पर तैनात थीं। नं० १ रेजीमेंट के सुपुर्द यह काम किया जाने वाला था कि इन ब्रिगेडों को कलेवा की ओर बढ़ने से रोका जाय, जिससे टिड्डिम-ताम की ओर तैनात की गई जापानी सेनाओं को रसद पहुंचाने का रास्ता सुरक्षित बना रहे। (२) ढाका-फालम से लुगलेश की ओर आक्रमणात्मक कार्यवाही की जाय, जिससे अंग्रेज घपले में पड़ जायं और उनको यह पता न चले कि वास्तविक आक्रमण वहां किया जाने वाला है। मुझे यह भी भरोसा दिलाया गया कि जब जापानी फौजें बड़ा हमला करेंगी, तब हमें हिन्दुस्तान की सीमा में उस फौज के आगे रहने का मौका दिया जायगा।

सब हिदायतें लेकर मैं १२ फरवरी को मांडले लौट आया। तब तक नं० २ और ३ बटालियनों के करीब-करीब सब सिपाही मांडले पहुंच चुके थे। मांडले से परे बटालियन हमें पाकोकोम भेजते थे, जिससे नौचांग में बनाये जाने वाले फौजी अड्डे को पवाक-टिलिल-गनगाऊ-कान होकर रसद भेजी जा सके।

१४ फरवरी को मैं अपने ऊंचे अफसरों के साथ मांडले से कार से चलकर मुटैक पहुंचा। मुटैक में चिन की पहाड़ियों में लड़ने वाली जापानी डिवीजन का हेडक्वार्टर था। यह डिवीजन "यूमी" कहलाता था, जिसका अर्थ है "सफेद बाघ डिवीजन।"

आ. हि. फौज के सिपाही करीब ३०० के जत्थे में मांडले से कलेवा के लिए रवाना हुए। यह सफर उन्होंने रेल व मोटर से और पैदल चलकर तय किया। १६ फरवरी को मैं मुटैक पहुंचा और यूमी डिवीजन के जापानी कमांडर से मिला। नं० १ रेजीमेण्ट (सुभाष-ब्रिगेड) को इसी डिवीजन के साथ चिन की पहाड़ियों के इलाके में लड़ना था। जापानी कमांडर ने मुझको वहाँ की मुकामी हालत सम-

भाई और उस इलाके में अंग्रेजों की ताकत का अन्दाज बताया। उसके अनुसार चिन पहाड़ी में टिड्डिम में एक डिवीजन, आईजाल व लूंगलेठ में एक हिन्दुस्तानी ब्रिगेड थी। चिन और गुरखों में से खड़ी की गई लुशाई ब्रिगेड भी थी, जिसको गुरिल्ला लड़ाई के लिए इधर-उधर बखेर दिया गया था। हाका फालम में इन चिन गोरिल्ला सिपाहियों ने जापानियों का नाक में दम कर रखा था। वहां हाका और फालम इन दो जगहों में जापानियों की दो चौकियां थीं, जिनमें क्रमशः करीब ६०० और २०० जापानी सिपाही थे। जापानियों की दूसरी चौकियां फोर्ट हवाइट और काजी में थीं। अंग्रेजी की गुरिल्ला फौज की संख्या ३००० थी, जिनका सदर मुकाम रिमुआल में था, जो फालम से ३० मील पर था। हाका से ४० मील पर फालम में और उसके दक्षिण में ५० मील पर दक्षिण में शुरखवा में भी उनकी चौकियां थीं। आस-पास में छोटी-मोटी चौकियों का जाल बिछा था।

इस बात का भय था कि चिन लोग जापानियों से हाका और फालम छीनकर कलेवा फोर्ट ह्वाइट और कलेवा-तानू की जापानी रसद का रास्ता काट देंगे। आ० हि० फौज की नं० १ गोरिल्ला रेजीमेन्ट को यह काम सौंपा गया कि वह जापानियों से हाका और फालम की चौकियां लेकर संभाल ले और दुश्मन से उनकी हिफाजत करके जापानियों की रसद का रास्ता कटने न दें।

जापानी जनरल की राय थी कि अंग्रेज लोग फिर से बर्मा जीतने के लिए एक बड़ी चढ़ाई की तैयारी कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने इम्फाल और टिड्डुन में बहुत सामान और आदमी इकट्ठे किये थे और इम्फाल से तामो तक एक बढ़िया सड़क बनाई थी, जिसको वे टोकियो की सड़क कहते थे। जापानी जनरल ने बताया कि हमारा इरादा अंग्रेजों के हमला शुरू करने से पहले ही उन पर हमला करके और इम्फाल लेकर उनकी इन स्कीमों को गड़बड़ कर देने का है।

मैंने जापानी जनरल से कहा कि आ. हि. फौज को असली मोच

से दूर का इलाका सौंपा गया है, यह मुझे पसन्द नहीं। मैं चाहता हूं कि और मुझसे यह वायदा भी किया गया है कि हमको हिन्दुस्तान पर चढ़ाई में आगे रहने का मौका दिया जायगा। उसने मुझे जवाब दिया कि मुझको जनरल हेडक्वार्टर से हिदायत मिली है कि पहले आ. हि. फ़ौज को आजमाना चाहिए और इसलिए उसको मैं अलग मोर्चा सौंप रहा हूं। मुझको उसने यह चेतावनी भी दी कि उस मोर्चे पर कब्जा जमाये रखना शायद सबसे मुश्किल है। दुश्मन की ताकत की वजह से नहीं बल्कि इसलिए कि वह मुल्क बड़ा ऊबड़-खाबड़ है और वहां रसद का इन्तजाम होना बेहद मुश्किल है। नेताजी ने भी मुझे इस इम्तिहान के बारे में पहले ही चेतावनी दे दी थी और हमारे सिपाही, रास्ते में कितनी ही दिक्कतें आने पर भी, अपने जौहर दिखाने को उत्सुक थे। मैंने फिर भी जापानी जनरल से वायदा करा लिया कि ज्यों ही बड़ी चढ़ाई शुरू की जायगी, मेरे सिपाहियों को हिन्दुस्तान में बढ़ने में आगे रहने की इज्जत और मौका दिया जायगा।

मैंने अपने हेडक्वार्टर को लौटकर नं० २ बटालियन के कमांडर मेजर रामसिंह को जापानियों से फालम लेने के लिए एक जत्था भेजने का हुक्म दिया।

रेजीमेन्ट का अड्डा नौचांग (मीथा हाका) में कायम होने वाला था। मैं रेजीमेन्ट के हेडक्वार्टर के ऊंचे स्टाफ अफसरों के साथ २४ फरवरी को मीथा हाका पहुंचा। तब तक मेजर रामसिंह की मातहत नं० २ बटालियन के करीब ५०० आदमी वहां पहुंच चुके थे। बाकी ब्रिगेड छोटे-छोटे दलों में पीछे आ रही थी।

२५ फरवरी को मेजर रामसिंह ने लेफ्टिनेंट सिकन्दर खां के मातहत अवाता कम्पनी के करीब १०० आदमियों को जापानियों से फालम लेने के लिए भेज दिया। मीथा हाका पहुंचने पर मुझे मालूम हुआ कि फ़ालम में रसद नहीं है, और हाका और फालम में रसद पहुंचाने के लिए हमें खुद इन्तजाम करना पड़ेगा। मीथा हाका के रेजीमेंट

के हेडक्वार्टर में जापानी लारियां सामान पहुंचा जाती थीं। यहां से हाका करीब ८५ मील और फालम ५० मील था और इतनी दूर रसद ले जाने का इन्तजाम हमें खुद करना था। यह सब पहाड़ी रास्ता था और हमारे पास रसद ले जाने के लिए किसी तरह की गाड़ियां या जानवर न थे। जापानी फौजों को खच्चरों या कुलियों के जरिये रसद पहुंचाने का इन्तजाम था, लेकिन हमें जवाब मिला कि आ. हि. फौज का रसद ले जाने के लिए कोई इन्तजाम नहीं हो सकता। इसलिए हमको सामने के मोर्चे पर लड़ने वाले अपने साथियों को रसद अपने सिरों पर ढोकर पहुंचानी पड़ी।

हाका और फालम का इलाका बिलकुल पहाड़ है। हाका ६००० और फालम ७००० फीट की ऊंचाई पर है। हमारे बहादुर सिपाही सामने के मोर्चे के अपने साथियों को भूखों मरने से बचाने के लिए अपने सिरों पर भारी-भारी बोझा ढोकर उन ऊंची पहाड़ियों पर चढ़कर रसद पहुंचाते थे। रसद भी बेहद मामूली थी। सामने के मोर्चे के सिपाही को हम मुश्किल से सिर्फ चावल तथा नमक पहुंचा सकते थे, और कभी-कभी यह भी नहीं मिलता था। चीनी, दूध, चाय और गोश्त तो हमारे आदमियों को शायद ही कभी देखने को नसीब होते थे।

बाकायदा रसद पहुंचाने के लिए हमने आठ-आठ मील की दूरी पर छः चौकियां बनाई थीं। एक चौकी से दूसरी चौकी तक सिर पर ढोकर रसद ले जानी पड़ती थी। हर आदमी को करीब १६ मील रोज चलना पड़ता था। अपने आदमियों के साथ ऐसा बरताव होते देख बड़ा दुःख होता था। हम सबने समझ लिया था कि इस तरह के सूखे भोजन पर रहकर आहिस्ता-आहिस्ता घुल-घुलकर हम जरूर मर जायंगे। जापानी अगर चाहते तो इस बारे में हमारी मदद कर सकते थे। पर उन्होंने कुछ नहीं किया और मेरी राय है कि उन्होंने जान-बूझकर ऐसा किया। उन्होंने हमारे आदमियों का जोश व पक्का इरादा देखा था और यह समझ लिया था कि वे जापानियों की किसी बेजा हरकत को

बरदाश्त नहीं करेंगे। दरअसल फील्ड मार्शल तेरोंची ने बहुत पहले ही सिंगापुर में नेताजी से कहा था कि जापानी नहीं चाहते थे कि आजाद हिन्द फौज की बड़ी-बड़ी पलटनें मोर्चे पर जायं और अब, जब कि वे मोर्चों पर पहुंच गईं, तो जापानी लोग उनके रास्ते में भारी रुकावटें डालकर उनका दिल तोड़ देना व तन्दुरुस्ती बरबाद कर देना चाहते थे। वे आजाद हिन्द फौज को बे-दम करके नेताजी से कहना चाहते थे कि आपकी फौज लड़ाई की कठिनाइयों का सामना नहीं कर सकती। पर नेताजी ने हमारे सिपाहियों को पहले से ही आगाह कर दिया था और सिपाहियों ने नेताजी से वायदा कर लिया था कि हम हर कठिनाई का सामना करेंगे। उनके सामने सिर्फ एक रास्ता था. "करो या मरो।" वे बिना किसी शिकायत के अपना काम करते गये। दरअसल जापानी लोग हमारा बड़ा कड़ा इम्तिहान ले रहे थे।

जब अवल कम्पनी के आदमी फालम पहुंचे, तो वे भारी मशीनगनें, हल्की आटोमैटिक बन्दूकें, रिजर्व गोला-बारूद, अपने सब कपड़े व बिस्तर और बीस दिन की रसद सब अपने सिरों पर ढोकर ले गये। हर सिपाही और अफसर भी औसतन ४४-५० सेर बोझा अपनी पीठ पर ढोकर ले गया।

फालम पहुंचते ही उन्होंने वहां की जिम्मेदारी जापानियों से ले ली। उस वक्त फालम के आस-पास ६०० अंग्रेज और चिन गोरिल्ला सिपाही थे। हमने चिन गोरिल्ला (छापामार) सिपाहियों के बारे में बहुत-कुछ सुन रखा था और इन्साफन मुझे यह कहना चाहिए कि उन्होंने जापानियों को जंगल की लड़ाई में अपनी होशियारी का कायल कर लिया था। कई दफा उन्होंने कामयाबी के साथ जापानी रसद ले जाने वाले दलों पर छापा मारा था और कई जापानी सिपाहियों को उठाकर ले गये थे। उनमें से एक मेजर मैनिंग से तो जापानी लोग थर-थर कांपते थे। यह अंग्रेज सिपाही छापामार लड़ाई में बड़ा होशियार था और लड़ाई शुरू होने से कई साल पहले से चिन की पहाड़ियों में रहता

था। वह वहां के लोगों से खूब वाकिफ था, उसने एक चिन औरत से शादी कर ली थी और उन लोगों की बोली अच्छी तरह जानता था। इसलिए चिन पहाड़ियों के लोग दिल खोल कर उससे सहयोग करते थे और हमारी फौजों के बारे में पूरी इत्तला उसको देते रहते थे।

अवल कम्पनी का काम आसान न था। मैं फ़ालम में कुछ ज्यादह सिपाही रखना चाहता था, पर रसद की दिक्कत की वजह से नहीं रख सकता था। इसीलिए फालम में सिर्फ १०० आदमी रखे जा सके।

वहां सख्त सरदी थी और हमारे आदमियों के पास सिर्फ एक गरम कुरता और एक पतला सूती-कम्बल था। वे सारी रात आग तापते बैठे रहते थे, क्योंकि रात को सरदी की वजह से नींद नहीं आती थी। हमारे कई सन्तरी, जिनको ऊंची चोटियों पर पहरा देना पड़ता था, सरदी व ठंडी हवायें बरदाश्त नहीं कर सके और उन्होंने अपने फर्ज के लिए अपनी जान दे दी। दवाओं और दवा-दारू करने वालों की भी बड़ी कमी थी। इस कम्पनी में एक नायक और दो नर्स का काम करने वाले सिपाही ही बीमारों की देख-भाल का सब काम करते थे। सबके बूट बहुत फट गये थे और कुछ के पास तो बूट थे ही नहीं। कई महीने की कड़ी जिन्दगी बिताने से सबके कपड़े तार-तार हो रहे थे और नये मिलने की कोई उम्मीद न थी। इतना सब कुछ होते हुए भी लोगों के दिल जोश से भरे थे। लेकिन उनकी तन्दुरुस्ती तेजी से गिरती जा रही थी, खास तौर पर मीथा हाका के आस-पास के मैदानों के फौजियों की मलेरिया की वजह से। वहां ६० फीसदी आदमी अस्पताल में थे। मीथा हाका काबा की घाटी के बीच में है। इस घाटी को अंग्रेज लोग "मौत की घाटी" कहते हैं। इस घाटी में हमारे आदमी बिना मच्छर-दानियों के रहते थे। पर, उन्होंने जिस काम का बाड़ा उठा लिया था, उसको नहीं छोड़ा।

११ मार्च को मैं डिवीजन के हेड क्वार्टर में हेंगोन को गया और वहां मेजर फुजिवारा से मिला। इसी जापानी अफसर ने हमको फरेर

पार्क में कप्तान मोहनसिंह के हाथों सौंपा था। उस वक्त वह उत्तरी बर्मा में खबरों के महकमे का अफसर था। उसने मुझे बतलाया कि जापानियों ने आजाद हिन्द फौज की कुछ टुकड़ियों के साथ टिड्डिम पर हमला करके उसे घेर लिया है। मैंने मेजर फुजिवारा से कहा कि जापानी कमांडर-इन-चीफ ने मुझसे वायदा किया है कि मुझको हमले में आगे रहने का मौका दिया जायगा। मैंने इसरार किया कि मेरी ब्रिगेड के कुछ सिपाहियों को इस हमले में शामिल होने का मौका दिया जाय। उसने मेरी बात मान ली और नं० ३ ब्रिगेड को, जो कलेवा में पड़ाव डाले हुए थी, बुलाने को कहा। मैंने रेजीमेंट की कमान के दूसरे अफसर कर्नल ठाकुरसिंह को टेलीफोन करके जल्दी-से-जल्दी पलटन कैगोन में लाने को कहा। वे रात-भर चलते रहे और दिन निकले तक २० मील तय करके पहुंच गये। उनको फोर्ट ह्वाइट पहुंचकर टिड्डिम पर हवला करने का हुक्म मिला, पर उनके वहां पहुंचने से पहले ही टिड्डिम ले लिया गया था।

१७ मार्च को मुझे खबर मिली कि फालम से ४० मील पच्छिम को कलनखुवा के इलाके में दुश्मन का एक बड़ा जत्था है। मैंने लेफ्टिनेन्ट सिकन्दर खां को फौरन अपनी कम्पनी के साथ जाकर हमला करने का हुक्म दिया। मैंने उसको हिदायत दी कि दुश्मन की फौजें अगर हिन्दुस्तानी हों, तो पहले गोली न चलाना, बल्कि उनसे कहना कि हमसे आकर मिल जाओ और हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ो। अगर वे पहले गोली चलायें तभी उनपर गोली चलाना। सिकन्दर खां अवल कम्पनी के ८० आदमी लेकर १९ मार्च की रात को चल दिया। सारी रात ऊंची-नीची पहाड़ियों पर चलकर वे सवेरे जोमुअल नामी गांव में पहुंचे और कुछ आराम के लिए ठहरे। चारों तरफ सन्तरी तैनात कर दिये गए। कुछ देर बाद एक सन्तरी ने आकर खबर दी कि दुश्मन का लड़ने वाला एक पतरौल पास आ रहा है। सिकन्दर खां ने फौरन उस पर छापा मारकर उसको गिरफ्तार करने या खतम कर देने का

इरादा कर लिया। दुश्मन को सपने में भी हमारे उधर होने की खबर न थी। वह हमारे जाल में फंस गया। सिकन्दरखां ने उछल कर दुश्मन के कमांडर की छाती पर रिवालवर तान दिया, तब उसने और उसके सब सिपाहियों ने हथियार डाल दिये। हमने लुशाइ ब्रिगेड के एक अफसर तथा २४ सिपाहियों को गिरफ्तार कर लिया और उनके साथ हमें हथियार और सामान भी मिला।

इन कैदियों से मालूम हुआ कि मशहूर गोरिल्ला लड़ाकू मेजर मैनिंग भी पास ही हैं और दुश्मन के दो मजबूत दस्ते, एक लुशाइ ब्रिगेड का और दूसरा पंजाबियों का, फालम के रास्ते दोनों तरफ से बढ़ते चले आ रहे हैं। सिकन्दरखां ने मेजर मैनिंग को जिन्दा पकड़ने और दुश्मन की फालम पर चढ़ाई से पहले ही खुद ही चढ़ाई करने का इरादा कर लिया।

मेजर मैनिंग उस वक्त नीचे नाले में था। लेफ्टिनेंट सिकन्दरखां ने घात लगाई और तब एक कैदी से उसने कहलवाया कि जहां ये लोग थे, वहां वह आवे। नाले के आदमियों को पहली घात का कुछ हाल मालूम न था, इसलिए मैनिंग कुछ भी शुबहा किये बिना आगया। उसका अरदली उसके आगे था। अरदली एक मोड़ पर मुड़ते हुए चुपचाप पकड़ लिया गया, पर जब मैनिंग नजदीक आया, तो सिकन्दरखां से न रहा गया। वह उस पर कूद पड़ा और रिवालवर तानकर उससे हथियार डालने को कहा। मैनिंग ने अपनी बन्दूक चलाई। सिकन्दर ने रिवालवर चलाया लेकिन गोली खाली गई। पास रखी हुई एक ब्रेनगन ने भी बदकिस्मती से काम नहीं दिया। तब मैनिंग अपनी बन्दूक छोड़कर भाग गया। सिकन्दरखां ने उसका पीछा किया, लेकिन मैनिंघ बच निकला। तब लेफ्टिनेंट सिकन्दरखां ने दुश्मन के आदमियों पर हमला करके उनको कई मील पीछे खदेड़ दिया। दुश्मन डर कर जल्दी से पीछे हट गया और उसके बाद बहुत दिनों तक उसने फालम की तरफ बढ़ने का नाम भी न लिया। २२ मार्च को

सिकन्दरखां सब कैदियों, हथियार और गोला-बारूद के साथ फालम को लौट आया। उसने अपना एक भी सिपाही नहीं खोया। इस बीच फालम में थोड़ी-सी रसद जमा करके रखी गई और अब हाका की जिम्मेदारी संभाल लेने के लिए थोड़ी-सी पलटन वहां भेजी जा सकती थी।

२८ मार्च १९४४ को नं० २ बटालियन की परवाना कम्पनी लेफ्टिनेंट अमरीकसिंह की कमान में मीठा हाका से फालम पहुंची। उसके सब सिपाही भारी मशीनगनें, रिजर्व गोला-बारूद और एक महीने की रसद अपनी पीठ पर ढोकर लाये। धान के खेतों में पकड़े हुए कुछ भैंसों से भी बोझा ढोने में मदद मिल गई।

फालम से हाका की सड़क पर, जो करीब ३५ मील की है, दुश्मन छापामारों की हमेशा नजर रहती थी। उन्होंने सड़क से करीब १० मील दूर एक गांव में अपना अड्डा बना रखा था। जापानियों ने शायद अपनी ताकत कम समझ कर इस अड्डे पर कभी हमला नहीं किया था। करीब १५० जवानों की परवाना कम्पनी ३० मार्च को फालम से हाका को रवाना हुई। मैं भी उसके साथ था। अगले दिन मुझे खबर मिली कि पास के गांव के अड्डे से दुश्मन हम पर हमले की तैयारी कर रहा है। मैंने दुश्मन से पहले ही उस पर हमला कर दिया और लेफ्टिनेंट लहनासिंह को कुछ सिपाहियों के साथ भेजा। लहनासिंह ने रात के वक्त दुश्मन के गांव को घेर लिया और कड़ी लड़ाई के बाद उसे उसकी मांद से मार भगाया। हमें बढ़िया रसद काफी तादाद में लूट में मिली। २ अप्रैल को हमने हाका जापानियों के हाथ से ले लिया और जापानी फालम को और वहां से टिड्डिम को लौट गये। हाका की हालत फालम से भी खराब थी। रसद का इन्तजाम बड़ा मुश्किल था। आसपास के दुश्मनों की ताकत को देखते हुए तो वहां बड़ी पलटन रखनी चाहिए थी और रसद की दिक्कत को देखते हुए वहां कम-से-कम सिपाही रखने चाहिए थे, क्योंकि हाका रसद के अड्डे से ८५

मील था। इसलिए हमें (अ) बड़ी पलटन रखकर उस को भूखों मारना या (ब) छोटी पलटन रखकर उसे दुश्मन के हाथों खतम करवाना; इन दोनों जोखिमों में से एक चुन लेनी थी। अफसरों से सलाह करके छोटी पलटन रखने का ही फैसला हुआ। हाका ७,००० फीट ऊंचा था। इसलिए वहां सख्त सरदी थी। हमारे कुछ सिपाहियों को तो ८,००० फुट ऊंची जगहों पर चौकियां बनाकर रहना पड़ता था।

मैं इन चौकियों का मुआइना करने गया, तो उनके कमाण्डरों से खाने के बारे में पूछा। उन्होंने जवाब दिया कि हमें काफ़ी रसद मिल रही है। रसद पहुँचाने की दिक़्क़त की वजह से हमें ७ छटांक रोज़ाना रसद देना भी मुश्किल हो रहा था। इसलिए यह जवाब सुनकर मुझे अचरज़ हुआ। कैम्प लौटने पर मुझे मालूम हुआ कि उन लोगों को दो दिन से ठीक खाना नहीं मिला था, और वे लिंगरा नामी एक पहाड़ी घास पर गुज़र कर रहे थे। ऐसे-ऐसे वाक़ये सैकड़ों दफ़ा हुए हैं। हमारी लाइनों से कुछ ही मील पर अंग्रेज़ों के हवाई जहाज़ अपनी पलटनों के लिए छतरियों के ज़रिये रसद गिराते रहते थे। हमारे सिपाही जानते थे कि अच्छी रसद कहां मिल सकती है। उन्होंने काफ़ी रसद न मिलने की शिक़ायत कभी नहीं की। उनकी शिकायत यही रहती थी कि उनको अंग्रेज़ों की चौकियों पर हमला करके रसद लूट लाने के काफ़ी मौक़े नहीं दिये जाते।

हाका के मोर्चे पर फ़ालम की बनिस्वत दुश्मन की तादाद ज़्यादा थी और बहुत-सी चौकियां थी। हाका के आसपास दुश्मन के क़रीब ७,२००० छापामार थे, जब कि परवाना कम्पनी में सिर्फ़ १५० सिपाही थे।

१४ अप्रैल को हमारी क्लंग क्लंग की चौकी पर दुश्मन ने बहुत जोरों की बम-वर्षा की। हाका कैम्प में जैसे ही गोली चलने की आवाज सुन पड़ी, कप्तान अमरीकसिंह एक जबरदस्त पतरौल साथ में लेकर दुश्मन की खोज में निकल पड़े। दुश्मन इतना पीछे भाग गया कि हमारा कोई

आदमी उनको देख भी न पाया। १६ अप्रैल को उसने तैयारी के साथ फिर इस चौकी पर हमला किया। उसके फौजियों की संख्या एक सौ होगी। हमारी चौकी पर केवल २० आदमी थे। उसके पास तीन मार्टर और मशीनगनें भी थीं। उन्होंने हमें घेर लिया और हमारी रक्षा-पंक्ति के ५० गज पास तक आ पहुंचे। लेफ्टिनेण्ट लहनासिंह यहां की कमान पर थे। परिस्थिति को विकट होती देखकर उसने दुश्मन पर हमला करने का निश्चय किया। दस साथियों को पीछे छोड़कर और दस को साथ लेकर उसने सीधा उस चोटी पर हमला बोल दिया, जिस पर दुश्मन ने मशीनगन चढ़ा रखी थी। इस पर कब्जा करके उसने उलटी गोलियां दागनी शुरू कर दीं। दुश्मन के पैर उखड़ गये और पीछे भागने के सिवा उसका और चारा न था। लेफ्टिनेण्ट लहनासिंह ने दस मील तक उसका पीछा किया और रुककर सामना करने के लिये उनको ललकारा। पर, दुश्मन भागता ही चला गया और उसने लड़ाई का मौका आने ही न दिया।

हमने कमाण्डर कप्तान अमरीकसिंह से कह दिया था कि हाका की हिफ़ाज़त करने का सबसे अच्छा तरीक़ा दुश्मन पर लगातार हमले करते रहने का है, जिससे कि उसे हमले करने का मौक़ा न मिले और हमेशा बचाव में ही फंसा रहना पड़े। इस तरीक़े ने ख़ूब काम दिया। यह ढंग आसान नहीं था। शुरू-शुरू में दुश्मन ने ख़ूब सामना किया।

३० मार्च को मेजर महबूब अहमद टिड्डिम की तरफ़ लड़ने वाली हमारी पलटनों का मुआइना करने गया। उसने देखा कि टिड्डिम लेने के बाद जापानियों ने वहां हमारे सिपाहियों को सड़क चौड़ी करने के काम पर लगा दिया था। हिन्दुस्तानी सिपाहियों का कमाण्डर एक छोटा अफ़सर था उसने यह काम करना मंजूर कर लिया। पर मेजर महबूब जब वहां पहुंचा, तो उसने उन सिपाहियों को यह काम बन्द करके रेजीमेण्ट के अड्डे पर लौटने का हुक्म दिया। उसने इस मामले की पूरी रिपोर्ट मुझे भेजी। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। मुझे जापा-

नियों की नेकनीयती पर इतमीनान न था। उस तारीख़ को मेरी डायरी में लिखा है, "रिपोर्ट सुनकर दुःख हुआ.........जापानी लोग एशिया के मुल्कों से कहते हैं कि हमसे मिलकर रहो, इससे हम तुम दोनों ख़ुश-हाल होंगे। मुझे अचरज है कि इस एकतरफ़ा सहयोग का क्या नतीजा होगा!"

इस समय बाच अप्रैल में दोनों पक्ष एक दूसरे को हराने की पूरी कोशिश कर रहे थे। दुश्मन हाका लेने के लिए फौज इकट्ठी कर रहा था। मैंने भी अपनी ताक़त बढ़ा ली थी। दोनों तरफ़ से यह कोशिश थी कि पहले हम ही हमला करें।

२३ अप्रैल को मैं दुश्मन की चौकियों पर हमला करने के लिए देख-भाल करने के वास्ते कुछ सिपाहियों को साथ लेकर गश्त लगाने गया। हम बहुत होशियारी से आगे बढ़े और दुश्मन के बहुत पास पहुँच गये। अचानक हमें ख़बर मिली कि दुश्मन का एक मज़बूत गश्ती पतरौल हमारी तरफ़ बढ़ा आ रहा है। मैंने अच्छा मौक़ा देखकर लेफ्टि-नेएट लहनासिंह को उस पर छापा मारने का हुक्म दिया। दुश्मन पर अचानक हमला करके हमने कुछ को मार डाला, कुछ को गिरफ्तार कर लिया और इस तरह सारे पतरौल को ख़तम कर दिया। ख़ूब गश्त लगा-लगा कर हमने दुश्मन को सारे मोर्चे पर से अपनी चौकियों को लौट जाने को मजबूर कर दिया।

मैंने नेताजी को चिट्ठी लिखी थी कि हमको इम्फाल पर हमला करने का हुक्म दिया जाय। उसके जवाब में २८ अप्रैल १९४४ को हमें इत्तला मिली कि आ० हि० फौज का नं० १ डिवीज़न, जिसमें आज़ाद और गांधी ब्रिगेड थे, इम्फाल पर हमला कर रहा था। और नं० १ सुभाष ब्रिगेड को जल्दी-से-जल्दी ब्रह्मपुत्र के पार जाने के लिए तैय्यार रहना चाहिए। मुझे ख़बर मिली कि चन्द घंटों में ही इम्फाल लिया जाने वाला है। और हमारे सिपाही कोहिमा से ब्रह्मपुत्र पार हिन्दुस्तान में जाने के हुक्म का बेताबी से इन्तज़ार कर रहे हैं।

१० मई १९४४ को मैंने कई कमाण्डरों को क्लंग क्लंग की ब्रिटिश चौकी पर हमला करने का हुक्म दिया। यह चौकी हाका से करीब २० मील थी। वहां जाने के लिए एक तंग पहाड़ी रास्ता था और उस पर उस चौकी से खूब हमला किया जा सकता था। इसलिए इस चौकी पर हमला करना नामुमकिन था और वहां अंग्रेजी फौज छापा मारा करती थीं। हमें यह भी ख़बर मिली कि वहां रसद ख़ूब जमा है। जापानी उस पर हमला नहीं कर सके थे और मेरे साथ के जापानी अफ़सर भी मुझसे यह कहने आये कि क्लंग क्लंग पर हमला न करना, क्यों उस पर बग़ैर तोपों और हवाई जहाज़ों की मदद के हमला नहीं हो सकता।

१२ अप्रैल को मैं क्लंग पर हमला करने के लिए तैनात अफ़सरों को उस इलाक़े की गश्त करने के लिए ले गया। उस दिन हम २८ मील का चक्कर लगाकर रात को हाका लौट आये। शाम को मुझे ख़बर मिली कि फ़ौरन जापानी डिवीज़न के हेडक्वार्टर इण्डायंजी में आकर रेजीमेन्ट को सौंपे गये नये काम के बारे में हुक्म ले लो। हाका से ९० मील पर नौचांक पर स्थित तीसरी बटालियन को मैंने टेलीफोन पर हुक्म दिया कि वह तुरन्त उखूल चली जाय। १४ मई को मैं मेजर रामस्वरूप के साथ हाका से चल दिया। दो दिन से कुछ अधिक समय में हमने ८९ मील पैदल तय किये।

हाका से रवाना होने से पहले मैंने हुक्म दे दिया कि मेजर महबूब अहमद की निगरानी में क्लंग-क्लंगपर हमला किया जाय। हाका पर धावा करने वाली पार्टी १४ मई की शाम को हाका से चली। क्लंग क्लंग की हिफाजत के लिए रास्ते में अंग्रेजों की एक और चौकी थी। दिन छिपे पर इस पर हमला किया गया और आसानी से वह ले ली गई। उसके बाद रात भर चलकर सवेरे ४ बजे क्लंग क्लंग के करीब पहुँचे। मेजर महबूब अहमद ने पहले तो क्लंग क्लंग को चारों तरफ से घेर लेने की कोशिश की, पर ऊँची चट्टानों की वजह से ऐसा करना नामुमकिन पाया

गया। इस चौकी पर जाने वाला तंग रास्ता चौकी पर की बन्दूकों से अच्छी तरह महफूज किया गया था। स्थिति बड़ी बेढब थी। तब महबूब अहमद ने सामने से ही हमला करने का फैसला किया। वह आठ-दस आदमियों को और कप्तान अमरीकसिंह शहीदे-भारत को अपने साथ लेकर एक-एक इंच करके आहिस्ता-आहिस्ता खड़ी पहाड़ी पर चढ़ने लगा। उनकी खुश किस्मती से तब चांद भी निकल आया और रास्ता साफ दिखाई देने लगा। यह बड़े खतरे का काम था और जरा-सा भी पैर फिसलने से कई सौ फीट नीचे खड्ड में गिरने पर उनकी हड्डियों का भी पता न लगता।

उनकी खुशकिस्मती से दुश्मन को उधर से उनके आने का गुमान भी न था क्योंकि उसने किसी का उस तरफ से हमला करना नामुमकिन समझ रखा था। बहुत दूर तक खड़ी चढ़ाई के बाद वे ठीक दुश्मन की खन्दकों तक पहुंच गये। उनके पीछे ही उनके साथी आ रहे थे। चढ़ाई का सबसे कठिन हिस्सा तो अब पूरा हो गया था। ऊपर चढ़ते ही दुश्मन ने उनको देख लिया और जोर से गोलियां चलानी शुरू कीं। हमारे आदमियों ने भी, बचाव के लिए आड़ में खड़े होकर गोलियों से गोलियों का जवाब दिया। पास ही हमारी मशीनगनें थीं, उन्होंने हमारे आदमियों की मदद के लिए फायर किया। हमारी मशीनगनों के अचूक निशाने से दुश्मन की बंदूकें ठंडी पड़ गईं और कप्तान अमरीकसिंह की पार्टी और आगे बढ़ सकी। पर थोड़ी ही देर बाद पास की दूसरी खन्दकों से दुश्मन ने जोर से बन्दूकें और मशीनगनें चलानी शुरू कीं। तब कप्तान अमरीकसिंह ने दोनों हाथों में हथगोले लेकर अपने आदमियों के साथ "जयहिन्द" के नारे से आसमान गुंजाते हुए सीधे दुश्मन की खन्दकों पर धावा बोलकर उसका दिल दहला दिया। उसने दोनों हथगोले चौकी पर फेंककर उसको हमेशा के लिए बरबाद किया। अब दुश्मन का बाहरी घेरा पार किया जा चुका था और कैम्प के अन्दर लड़ाई हो रही थी। घमासान लड़ाई के

इलाके की जापानी पलटनों पर बड़ा दबाव पड़ रहा था और उन्हीं की मदद के लिए जापानियों ने नं० १ रेजीमेन्ट को कोहिमा जाने का हुक्म दिया। हमारे सिपाही इस नये काम की खबर सुनकर बड़े खुश हुए क्योंकि वे बहुत दिनों से इस शुभ घड़ी की उम्मीद कर रहे थे। इस वक्त कालेम्यो के मैदान की पलटनों में जोर का मलेरिया फैला हुआ था और ७० फी सदी आदमी अस्पताल में थे। पर जब रवानगी का वक्त आया तो अस्पतालों से सब बीमार आदमी आकर मोटर लारियों में सवार हो गये। वे किसी हालत से पीछे छूटना नहीं चाहते थे। मीठा हाका से तामू तक ज्यादातर सफर जापानी फौज की मोटर लारियों में हुआ।

तामू से खरासोम और कोहिमा तक का सफर पैदल तय किया गया। वहां पहुंचकर हमने कोहिमा की ऊँची चोटियों पर तिरंगा झंडा फहराया। अंग्रेजों की मदद को बड़ी कुमुक पहुंच चुकी थी और अब वे रोज बरोज ज्यादह जोर से हमला करते थे। हमारे सिपाही बड़ी बहादुरी से सामना करके इनके हमलों को रोक रहे थे। बारिश भी जोर की होने लगी। हमें एक पहाड़ी की सड़क के जरिये रसद पहुँचती थी। यह सड़क भारी बारिश से बह गई और हमें रसद पहुँचनी बन्द होगई। रसद खतम हो चुकी थी। अब हमारे आदमी खाली किये नागा गाँवों से थोड़ा-बहुत धान इकट्ठा करके उसमें एक पहाड़ी घास मिलाकर उबालकर उस पर गुजारा करते थे। इस अजीब खाने में मिलाने के लिए थोड़ा-सा भी नमक उनके पास न था। इसी तरह कई हफ्ते उन्होंने गुजारे। बहुत कमजोर हो जाने पर भी किसी ने अंग्रेजों के सामने से पीछे हटने का नाम न लिया।

सब दवाइयां भी खतम हो चुकी थीं। बीमारों का इलाज करने के लिए डाक्टरों के पास कुछ न था। इस पर भी तुर्रा यह कि उन जंगलों में लाखों बड़ी-बड़ी मक्खियां थीं। ये मक्खियां जरा-सा भी ज़ख्म कहीं हो, तो उस पर बुरी तरह से हमला करती थीं और

बाद दुश्मन चौकी छोड़कर भाग निकला। हमारे सिपाहियों ने भागते हुए दुश्मन पर गोलियां बरसाईं। दिन चढ़ने और कोहरा दूर होने पर हाका से आदमियों ने क्लंग क्लंग की चौकी पर, जो पिछली रात तक दुश्मन के हाथ में थी, तिरंगा झण्डा फहराता हुआ देखा।

तब मेजर महबूब अहमद ने सिगनल के जरिये यह खबर हाका भेजी कि "कड़ी मुखालफत के बाद दुश्मन की चौकी हमारे हाथ आ गई। दुश्मन बड़ा नुकसान उठाने के बाद बहुत-सा सामान छोड़कर भाग गया। टिनों में बन्द बहुत से बढ़िया फल, मक्खन और मुरब्बा, बहुत से हथियार और गोला बारूद हमारे हाथ लगे।" हाका से यह खबर फालम भेजी गई और वहां से मेजर महबूब को हुक्म आया कि दुश्मन की चौकी को तोड़-फोड़कर जल्द-से-जल्द हाका लौट आओ, क्योंकि ब्रिगेड को दूसरा काम सौंपा गया है। ब्रिगेट के लिए नया हुक्म यह था कि—

"ब्रिगेड का बड़ा हिस्सा कोहिमा जायगा और इम्फाल पर अधिकार होते ही आगे बढ़कर ब्रह्मपुत्र पार करके बंगाल में घुसेगा।"

हाका से फालम तक के मोर्चे की हिफाजत करने और अंग्रेजी छापामारों को कोहिमा और इम्फाल के आसपास लड़ने वाली फौजों की रसद का रास्ता काटने से रोकने की जिम्मेदारी अब भी नं० १ (सुभाष ब्रिगेड) रेजीमेन्ट की ही थी। इस वास्ते इस काम के लिए मैंने १५० आदमी हाका में और २०० आदमी फालम में छोड़ दिये। अब यह बात अच्छी तरह मेरी समझ में आगई कि अब हमला करते रहने का वक्त नहीं रहा। बरसात थी, और इम्फाल में जापानियों ने जिस अंग्रेजी फौज को घेर रखा था, उसकी मदद के लिए एक नया हिन्दुस्तानी डिवीजन हवाई जहाजों के जरिये आ गया था। इस वक्त तक करीब सब जापानी हवाई जहाज लड़ने के लिए प्रशांत महासागर के इलाके को भेजे जा चुके थे। इसके अलावा अंग्रेजों की एक मजबूत पलटन दीमापुर और कोहिमा की तरफ से हमला कर रही थीं। उस

और उसमें अंडे दे देती थीं। आध घंटे में इन अंडों से कीड़े निकलते थे और उससे जख्म भर आता था। तब अक्सर आदमियों के सामने इसके सिवा और कोई चारा न रह जाता था कि जय हिन्द के नारे के साथ गोली से खुदकुशी करके अपनी तकलीफ का खातमा करें।

ऐसी ही हालत में मैं ४ जून १९४४ को उस इलाके के जापानी कमांडर से मिला। उसने मुझे बतलाया कि उसकी डिवीजन को दूसरा काम सौंपा गया है और वह उखरूल वापस जा रही है। मेरी ब्रिगेड भी उसी की डिवीजन का एक हिस्सा बना दी गई थी। उसने मुझसे भी उखरूल वापस चलने को कहा। मैंने कहा कि मैं इस हुक्म को नहीं मान सकता। हमने हिन्दुस्तान की जमीन पर तिरंगा झंडा लगा दिया है। हम उसे कैसे उखाड़ सकते हैं और कैसे अंग्रेजों के सामने से पीछे हट सकते हैं, जब कि हमने हमेशा अंग्रेजों को हराया है। हमारे आदमी एक इंच भी पीछे नहीं हटेंगे।" तब जापानी कमांडर ने धोखा देकर बहाने से हमें पीछे हटा ले जाने का जाल रचा। उसने मुझसे कहा कि "इम्फाल के पास की आ०हि० फौज व जापानी फौजें इम्फाल नहीं ले सकीं और मुझे नं० १ रेजीमेन्ट के साथ इम्फाल पर हमला करने का हुक्म मिला। तुम भी अपना काम चुन लो।" मैंने इम्फाल पर हमला करना पसन्द किया। मुझे यह भरोसा दिया गया था कि इम्फाल लेने बाद हम आगे बढ़ेंगे। इस भरोसे पर मैं अपने आदमियों को उखरूल वापस आने के लिए मना सका। मैं उखरूल वापस आ गया और वहां पहुँचते ही मैंने इम्फाल पर हमले का रास्ता तलाश करने के लिए गश्ती दल भेजे। जापानी जनरल दो दिन बाद पहुँचा। मैं उससे मिलने डिवीजन के हेडक्वार्टर में गया। उसने मुझसे कहा कि "हालत और खराब होगई है और भारी बारिश की वजह से इस इलाके में रसद की सप्लाई नामुमकिन है। इसलिए मैं तामू और सिंटग वापस जा रहा हूँ, क्योंकि वहां चिंदविन नदी के जरिये रसद आ सकती है। जापा-

नियों के हाथ में एक चिंदविन नदी का ही रास्ता रह गया है।" मैंने उससे कहा कि "तुमने मुझे झूठा हुक्म देकर धोखा दिया। अच्छा हो कि मेरी ब्रिगेड को फौरन आ० हि० फौज की उस डिवीजन के साथ कर दिया जाय, जो पलेल के पास अप्रैल के महीने से लड़ रही है।" उसने ऐसा ही करने का वायदा किया।

२२ जून को उसने मुझे तामू तक पीछे हटकर आ० हि० फौज की नं० १ डिवीजन में शामिल होने का हुक्म दिया, और हम पीछे हटने लगे। कोहिमा से हुई यह वापिसी दुनिया की फौजी तवारीख में सब से मुश्किल है। मूसलाधार बारिशों से सब रास्ते और पगडंडियां धुल गई थीं। हमारे सिपाहियों ने नये रास्ते बनाये, और उनमें भी जल्दी ही घुटनों तक गहरी कीचड़ हो जाती थी। कीचड़ में बहुत से आदमी फँसकर वहीं मर गये। किसी किस्म की सवारी या लद्दू जानवर का सपने में भी ख़याल न हो सकता था। प्राय सभी को पेचिश या मलेरिया सता रहा था। किसी में दूसरे को मदद देने की भी ताकत बाकी न रही थी। हरेक को अपनी पड़ी थी। पीछे रह जाने वाले का ख़ुदा ही मालिक था। मैंने लोगों को ऐसे घोड़ों का मांस खाते देखा; जिनको मरे चार दिन हो गये थे। सड़क के दोनों तरफ जापानी और हिन्दुस्तानी सिपाहियों की सैकड़ों लाशें दिखाई पड़ती थीं। ये उन आदमियों की थीं, जो कमज़ोरी, भूख और बीमारी से मर गये थे। उनमें से कुछ ऐसे आदमियों की थीं, जो तकलीफ बरदाश्त न कर सके और उन्होंने अंग्रेजों के हाथ गिरफ्तार होने की बनिस्बत ख़ुदकशी करना अच्छा समझा।

मक्कार अंग्रेजों ने सोचा कि आ० हि० फौज को ख़तम करने का अब अच्छा मौका है, क्योंकि क़यास से बाहर तकलीफें सहते-सहते उसका जोश बिलकुल ठंडा पड़ गया होगा। उन्होंने अपने कमांडर-इन-चीफ़ की दस्तख़ती परचियां हमारे ऊपर हवाई जहाज़ों से गराईं। उनमें लिखा था, "आ० हि० फौज के सिपाहियो, तुम्हारे

पास न गोला-बारूद है, न दवाइयां हैं और न रसद है। तुम जंगली जानवरों की तरह घास पर गुजारा कर रहे हो। तुम हमारी तरफ आ जाओ। हम तुमको अच्छा खाना व कपड़ा देंगे! तुम्हारी दवा-दारू होगी और तुमको अच्छी तनख्वाह और इनाम मिलेंगे। तुम ऐसे पत्थर-दिल क्यों होगये? तुम्हारे बाल-बच्चे तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं। हमारी तरफ आ जाओ और हम तुमको तीन महीने की छुट्टी पर भेज देंगे। हम तुमसे सच्चा वायदा करते हैं। हमारी तरफ आते हुए डरो मत। हम तुम्हारा स्वागत करेंगे।" जब हमारे सिपाहियों की हालत ऐसी भयानक थी, तब यह बुलावा दरअसल बहुत ही ललचाने वाला था। पर हमारे सिपाहियों के पास बिना अपवाद के इसका एक ही जवाब था। उन्होंने कहा कि हमको जंगली जानवरों की तरह घास पर गुजारा करके आजाद रहना मंजूर है, बजाय इसके कि हम अंग्रेजों के गुलाम बनकर, बेइज्जत होकर, अपने बाल-बच्चों में रहें और बढ़िया खाना खायें।" उन्होंने बेइज्जती से मौत को अच्छा समझा।

घुटनों-घुटनों तक कीचड़, गोलों और मशीनगनों की बौछार में आजाद हिन्द फौज के बहादुर सिपाही पीछे हटते रहे। ऐसे कठिन वक्त में अफसर अपने सिपाहियों के लिए अच्छी मिसाल उनके सामने रखते और दिलासा देकर उनका दिल बंधाये रखने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते थे। कोहिमा से कई सौ मील चलकर "सुभाष ब्रिगेड" के सिपाही तामू पहुँचे। उनमें से बहुत से तो रास्ते में ही मर गये। पर उनमें से जो ज़िन्दा रहे, उनको सिर्फ एक उम्मीद थी कि वे गाँधी और आज़ाद ब्रिगेड के अपने साथियों की मदद के लिए पलेन के मोर्चे पर भेजे जायंगे। लेकिन, उनकी क़िस्मत में एक और ना-उम्मीदी लिखी थी। तामू पहुंचने पर हम से कहा गया कि हम नं० १ डिवीजन में शामिल होने के लिए नहीं भेजे जायंगे, बल्कि जापानी कमांडर-इन-चीफ़ हमें रिज़र्व में रखेगा। तब हमारी आंखें खुलीं कि जापानियों ने हमें फिर धोखा दिया। कुछ दिनों बाद हमसे कहा गया कि जापानी

और आजाद हिन्द फौज चिंदविन नदी के दूसरे पार पीछे हटेंगी। इस हुक्म ने हम लोगों के दिल तोड़ दिये और उन्होंने आखिरकार समझ लिया कि हमारा हमला ना-कामयाव रहा।

तव अफसरों और सिपाहियों के एक डेपुटेशन ने मुझसे आकर कहा कि हमारे लिए सिर्फ एक ही इज़्ज़त का रास्ता वाक़ी है कि जिन आदमियों में अव भी कुछ मील चलने की ताक़त है, वे दुश्मन पर हमला करके लड़ते-लड़ते मर जायँ। उन्होंने समझ लिया कि वीमार तो मर ही जायंगे। मैंने उनकी वात मान ली, पर जापानी अध्यक्ष अफ़सर को यह वात मालूम हो गई और उसने नेताजी को एक दर्द-भरा संदेशा भेजा। मैं सिपाही था, मेरे सामने सिवा इसके कोई चारा न था कि हुक्म मानकर कलेवा लौट जाऊँ।

इस वारे में नेता जी ने नीचे लिखा खास हुक्म भेजा था :—

'आजाद हिन्द फौज के साथियो !

इस वर्ष मार्च के मध्य में आजाद हिन्द फौज की अग्रगामी टुकड़ियां अपने साथी जापानी फौजों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाये हुए दुश्मन के साथ लड़ रही थीं। उन्होंने हिन्द-वर्मा-सीमा पार कर ली थी और हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई हिन्दुस्तान की भूमि पर लड़ी जा रही थी।

अंग्रेजों ने एक शताब्दी से अधिक समय तक हिन्दुस्तान का शोषण किया है और विदेशी फौजों को लाकर मैदान में खड़ा किया है कि वे उनके लिए लड़ें। इस प्रकार उन्होंने हमारे विरुद्ध एक शक्ति-शाली सेना खड़ी कर दी है। अपने ध्येय की पवित्रता से प्रेरित होकर हमारी फौजों ने हिन्द-वर्मा-सीमा को पार करके अपने से संख्या और शस्त्रास्त्र में अधिक वलवान् फौज का मुकावला किया। हालांकि वह एक ध्येय से प्रेरित होकर संगठित हुई सेना न थी। हमने उसको पग-पग पर पराजित किया। हमारी सेनायें चूंकि अच्छी शिक्षित, नियंत्रित और 'करो या मरो' की दृढ भावना से प्रेरित होकर हिन्दुस्तान की

आजादी के पथ पर अग्रसर हुई थीं, इसलिए वे तुरन्त दुश्मन पर हावी हो गईं और हर पराजय पर उसका नैतिक पतन होता चला गया। अत्यन्त विपरीत परिस्थिति में लड़ते हुए भी हमारे अफसरों और सिपाहियों ने ऐसे साहस और वीरता का परिचय दिया कि सब कोई उनकी प्रशंसा करता है। अपने रुधिर और बलिदान से इन शूरमाओं ने जिस परम्परा को क़ायम किया है, उसी को आजाद हिन्द फौज के सिपाही भविष्य में जारी रखेंगे। सारी तैयारियां हो चुकी थीं और इम्फाल पर हमला करने के लिए अंतिम मोर्चेबन्दी की जा चुकी थी कि मूसलाधार वर्षा ने हमें आ घेरा और इम्फाल पर हमला करके उसको लेना असम्भव हो गया। इसीलिए हमें अपना हमला टाल देना पड़ा। तब उस मोर्चे पर डटे रहने में कोई लाभ न था। अधिक सुरक्षित स्थिति के लिए यह आवश्यक समझा गया कि फौजों को वहां से हटा लिया जाय। बीच का समय हम और अधिक तैयारी करने में लगायेंगें, जिससे अच्छा मौसम आने पर आक्रमण करने के लिए हम अधिक अनुकूल स्थिति में होंगे। अनेक मोर्चों पर दुश्मन को पछाड़ने के बाद अपनी अन्तिम विजय में हमारा विश्वास और अमेरिकन सेनाओं को पछाड़ने में हमारा विश्वास और भी दृढ़ हो गया है। ज्यों ही हमारी तैयारी पूरी हो जायगी, हम एक बार फिर दुश्मन पर भारी हमला करेंगे। अच्छे योद्धा होने से हम जिस साहस और निष्ठा के साथ युद्ध में उतरेंगे, उससे हमारी विजय सुनिश्चित है। इस युद्ध में काम आये सैनिकों की आत्मायें हमें प्रेरित कर रही हैं कि हम और भी अधिक हिम्मत और साहस के साथ स्वदेश की आज़ादी की लड़ाई की अगली चढ़ाई में जूझ पड़ें। जयहिन्द !"

तामू से हम पैदल चलकर यू नदी के किनारे अहलो पहुंचे और अपने बीमारों को हम कुछ बैलगाड़ियां ढूँढकर उनमें ले गये। जापानियों ने यहां बीमारों के लिए नावों का इन्तज़ाम करने का वादा किया था, पर नदी में पूरी बाढ़ आई हुई थी और एक भी नाव न थी।

इस नदी के किनारे हम ७ दिन रुके पड़े रहे। तब कुछ बर्मी नाव वालों की मदद से हमने नदी पार की। हमारी रसद बिलकुल ख़तम हो चुकी थी और नई रसद मिलने की कोई उम्मीद न थी। पास के गांवों में जो कुछ मिल सकता था, वह जापानियों ने पहले ही अपने लिए ले लिया था। और आजाद हिन्द फौज को अपने भाग्य पर छोड़ दिया गया था। इसी अवसर पर ७ जुलाई को मैंने अपनी डायरी में लिखा था कि "लोगों को खाने को कुछ भी न मिला......चार गढ़वाली भूख से मर गये। हमने जापानियों से कुछ राशन देने के लिए कहा। उन्होंने भी ध्यान न दिया। मैं नहीं समझ सका कि हमारे लोगों के भूखा मारने में जापानियों की क्या मन्शा थी।"

इन दुःसह परिस्थितियों में हमारे आदमी पीछे हट रहे थे और ऊपर से मूसलाधार वर्षा पड़ रही थी। चारों ओर घुटनों-घुटनों कीचड़ और घने जंगल थे, जिनमें भयंकर मलेरिया के मच्छर थे और जहरीली जोकें थीं। पनाह के लिए सिर्फ थोड़ी सी ज़मीन थी। किसी बात का इंतज़ाम न रह गया था। डाक्टरों के पास दवाये बिलकुल न थीं और ज्यादातर डाक्टर और अस्पताल में काम करने वाले खुद बीमार थे। उन को पेचिश और मलेरिया बुखार सता रहे थे। आस-पास के जंगलों और रास्तों में यहाँ भी करोड़ों बड़ी-बड़ी मक्खियां थीं जो मुर्दों के मांस पर जीती थीं। ज़रा-सा भी घाव हो, तो वे उसपर हमला करके उसमें कीड़ों की शकल में बच्चे दे देतीं। आधे घंटे में सारा घाव सैकड़ों कीड़ों से भर जाता, और अक्सर इसके सिवा कोई चारा न रहता कि छाती में गोली मारकर खात्मा कर लिया जाय। कुछ ऐसे भयानक नज़ारे देखने में आये कि शब्दों में उनको बयान नहीं किया जा सकता और जिसने वे देखे हों, वह उन्हें कभी नहीं भूल सकता।

एक दफा मैंने एक ऐसे सिपाही को देखा, जो लड़ाई में घायल हो गया था। वह कई मील पैदल चलकर आया था और अब उसमें चलने की ताकत बाकी न रही थी। वह सड़क के किनारे पड़ा सब

दुखों से छुटकारा देने वाली मौत की घड़ियां गिन रहा था। उसके घावों में सैकड़ों कीड़े पड़ गये थे और वह थोड़ी ही देर का मेहमान था। मैं उसके पास जाकर खड़ा हुआ। उसने आंखें खोलकर मेरी तरफ देखा और उठने की कोशिश की; पर उसकी ताकत ने जवाब दे दिया। उसने मुझे पास बैठने के लिए इशारा किया और आंसू बहाते हुए नेताजी तक यह सन्देश पहुँचाने के लिए कहा "साहब, आप लौटकर नेताजी को देखेंगे, पर मैं उनके दर्शन नहीं कर सकूंगा। आप उनसे मेरा 'जय हिन्द' कहकर यह कहें कि मैंने उनसे जो वायदा किया था, जीते जी उसे पूरा किया। उनसे कहें कि कीड़ों ने मुझे जिन्दा खा लिया पर इस महान् कष्ट में मुझे अजीब शांति और सुख मिला। हां, शांति और सुख, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह सब कष्ट हिन्दुस्तान के लिए, मातृभूमि के छुटकारे के लिए ही है।" ऐसे-ऐसे सैकड़ों वाक़यात रोज गुजरते थे। यह समझना बहुत मुश्किल हैं कि वह ऐसी कौन सी ताकत थी, जिसने हमारे सिपाहियों को इतना बदल दिया था। मौत की आखिरी घड़ी तक अपने नेताजी और उनसे किये हुए वायदे की सुध उनके दिल में सबसे ऊपर रहती थी।

मैं ऐसे सैंकड़ों वाकयात को जानता हूँ, जब कि सिपाहीपेचिश और बेरी-बेरी से बिलकुल कमजोर हो गये थे, उनकी टांगें और चेहरे सूज गये थे और ऐसा मालूम होता था कि वे एक इंच भी नहीं चल सकेंगे। उनका अफसर उनके पास आकर कहता कि "क्या तुम नेताजी से किया हुआ वायदा भूल गये, कि तुम सब कठिनाइयों का बहादुरी से सामना करोगे? नेताजी ५० मील नीचे कलेवा में तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं। क्या तुम जाकर उनके दर्शन करना नहीं चाहते?" यह कहकर अफसर उसको खड़े होकर चलने का हुक्म देता। ये शब्द हमारे थके-मांदे सिपाहियों पर जादू का-सा असर करते। मैंने कुछ सिपाहियों को इस पक्के निश्चय से कि ५० मील पार करके उनको नेताजी की सिर्फ एक झांकी मिल जाय, हाथों और पैरों के बल रेंगते देखा है। उनमें

से बहुत-सों ने तो यह सफर पूरा करके और वहां पहुँचते ही अपने प्यारे नेताजी की आखिरी झांकी लेकर खुशी से प्राण त्याग दिये।

अहलो से २५ मील हम पैदल चलकर तेरौन आये। हमारे साथ ६०० बीमार थे। बहुत से तो कमजोरी और भूख से रास्तों में ही खतम हो गये। जापानियों ने तेरौन में सबके लिए नावों का इंतजाम करने का वायदा किया था, पर वहां पहुँचने पर जब हमने देखा कि यू नदी पार करने के लिए भी एक भी नाव नहीं है, तो हमें बड़ी नाउम्मीदी हुई। यू नदी में खूब बाढ़-आई हुई थी। वह पहाड़ी नदी है और उसमें कई जगह बड़ा ढाल है, जहां पानी जोर से बहता है। इसलिए बड़े तजुरबेकार मल्लाह ही उसमें नाव चला सकते हैं और वह भी खास किस्म की नावें कुछ खास मौकों पर ही, जब कि चिंदविन नदी में पानी यू से ज्यादह ऊंचा होता है और यू में बहने लगता है।

हम यहां फिर फंसे रह गए और पार जाने की कोई सूरत दीख न पड़ती थी। बड़ी कठिनाई का सामना था। रसद खतम होने को थी। फी आदमी रोजाना ६ छटांक चावल और थोड़ा-सा नमक दिया जाता था और हमने सुना कि जापानियों के पास जो रसद है, वह भी न मालूम किस दिन खतम हो जाय ? नई के आने की कोई उम्मीद न थी।

नावों की तलाश में चारों तरफ आदमी भेजे गये और अन्त में अहलो से कुछ नावें आईं। जो आदमी बीमार न थे, वे उनके जरिये पार उतरे और उनको युवा और वहां से कलेवा पैदल जाने का हुक्म मिला। कलेवा में उनको मांडले या दूसरी जगह से ले जाने के लिए मोटरों का इन्तजाम था।

बड़ा कठिन सवाल ४०० सख्त बीमार आदमियों का था, जो एक मील भी नहीं चल सकते थे। आखिरकार मैंने इन ४०० आदमियों को वहीं छोड़कर युवा चले जाने और वहां से नाव के जरिये तेरौन से इनको मंगाने का इंतजाम करने का फैसला किया।

इसमें भी बड़ी दिक्कतें पेश आईं और हमें तेरौन से अपने बीमारों को मांगने में एक महीना लग गया। इस बीच उनमें से आधे दुश्मन के बमों, बीमारी और भूख के शिकार हो गये।

युवा पहुँचने पर सब काम आसान हो गया, क्योंकि वहां बीमारों को कलेवा ले जाने के लिए कुछ नावें मौजूद थीं और कलेवा में आ. हि. फौज का कैम्प था, वहां डाक्टरी मदद, रसद और मोटरों का इन्तजाम था।

कलेवा पहुंचने के बाद नं. १ डिवीजन को नीचे लिखे मुताबिक जगहों को भेजने का इंतजाम किया गयाः—

डिवीजन का हेडक्वार्टर मांडले में

१. सुभाष ब्रिगेड—बुडालिन में

२. गांधी ब्रिगेड—मांडले में

३. आज़ाद ब्रिगेड—चौंगू में

अधिकांश सैनिक और अफ़सर सीधे भौतीवा और भैस्यो के अस्पतालों में चले गये थे।

मई १९४४ के बाद हाका और फालम की पलटनें

मई महीने के बीच क्वंगक्वंग की चौकी ले लेने के बाद ब्रिगेड का बड़ा हिस्सा कोहिमा भेज दिया गया, पर हाका से फालम तक के मोर्चे की हिफाजत की जिम्मेदारी नं० १ रेजीमेण्ट अर्थात् सुभाष ब्रिगेड के ही हाथ में रही। इसलिए हाका में १०० अच्छे और १५० बीमार आदमियों का एक दल लैफ्टिनेन्ट रनजोधसिंह के मातहत छोड़ा गया और ऐसा ही एक दल फालम में भी छोड़ा गया। नौंचांग के फौजी अड्डे पर मेजर ठाकुरसिंह की कमान में कुछ आदमी छोड़ दिये गए। उनके पास नाम-मात्र की रसद और दवाइयां थीं।

रेजीमेण्ट का बड़ा हिस्सा जब हाका-फालम से चला गया, तो उस मोर्चे पर दुश्मन की कार्रवाई बहुत बढ़ गई। हमारी चौकियों पर रोज हमले होने लगे!

आजाद हिन्द फौज की क्रुं ग क्रुं ग की चौकी पर बड़ी-बड़ी लड़ाइयां हुईं। अब दुश्मन का जोश बहुत बढ़ गया था और उसने हमारी चौकी और हाका के अड्डे को लेने के लिए दिलो-जान से कोशिश की। पर हमारे आदमियों की साहस और दृढ़ता के सामने ये हमले हमेशा नाकाम रहे और हमारी पलटनों ने दुश्मनों पर हमले जारी रखे।

अगस्त १९४४ के शुरू में इम्फाल पर हमारे हमले की नाकामयाबी और हमारे पीछे हटने के बाद, हाका मोर्चे की अंग्रेजी पलटनों ने क्रुं ग क्रुं ग और हाका की चौकियां लेने के लिए जोर के हमले किये। उन्होंने ६०० आदमी इकट्ठे करके चारों तरफ से हाका को घेरकर हमले करने शुरू किये। उनके एक दल ने क्रुं ग क्रुं ग को घेर लिया और हाका से वहां मदद का पहुंचना रोकने के लिए रास्ते में की एक पहाड़ी पर कब्जा कर लिया। फिर हमले-पर-हमले होने लगे। तोपखाना और हवाई जहाज भी उनके हमलों की मदद करते थे, फिर भी हमारे आदमी मजबूती से डटे रहे। इस बीच रनजोधसिंह ने हालत नाजुक समझकर पूरब की तरफ से हाका की हिफाजत के लिए कुछ आदमी वहां छोड़कर बाकी सब लड़ने लायक आदमियों को इकट्ठा करके, जो करीब ६० थे, क्रुं ग क्रुं ग पर घेरा डालने वाले दुश्मन पर हमला करने का फैसला कर लिया। उसने समझ लिया कि क्रुं ग क्रुं ग को मदद जल्द न भेजी गई, तो उसे दुश्मन ले लेंगे। इसलिए हर घड़ी बड़ी कीमती थी। उसने अपने आदमियों से कहा "क्रुं ग क्रुं ग को दुश्मन ने बुरी तरह घेर लिया है और अगर हमने जल्दी ही उनकी मदद न की, तो दुश्मन उन सबको खतम कर देगा। हम या तो उन्हें बचायेंगे, नहीं तो इस कोशिश में हम सभी खतम हो जायेंगे। इन शब्दों ने सिपाहियों पर जादू का-सा असर किया और वे सब बन्दूकें और किरचें सम्भालकर अपने बहादुर कमांडर के साथ क्रुं ग क्रुं ग के रास्ते की पहाड़ी पर जमे हुए दुश्मन पर पिल पड़े। दुश्मन करीब ३००

थे और इसलिए हमारे सिपाहियों का एक का पांच से मुकाबला था। दुश्मन के हथियार भी हमारे हथियारों से अच्छे थे। हमारे सिपाहियों का तो जोश ही उनकी ताकत था। 'नेताजी की जय' और 'जय हिन्द' का जयघोष करते हुए वे दुश्मन पर टूट पड़े। घमासान लड़ाई हुई और हमारे बहुत से सिपाही मारे गये, पर आखिरकार दुश्मन को पीछे हटना पड़ा। अपने साथियों को गिरते देखकर रनजोधसिंह का खून खौलने लगा। और उसने पीछे हटते हुए दुश्मन पर फिर हमला किया, उनको भगा दिया और क्ङ क्ङ की घिरी हुई पलटन से सम्पर्क कायम किया। इस लड़ाई में दुश्मन अपने २२ मुर्दे मैदान में छोड़ गया। बहुत से हथियार और गोला-बारूद भी हमारे हाथ लगा।

अगस्त महीने के बीच में रनजोधसिंह को हुक्म मिला कि हाका फालम छोड़कर नौचांग में रेजीमेन्ट के हेडक्वार्टर में आ जाओ। मूसलाधार बारिश में उसके सिपाही फालम आये। वे अपने सब घायलों और बीमारों को अपने कन्धों पर ढोकर लाये। फालम पहुंचने पर उन्होंने देखा कि मनीपुर नदी पर का झूले का पुल दुश्मन ने उड़ा दिया है, और बाढ़ की वजह से नदी पार नहीं की जा सकती। तब वे लौटकर फिर हाका आये और एक दूसरे रास्ते से नौचांग जाने की कोशिश की। लेकिन, यह रास्ता दुश्मन ने घेर रखा था। दुश्मन ने उन्हें हरेक तरफ से घेर लिया था। अब वे फिर लौटकर फालम आये, पर इस बार उनकी खुशकिस्मती से मनीपुर नदी में बाढ़ इतनी जोर की नहीं थी। उन्होंने नदी पर एक आरजी पुल बना लिया और उसे पार करके सितंबर के शुरू में नौचांग पहुंचे। वहां से पीछे हटकर वे कलेवा आये और कोहिमा से लौटी हुई बाकी ब्रिगेड से मिले।

इस वक्त हमारे और जापानियों के ताल्लुकात, जो कभी भी अच्छे नहीं थे, बहुत बिगड़ चुके थे। सबकी राय यही थी कि जापानियों ने हमारे साथ ठीक तरह से सहयोग नहीं किया, हमारी लड़ाई में रोड़े अटकाये और इस तरह से हमें धोखा दिया। हमारी इम्फाल

लेने में नाकामयाबी की और लड़ाई में हमारे भारी नुकसान की वजह यही थी।

पीछे हटते हुए जापानियों और हिन्दुस्तानियों में कई बार मुठभेड़ें भी हुईं। विन्दन तथा युवा में तो बाकायदा मशीनगनें भी इस्तैमाल की गईं। जब हाका से आजाद हिन्द फौज गैरिसन कलेवा वापस लौट रही थी; तब जापानियों ने एक दिन बड़ी सवेरे उसके दस आदमियों को गिरफ्तार करके उनको दुश्मन के गुप्तचर बताकर पेड़ों से बांधकर किरचों से मारा। अधिक तो उनमें से मर गये। जो इस भीषण काण्ड की कहानी कहने को बाकी बचे, उनके बदन पर किरचों के दस-दस घाव थे। जब नेताजी को यह मालूम हुआ, तब उन्हें बहुत गुस्सा आया और उन्होंने टोकियो के फौजी सदर मुकाम तक इस मामले को पहुँचाया।

यह समझना मुश्किल है कि जापानियों ने आजाद हिन्द फौज के साथ ऐसा बरताव क्यों किया। इसकी एक ही वजह मालूम होती है। शुरू-शुरू में वे समझते थे कि ख़ुद ही आसानी से इम्फाल ले सकते हैं। यह बहुत मुमकिन है कि उनकी नज़र हिन्दुस्तान पर थी और इसलिए वे आ० हि० फौज को बहुत ताक़तवर बनने देने में डरते थे, जिससे कि कहीं ऐसा न हो कि वक्त पर वह जापानियों के ख़िलाफ़ लड़ने लगे। आ० हि० फौज के अफ़सरों और सिपाहियों से ख़ूब मिलते-जुलते रहकर जापानियों ने यह राय क़ायम की थी।

मुझे पूरा यक़ीन है कि नेताजी भी जापानियों का ऐतबार नहीं करते थे। उनका ख़याल था कि आ०हि०फौज को जितना हो सके, उतना ताक़तवर बनाना चाहिए और जापानियों की धोखेबाज़ी की सबसे अच्छी गारण्टी हमारी अपनी ताक़त है। नेताजी का ख़याल था और वह ठीक ही था कि हम ज्यों-ज्यों हिन्दुस्तान में बढ़ते जायंगे, त्यों-त्यों हमारी ताक़त बढ़ती जायगी और हमको हमेशा हर विदेशी हमला करने वाले से, चाहे वह जापानी हो या अंग्रेज़, लड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए।

वे समझते थे कि जापानियों के लिए यही अच्छा है कि वे हिन्दुस्तान को अपना मुख़ालिफ़ न बनायें। अगर हिन्दुस्तान को वे अपने ख़िलाफ़ खड़ा करने की बेवक़ूफ़ी करेंगे तो यहां भी उनकी वही हालत होगी, जो चीन में है, जहां कि उनकी बहुत सारी फौजें फंसी हुई हैं।

दिसम्बर १९४४ के शुरू में मैं विन्दन से कलेवा लौट आया और यू होता हुआ वुड़ालिन के लिए रवाना हो गया। २३ सितम्बर के लगभग मैं मांडले जाकर नेताजी से मिला। फरवरी १९४४ में रंगून से मोर्चे के लिए विदा होने के बाद नेताजी से मिलने का यह पहला अवसर था।

इम्फाल की लड़ाई में नं० १ डिवीजन की कारगुज़ारी

आ० हि० फौज ने अराकान के पहाड़ों में शहीद मेजर एल० एस० मिश्रा, सरदारे जंग और मेजर पी० एस० रतूड़ी सरदारे जंग के मातहत और बाद को चिन की पहाड़ियों में बड़ी बहादुरी और कारगुज़ारी दिखलाई। उसकी लड़ने की लियाक़त में जापानियों को पहले जो शक था, वह अब दूर हो गया। तब नेताजी ने आ० हि० फौज की और ज़्यादह पलटनें मोर्चे पर भेजने के लिए जापानियों को मजबूर किया। तब नं० १ डिवीजन की दूसरी पलटनों को भी लड़ाई के मैदान पर जाने के लिए तैयार किया गया।

बाद को नं०२ गोरिल्ला रेजीमेण्ट अर्थात् गांधी ब्रिगेड और डिवीज़न का सदर मुकाम मार्च के शुरू में बर्मा ले जाये गए और रंगून में कुछ दिन आराम करने के बाद अप्रैल के शुरू में मोर्चे को चल दिये। उनके सफ़र का रास्ता और हालात वही थी, जो सुभाष ब्रिगेड की थी। डिवीजन का कमाण्डर मेजर जनरल (तब कर्नल) एम० जेड० कियानी था। वह आ० हि० फौज के सबसे लायक़ और बहादुर कमांडरों में से था। गांधी ब्रिगेड का कमांडर कर्नल आई० जे० कियानी था। वह जनरल एम० जेड० कियानी का चचेरा भाई था। इन दोनों अफसरों से बड़ी-बड़ी उम्मीदें की जाती थीं। कर्नल आई०जे० कियानी

अपनी दृढ़ता और धीरज के लिए मशहूर था। मोर्चे के लिए कूच करते समय जापानियों ने उनसे कहा कि तुम लोगों को चलने में बहुत देर हो गई, और ग़ालिबन इम्फाल तुम्हारे पहुँचने से पहले ही ले लिया जायगा। इसलिए बड़ी तेज़ी से और मेहनत से मार्च करते हुए वे लोग अप्रैल के शुरू में ही कलेवा पहुँच गये। यहां भी उनसे वही बात कही गई कि तुम लोग इम्फाल की लड़ाई में हिस्सा नहीं ले सकोगे, क्योंकि या तो जापानी इम्फाल ले चुके हैं, या कुछ घंटों के अन्दर ही ले लेंगे। उनको यह सलाह दी गई कि अपना सब भारी सामान मशीनगनें और हथगोले वगैरह कलेवा में ही छोड़ दो और जल्द-से-जल्द इम्फाल पहुँचो। जापानी मध्यस्थता करने वाले अफ़सरों ने कहा कि एक कम्बल, बन्दूक और ५० गोलियां इतना ही सामान साथ ले जाना काफ़ी है। बाक़ी जितना चाहोगे, इम्फाल में मिल जायगा।

इम्फाल पर आखिरी हमले के वक्त न पहुँच पाने और पीछे जू जाने के डर से ऐसी हालत में गांधी ब्रिगेड ने मोर्चे की ओर तेजी से कूच कर दी। अफसर और सिपाही उस हमले में आगे रहना चाहते थे।

तामू पहुँचने पर खबर मिली कि इम्फाल तो अभी तक नहीं लिया गया और पालेल के पास जोर की लड़ाई हो रही है। पालेल मोर्चे के जापानी कमांडर और मेजर फुजिवारा से सलाह करके यह तय पाया कि नं० १ डिवीजन को तामू-पलेल की सड़क से पच्छिम के मोर्चे के एक हिस्से की जिम्मेदारी सौंपी जाय और वह वहां से यापू फ्रन्ट व पालेल हवाई अड्डे के दुश्मन पर छापामारी करे।

डिवीजन का दफ्तर चमोल में और रेजीमेन्ट का मिथुन खूनो में रखा गया। आगे बढ़ने के लिए तामू-पलेल की सड़क बहुत मुख्य थी, इसलिए अंग्रेजों ने उस मोर्चे पर बहुत सी पलटनें रखी थीं। उनकी एक डिवीजन और तीन ब्रिगेड उस तरफ थीं। इन सब पलटनों की मदद के लिए तोपखाना और हवाई जहाज थे। इसलिए

गांधी ब्रिगेड का सामना सबसे ताकतवर अंग्रेजी पलटनों से था और उसको बगैर तोपखाने या हवाई जहाज की मदद के उस इलाके की कुछ सबसे भारी लड़ाइयों में लड़ना पड़ा। इस पर भी तुर्रा यह था कि उसने अपना सब भारी सामान पीछे कलेवा में छोड़ दिया था।

पलेल के हवाई अड्डे पर हमला

मई के शुरू में मेजर फुजिवारा जनरल कियानी के पास आकर बोला कि जापानी लोग पलेल के हवाई अड्डे पर हमला कर रहे हैं। आ० हि० फौज भी, चाहे तो इस हमले में हिस्सा ले सकती है। उसने यह भी कहा कि जापानी तो पलेल बड़ी आसानी से जरूर ले ही लेंगे, पर मैं चाहता हूँ कि आ० हि० फौज को भी इस लड़ाई में हिस्सा लेने का मौका मिले। इसलिए पलेल के हवाई अड्डे पर जापानियों के साथ मिलकर हमला करने की एक स्कीम तैयार की गई और कर्नल आई० जे० कियानी को उस पर अमल करने का हुक्म दिया गया। मेजर प्रीतमसिंह की कमान में करीब २०० आदमियों के एक जत्थे को यह काम सौंपा गया। यह जत्था सिर्फ बंदूकें और एक दिन की रसद लेकर चल दिया। उसने बड़े ढालू पहाड़ों पर करीब ४० मील तय किये। दुश्मन की आगे की रक्षा-पंक्ति में घुसने और हवाई अड्डे के आस-पास पहुँचने में उसे कामयाबी हुई। आधी रात को हमला करना था इसलिए दिन झाड़ियों में या गहरे नालों में छिपकर बिताया गया। अंधेरा होते ही वे लोग अड्डे की तरफ बढ़े। अड्डे के पास पहुँचकर मेजर प्रीतमसिंह ने देखा कि उसके चारों तरफ पहाड़ियों पर सन्तरियों की चौकियां हैं और उन चौकियों पर हमला किये बिना अड्डे पर हमला नहीं हो सकता। इसलिए उसने कप्तान साधुसिंह के मातहत एक दल को इन चौकियों में से एक से भुगतने का काम सौंपा और बाकी लोगों को एक और अफसर के मातहत दुश्मन के बीच घुसकर अड्डे पर हमला करने को कहा।

अंग्रेजों की चौकी बड़ी मजबूत थी और उसमें मशीनगनें लगी हुई थीं। हमारे सिपाहियों ने अन्धेरे में छिपकर चुपचाप जाकर किरचें तानकर एकदम चौकी पर हमला बोल दिया और "इन्कलाब जिन्दाबाद" और "दिल्ली चलो" के नारे लगाये। दुश्मन घबरा गया। उन्होंने हाथ उठाकर हिन्दुस्तानी में हमारे सिपाहियों से कहा, "साथी हमको मत मारो।" आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को यह हुक्म था कि हिंदुस्तानी सिपाहियों पर वे पहले हमला न करें। तभी करें, जब कि पहले हिन्दुस्तानी सिपाही उन पर हमला करें। इसलिए अफसर ने अपने आदमियों को रोक दिया और चौकी पर कब्जा करने के लिए लैफ्टिनेन्ट लालसिंह और लैफ्टिनेन्ट मोहनसिंह के साथ अन्दर गया। इस बीच चौकी, जो पहले घबरा गई थी, सम्भल गई, उसके कमाण्डर ने हमारे अफसर से पूछा कि "तुम क्या चाहते हो?" लैफ्टिनेन्ट लालसिंह ने, जिसके हाथ में सिर्फ एक भाला था, जवाब दिया कि "मैं उन दो अंग्रेज अफसरों का खून चाहता हूं, जो कोने में छिपे हुए हैं।" यह कहकर वह उन पर टूट पड़ा। चौकी के भीतर के आदमियों ने उन पर गोलियां चलाईं और लैफ्टिनेन्ट लालसिंह गोलियां खाकर गिर पड़ा, पर गिरने से पहले उसने अपने भाले से उन दोनों अफसरों को खतम कर दिया। जब हमारे आदमियों ने देखा कि उनको दुश्मन ने धोखा दिया, तो उन्होंने चौकी पर कई दफा हमला किया। पर वह कांटेदार तार से इस तरह घिरी हुई थी कि वे उसको नहीं ले सके। अब दिन निकलने वाला था और मेजर प्रीतमसिंह ने अपने रेजीमेन्ट के दफ्तर को लौट चलने का फैसला किया। इस बीच दूसरी पार्टी को दुश्मन के बीच घुसने और हवाई अड्डा ले लेने में कामयाबी हुई, पर वहां पहुंचने पर उन्होंने देखा कि कोई भी जापानी नहीं पहुंचा। अकेले अपने आप अड्डे को अपने हाथ में रखने के लिए उनकी तादाद काफी न थी। इसलिए वे वहां के सब हवाई जहाजों को तोड़-फोड़कर लौट आये।

जब कि इधर यह सब हो रहा था, उधर कर्नल आई० जे० कियानी ने अपनी बाकी ब्रिगेड के साथ आगे बढ़कर युआप की पहाड़ी ले ली थी, जिससे कि वह मेजर प्रीतमसिंह की मदद कर सके। दिन निकलने पर दुश्मन के तोपखाने और हवाई जहाज़ों ने आग उगलनी शुरू कर दी। दिन भर गोलाबारी और बम-वर्षा होती रही। तीन दिन से मेजर प्रीतमसिंह के आदमियों को खाना नहीं मिला था। उस दिन गांधी ब्रिगेड के २५० आदमी खेत रहे।

इस लड़ाई की एक ख़ास बात यह थी ब्रिगेड का डाक्टर अली अकबरशाह बरसते हुए गोलों और बमों के बीच खुद मोर्चे की पंक्ति में जाकर घायलों की मरहम-पट्टी अपने हाथ से कर रहा था। उसके पास डाक्टरी औज़ार भी नहीं थे। सिर्फ मामूली कैंची और एक नाई का उस्तरा था। इन्हीं औजारों के ज़रिये वह अपना काम करता था और छोटे-छोटे ऑपरेशन भी खुद करता था। वह अपनी जान की कुछ भी परवाह न करता था। ऐसा बहादुर आदमी किसी भी मुल्क के लिए गर्व का कारण होगा। सितंबर १९४४ में मोनिका के अस्पताल में उसकी मौत हुई और आजाद हिन्द फौज ने अपने सबसे अच्छे और प्यारे अफसरों में से एक को खो दिया। हवाई अड्डे पर इस हमले से अंग्रेज चकरा गये और उन्होंने हमला करके मिथुन खूनो से गान्धी ब्रिगेड को हटाने का इरादा किया।

सीफोर्थ हाई लैंडर्स का मिथुन खूनो पर हमला

पलेल के हवाई अड्डे के हमले के बाद, शत्रु के गश्ती दलों की कार्रवाई तेज हो गई। एक साहसी अंग्रेज अफसर किसी तरह कई बार हमारे संतरियों के पास आ गया और उनकी चौकियों पर हमला करने लगा। तब कर्नल कियानी उस पर हमला करने के उद्देश्य से छिपकर बैठ गये और अंत में उसे समाप्त कर दिया।

कुछ दिन बाद एक अंग्रेजी पल्टन ने भारी तोपखाने की सहायता

से हमारी मिथुन खूनो के पास की सबसे आगे की कम्पनी पर हमला किया। इस कम्पनी के आगे के प्लाटून की कमान युवक सेकिंड लैफ्टिनेंट अजाइबसिंह के अधीन थी; जिनको आजाद हिन्द फौज के सिंगापुर के ट्रेनिंग स्कूल में ट्रेनिंग दी गई थी।

सीफोर्थ हाईलैंडर्स अंग्रेजी पल्टन के स्काटलैंड-वासी सैनिकों ने यह जानते हुए भी कि वे आजाद हिन्द फौज का मुकावला कर रहे हैं, भीषण हमला किया। आजाद हिन्द फौज के सैनिक भी इसी दिन की राह देख रहे थे। अंग्रेजी फौज से गांधी ब्रिगेड की यह पहली लड़ाई थी। उसको देखते ही गांधी ब्रिगेड के सैनिकों में रोष भर गया। दोनों ओर से चुनौतियां दी गईं और दोनों पक्ष एक दूसरे से भिड़कर लड़ने लगे। अंगेज सैनिक लगभग हमारे सैनिकों की खाइयों तक आ पहुंचे; लेकिन उन्होंने उनको बार-बार पीछे को खदेड़ दिया। अंग्रेज सैनिकों को भारी हानि उठानी पड़ी।

इस पहली हार के बाद अंग्रेज सैनिक पीछे हट गये; लेकिन नये सिरे से संगठित होकर फिर हमला करने लगे। इस बार तोपखाने और हवाई जहाजों ने उनकी मदद की; लेकिन आजाद हिन्द फौज के इस प्लाटून ने अपने वीर कमांडर की कमान में डटकर मुकावला किया और उनको हर एक हमले में पीछे हटा दिया। अंत में शत्रु के सैनिक आजाद हिन्द फौज के मुकाबले में आगे बढ़ने में असमर्थ होकर रुक गये और अपनी रक्षा-पंक्तियों में लौट गये। लेकिन अजाइबसिंह अभी लड़ाई बंद नहीं करना चाहते थे। उन्होंने अपने आदमियों को इकट्ठा किया, शत्रु के मुर्दा और घायल सैनिकों के कारतूस इकट्ठे किये, जिन्हें पक्ष पीछे पड़ा छोड़ गया था वे अपनी खाइयों से निकले, अंग्रेजी फौज की निकटतम खाइयों के पास आये और उनको चिल्लाकर चुनौती दी कि वे बाहर निकलें और लड़ें, अपनी खाइयों में और कंटीले तारों के पीछे छिपें नहीं। अंग्रेज सैनिकों ने यह चुनौती स्वीकार कर ली। दूसरी भयंकर लड़ाई हुई जिनमें अंग्रेज सैनिक अपना बचाव कर रहे थे।

लैफ्टिनेंट अजाइबसिंह ने पहली लड़ाई में बहुत-सी बन्दूकें और बम कब्जे में कर लिये थे। वे उनका प्रयोग अंग्रेजों के विरुद्ध ही करना चाहते थे; लेकिन उनके पास बम छोड़ने के विशेष बारूदों कारतूस नहीं थे। इसलिए उन्होंने सैनिक शिक्षा के सब कानून-कायदों के विरुद्ध बन्दूक से छोड़े जाने वाले बमों को चलाने के लिए ३०० बारूदी गोले काम में लिये। इनसे काम अच्छी तरह चल गया। उन्होंने इस लड़ाई में ५० देसी बम भी चलाये। जब अंधेरा हो गया, तब लैफ्टिनेंट अजाइबसिंह शत्रु-सैनिकों के शिष्टतापूर्ण निवेदन पर अपनी खाइयों में लौट आये। उनकी छोटी-सी फौज को नुकसान उठाना पड़ा था; लेकिन उन्होंने शत्रु को बहुत ज्यादा हानि पहुंचाई थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने उसको आजाद हिन्द फौज पर हमला करते समय अधिक सभ्यतापूर्ण-बर्ताव करना सिखाया था। उस दिन की लड़ाई में शत्रु के कम-से-कम ५० सैनिक हताहत हुए जब कि हमारे १० सैनिक मारे गये थे और थोड़े से सैनिक घायल हुए थे। इस लड़ाई में विशेष बात यह थी कि हमारी ओर आजाद हिन्द फौज के अधिकांश सैनिक मलाया से नये भर्ती किये हुए तामिल-रङ्गरूट थे। वे पहली बार ही लड़ाई में शामिल हुए थे; लेकिन उन्होंने अपना काम प्रशंसनीय ढङ्ग से किया और 'फौजी एवं गैर फौजी जातियों' की अंग्रेजी कल्पना को चूर-चूर कर दिया। इस लड़ाई में उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि सभी हिन्दुस्तानी, चाहे अंग्रेज उन्हें फौजी जाति मानते हों या गैर फौजी, एक बार लड़ाई के लिए आमादा किये जाने पर अत्यन्त वीरता पूर्वक लड़ते हैं और अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करने के लिए बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी कर सकते हैं।

इस समय जोर से मेंह बरसने लग गया था और राशन और गोला-बारूद जुटाने का सवाल बड़ा मुश्किल सवाल हो गया था। ठीक तरह के खाने और दवाओं की कमी की अवस्था में सैनिकों का स्वास्थ्य बड़ी तीव्र गति से बिगड़ रहा था और जून १९४४ के मध्य तक वे इतने

दुर्बल हो गये थे कि उनके लिए कुछ मील चलना भी कठिन था; लेकिन इतना होने पर भी वे अपनी जगहों पर अड़े हुए थे और अंग्रेजी फौज के बार-बार हमले करने पर भी एक इंच भी पीछे नहीं हटे। उस समय लड़ाई की लहर बदल गई थी। अंग्रेजों ने अपनी इम्फाल की घिरी हुई फौज को बहुत काफी कुमुक भिजवा दी थी। अब उनकी स्थिति ऐसी हो गई थी कि वे बड़ा हमला कर सकते थे।

वे पहले मिथुन खूनो के गिर्द की पहाड़ियों को, जिस पर गांधी ब्रिगेड ने कब्जा कर लिया था, छीनना चाहते थे। इस बार पूरे अंग्रेजी ब्रिगेड ने हमला किया। इसमें २००० सैनिक थे और भारी तोपखाना एवं हवाई जहाज उनकी सहायता कर रहे थे। हमारे पुराने प्रतिद्वन्द्वी सीफोर्थ पल्टन के सैनिकों ने फिर आगे बढ़कर हमला किया।

होशियारी से चक्कर काटते हुए उन्होंने हमारी एक कम्पनी को घिराव में ले लिया। इसके कमांडर कप्तान राव थे। ऐसा दिखाई देता था मानो वे हमारी इस फौज को खत्म ही कर देंगे। स्थिति अत्यन्त गम्भीर दिखाई देती थी। सब ऊंची पहाड़ियों और मौके की जगहों पर शत्रु का अधिकार था। इसके अतिरिक्त बहुत से आदमियों के बीमार होने और लड़ाई में हताहत होने से गांधी ब्रिगेड की ताकत बहुत कम हो गई थी। इस लड़ाई में ही आजाद हिन्द फौज के ६०० सैनिक लगभग २००० ऐसे अंग्रेज सैनिकों का मुकाबला कर रहे थे जिनको अच्छा खाना मिलता रहता था और जिनके पास उनकी अपेक्षा बहुत ज्यादा अच्छे हथियार और दूसरा सामान था। हमारे सैनिक अत्यंत वीरता के साथ लड़े। ब्रिगेड के कमांडर कर्नल आई. जे. कियानी खुद कम्पनी के क्षेत्र में थे, जिसे अंग्रेजों ने घेर लिया था। उन्होंने अनुभव किया कि यदि इन मौके की जगहों पर वे कब्जा करेंगे तो घेरे के भीतर की उनकी सेना नष्ट हो जायेगी। इसलिए उन्होंने अपने अफसरों को आज्ञा दी कि वे उन पहाड़ियों पर कब्जा कर लें, चाहे उन्हें कितनी ही हानि क्यों न उठानी पड़े। लैफ्टिनेन्ट मंसुखलाल को एक पहाड़ी पर

फिर से कब्जा करने की आज्ञा दी गई। उनकी कमान में लगभग ३० सैनिकों की एक टुकड़ी थी। इस थोड़ी-सी सेना को लेकर तोपों की सहायता के बिना ही उन्होंने प्रत्याक्रमण किया और एक चौकी पर जहां शत्रु की बहुत ताकत थी, अधिकार कर लिया। उस खड़ी चट्टान पर अपनी थोड़ी-सी भूखी-प्यासी फौज को लेकर हमला करते हुए वे १३ बार घायल हुए। वे थक गये थे और उनका खून बहुत बह गया था। इसलिए अंत में उनके पैर लड़खड़ा गये और वे जमीन पर गिर पड़े। उनके सैनिकों ने जब यह देखा कि उनका वीर कमांडर गिर पड़ा है तो वे हिचकिचाये और उनकी गति मंद पड़ गई। लैफ्टिनेन्ट मंसुखलाल ने घातक रूप से घायल होने पर भी अंतिम हमले के लिए दृढ़-संकल्प बाघ की भांति अपने सैनिकों को फिर ललकारा और कहा कि वे आगे बढ़ते जायें और उनकी परवाह न करें। वे चोटी के बहुत पास पहुँच गये थे। लेफ्टिनेंट मंसुखलाल शरीर में १३ गोलियां लगने पर भी पूरी ताकत लगाकर फिर खड़े हो गये और पहाड़ी के ऊपर, जिस पर उस दिन गांधी ब्रिगेड के भाग्य का फैसला निर्भर था, किये जाने वाले अंतिम आक्रमण का संचालन किया।

शत्रु के सैनिकों में इतना दम न था कि वे आजाद हिन्द फौज के सैनिकों से दस्त-बदस्त लड़ाई लड़ते। वे उनकी निर्दय और चमचमाती हुई इस्पाती संगीनों का सामना करने का खयाल भी पसंद नहीं करते थे। इस स्थिति में वे पहाड़ी को आजाद हिन्द फौज के हाथों में छोड़कर पीछे हट गये। इस प्रकार वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान फिर जीत लिया गया और आजाद हिन्द फौज के रास्ते की रक्षा हो गई।

जब कि लैफ्टिनेंट राव की कम्पनी अपने गिर्द शत्रु के बनाये हुए मजबूत घेरे को तोड़ने के लिए लड़ रही थी, तभी पल्टन के कमांडर ने लैफ्टिनेंट अजाइबसिंह की कमान में एक दूसरी कम्पनी अंग्रेजों पर हमला करने और लैफ्टिनेंट राव की कम्पनी को घेरे में से निकालने

के लिए भेजी। यह कम्पनी आगे बढ़ी और उसने बड़ी चतुरतापूर्ण कार्रवाई से लैफ्टिनेंट राव की फौज को घेरने वाली अंग्रेजी फौज को घेर लिया। शत्रु पर बिलकुल अचानक यह धावा किया गया था; इसलिए उन्होंने अपनी वापिसी का रास्ता भरा हुआ देखकर राव की कम्पनी के साथ लड़ाई बन्द कर दी और लैफ्टिनेंट अजाइबसिंह की कम्पनी को चीर कर निकलने का प्रयत्न किया। लेकिन उनके निकलने के सब सम्भव मार्ग बन्द थे। लेकिन उन पर जोर से गोलियां चलाई जा रही थीं, इसलिए उनको भारी हानि उठानी पड़ी। वे भयंकर रूप से मारे-काटे गये। सारे युद्ध-क्षेत्र में गोरे सैनिकों की लाशें बिखरी पड़ी थीं। यह अनुमान किया गया था कि शत्रु के कम-से-कम २५० सैनिक मारे गए थे, या गम्भीर रूप से घायल हुए थे। यह विनाशकारी लड़ाई दिन भर जारी रही, जब शाम हुई तो शत्रु ने लड़ाई बंद कर दी और अपनी हालत दुरुस्त करने के लिए वह पीछे हट गया। इस लड़ाई में हमारे सैनिकों ने शत्रु की हिम्मत तोड़ दी। इसके बाद कुछ समय तक उन्होंने हमारी किसी भी जगह पर हमला नहीं किया।

ये जून १६४४ के आखिरी दिन थे। बरसात बड़े जोर से शुरू हो हो गई थी। इससे हमारे एक-मात्र रसद का मार्ग तामू—पलेल सड़क-बरसाती नालों से बह गया था। मेह से अपना बचाव करने के लिए हमारे सैनिकों के पास कोई इंतजाम न था। और राशन एवं गोली बारूद का मिलना बंद हो गया था। स्थिति अत्यंत गम्भीर थी और ऐसा दिखाई देता था कि हमारे सैनिकों को सामान की कमी की वजह से पीछे हटना पड़ेगा। लेकिन कर्नल इनायत कियानी का ऐसा कोई इरादा न था। वे कहते थे कि यदि हमें तामू से राशन नहीं मिलता है, तो हमें अपने ही आस-पास से उसको इकट्ठा करने की व्यवस्था करनी चाहिए। उस समय तक उन्होंने हिन्दुस्तान के २०० वर्ग मील प्रदेश पर कब्जा कर लिया था। इस सबमें नेताजी के भेजे हुए

दलों की मदद से, जिन्हें स्वतंत्र किये हुए प्रदेश के शासन के कार्य की विशेष रूप से शिक्षा दी गई थी, कर्नल कियानी ही शासन कर रहे थे।

उन्होंने प्रमुख नागा सरदारों का एक सम्मेलन किया और उनको राशन की गम्भीर स्थिति बताई। उन्होंने कहा कि यदि इस प्रदेश में से ही काफी राशन इकट्ठा न किया गया तो हमारी फौज को तामू को पीछे हटना पड़ेगा। नागाओं ने कर्नल कियानी से प्रार्थना की कि वे पीछे न हटें और कहा—"आपकी फौज हिन्दुस्तान की आजादी की सेना है, आपको पीछे नहीं हटना चाहिए। खुद हमारे पास खाने की बहुत कमी है, लेकिन हम जितना खाना इकट्ठा कर सकेंगे, अवश्य इकट्ठा करके आपको देंगे। हम साथ ही जियेंगे या मरेंगे।"

वे अपने क्षेत्रों में लौट कर गये और जितना राशन इकट्ठा कर सके, करके अपने साथ ले आये। लेकिन एक पहाड़ी और अनुत्पादक क्षेत्र के लिए २००० सैनिकों का लम्बे अर्से तक पेट भरना संभव नहीं था। यह खाना जल्दी ही खत्म हो गया और कुछ दिन में फिर खाद्य-स्थिति पूर्ववत् गंभीर हो गई।

इम्फाल के गिर्द पहाड़ों में रहने वाले नागा लोगों ने हमारी फौज की बड़ी मदद की। उनकी जाति एक वीर और देशभक्त जाति है। उसने यथासम्भव हर तरह से हमारी सहायता की। उन्होंने हमारे गश्ती दस्तों को सहायता दी, रास्ता दिखाया और शत्रु की फौजों की स्थिति के बारे में बहुत ही उपयोगी जानकारी दी। साथ ही उन्होंने राशन भी दिया। ये कहते थे कि अंग्रेजों ने उनकी रानी पकड़ ली है और वे उसे हिन्दुस्तान में ले गये हैं। नागाओं के स्वभाव में एक विशेषता थी और वह यह कि वे जापानियों के साथ किसी भी रूप में सहयोग नहीं करना चाहते थे। इसके लिए जापानियों के अधिकृत प्रदेश में उन्हें भारी दंड चुकाना पड़ा। वे कहते थे—"हम अंग्रेजों को नहीं चाहते और न यह चाहते हैं कि जापानी ही हमारे क्षेत्र में रहें। हम तो

केवल यह चाहते हैं कि हमारे राजा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस रहें।"

इसी समय एक बहुत दुर्भाग्यपूर्ण घटना हो गई। गांधी ब्रिगेड के दूसरे कमांडर मेजर।बी० जे० एस० लड़ाई की कठिनाइयों को न सह सकने के कारण अंग्रेजों की ओर जा मिले। उनके जाने का असर हमारी फौज की सैनिक भावना पर पड़ा। उन्होंने मलाया में गांधी ब्रिगेड को सिखाने के सम्बन्ध में बहुत ही अच्छा काम किया था। और इम्फाल की शुरू की वास्तविक लड़ाई में भी अच्छा भाग लिया था।

जुलाई १९४४ के शुरू में शत्रु ने अपना पुनर्संगठन कर लिया और जिन स्थितियों में हमारी सेना लड़ रही थी उसकी भी जानकारी प्राप्त कर ली थी। इसलिए उन्होंने फिर हमला किया। कुछ स्थानीय जासूसों की मदद से वे हमारी अधिक छिन्न-भिन्न पंक्तियों में घुस आए और उन्होंने समस्त गांधी ब्रिगेड को घेर लिया। उसमें लड़ाई में बहुत अधिक सैनिकों के हताहत होने एवं बीमारी, भुखमरी के कारण हमारी आगे की पंक्तियों में २००० सैनिकों के बजाय केवल १००० सैनिक ही रह गए थे और इनका स्वास्थ्य भी बहुत बिगड़ गया था। शत्रु की सेना ने हमारे सदर मुकाम पर खास तौर से भयंकर हमला किया। स्थिति बहुत गम्भीर मालूम होती थी। लेकिन मेजर आबिदहुसेन ने, जो अब मेजर गरेवाल की जगह पर दूसरे कमांडर बना दिये गए थे; एक कम्पनी को लेकर घेरा तोड़ डाला और उसमें घुस गये। इस छोटी-सी फौज को पुनः संगठित करके मेजर हुसेन ने प्रत्याक्रमण किया। भयंकर लड़ाई के बाद उन्होंने गांधी ब्रिगेड को अत्यंत जोखम-भरी और नाजुक-हालत में से निकाल लिया।

शाम को गांधी ब्रिगेड ने शत्रु पर प्रत्याक्रमण किया जिसने मियून की पहाड़ियां ले ली थीं। इस लड़ाई में मेजर हसन, लैफ्टिनेंट रानराव और कप्तान ताज मुहम्मद ने विशेष रूप से वीरता दिखाई, इसलिए उन्हें सरदारे जंग के पदक दिये गए।

जुलाई के शुरू में लड़ाई का रूप बिलकुल बदल गया था। आजाद हिन्द फौज और जापानी फौज, जिन्होंने कोहिमा पर कब्जा कर लिया था, हटकर तामू चली गई थीं। इम्फाल के पश्चिम में जापानी और आजाद हिन्द फौज, जो बिशनपुर की ओर से इम्फाल पर हमला कर रही थीं, हटकर टिड्डिम पहुंच गई थीं। अब खतरा यह था कि गांधी ब्रिगेड की वापसी का मार्ग ही न कट जाय। इसके अलावा, कोहिमा से हमारी फौज के लौटने के बाद अंग्रेज बहुत बड़ी तादाद में सेना और सामान की मदद इम्फाल में ले आये थे। वे बर्मा में जापानियों के ऊपर बड़े पैमाने पर हमला करना चाहते थे। इस सबका पूरा जोर गांधी ब्रिगेड पर पड़ा जिसे अंत में कलेवा—तामू की मुख्य सड़क—में लौट जाने की आज्ञा दी गई। इस फौज को भी उन्हीं हालतों में लौटना पड़ा जिन हालतों में सुभाष ब्रिगेड को लौटना पड़ा था।

आजाद ब्रिगेड के कार्य

मलाया में गांधी ब्रिगेड के रवाना होने के तुरन्त बाद "आजाद ब्रिगेड" भी रवाना हो गया। यह अप्रैल १६४४ के पीछे के दिनों में रंगून में आया था और थोड़े दिन ठहरकर कलेवा के रास्ते तामू को चल पड़ा था। मई के मध्य में तामू पहुंचकर इसके कमांडर गुलजारा-सिंह डिवीजन के कमांडर जनरल एम० जैड० कियानी से चमोल जाकर मिले और उनसे अपने ब्रिगेड के काम के सम्बन्ध में आदेश लाए। आजाद ब्रिगेड को पलेल के आस-पास की अंग्रेजी फौज पर जोरदार छापे मारने का काम दिया गया था। उसको तामू—पलेल सड़क—के पूर्व का क्षेत्र-कार्रवाई के लिए दिया गया था और उसका सदर मुकाम मिन्था के पास रखा गया था।

ब्रिगेड ने कार्रवाई शुरू कर दी और उसके लिए अपने अड्डे तैयार कर लिये। लेकिन शत्रु पर बड़े पैमाने पर हमला करने से पहले ही मेंह शुरू हो गया और कर्नल गुलजारासिंह को डिवीजन-कमांडर की आज्ञा से अपनी टुकड़ी को पीछे हटने का आदेश देना पड़ा।

आजाद ब्रिगेड जिस समय पीछे हटा, उसी समय कलेवा तामू की मुख्य सड़क पर होकर कलेवा हट गया।

इम्फाल की लड़ाई में आजाद हिन्द फौज के दस्तों के कार्य

नं० १ इंजीनियरिंग कम्पनी

यह कम्पनी बर्मा में सन् १९४४ के शुरू में घुसी थी और होमा लिन—थाविगट्टुत क्षेत्र में भेजी गई थी। पहले इसकी कमान लैफ्टिनेंट शिन्दे के हाथों में थी, लेकिन पीछे कप्तान प्रीतमसिंह ने अपने हाथों में ले ली। लड़ाई में उसको पुल बनाने और तामू-ख्यूमाइन—उखरूल सड़क की मरम्मत करने का काम सौंपा गया था। उन्होंने लड़ाई के दिनों में शुरू से आखिर तक अच्छा काम किया और बरसात के पूरे मौसम में सड़कों को मरम्मत करके अच्छी हालत में रखा। यह भी आजाद हिन्द फौज के साथ कलेवा को हट गई।

नं० २ मोटर यातायात कम्पनी

इस कम्पनी ने अगस्त १९४३ में नेताजी के आते ही सिंगापुर में बनाई गई थी। इसमें अधिकांश नागरिक स्वयं-सेवक थे, जो नेताजी के आह्वान पर बहुत बड़ी संख्या में कम्पनी में शामिल हुए थे। कुछ ड्राइवरों ने अपनी व्यक्तिगत मोटरें और लारियां आजाद हिन्द फौज को दान कर दी थीं और स्वयं मामूली ड्राइवरों के रूप में कम्पनी में भर्ती हो गये थे। वे एक बहुत ही योग्य और परिश्रम अफसर हरनामसिंह की कमान में रखे गये थे। उनकी योग्यता और व्यवहार कुशलता के कारण उनके दस्ते की युद्ध-भावना बहुत दृढ़ बनी रही। यह सितम्बर १९४३ में बर्मा में चली गई।

लड़ाई के दिनों में कम्पनी ने मांडले और कलेवा के बीच में कार्रवाई की और सैनिकों एवं सामान को मोर्चे पर पहुंचाने में बहुत ही

अच्छा काम किया। जुलाई १६४४ में जब नं० १ डिवीजन को लौट-कर कलेवा जाना पड़ा, तब नं०२ मोटर यातायात कम्पनी कलेवा और येयू के बीच में कार्रवाई कर रही थी। उसने सबसे अच्छा काम इसी अर्से में, अर्थात् जुलाई से अक्टूबर १६४४ तक ही किया था। जब मूसलाधार बरसात हो रही थी, तब उसने नं०१ डिवीजन को येयू में पहुंचाया। मोर्चे से लौटने वाले सैनिकों की हालत बहुत खराब थी। यदि इस कम्पनी ने इतना अच्छा कार्य न किया होता तो उनमें से अधिकांश मर ही गए होते। उसके पास केवल २० पुरानी लारियां थीं। इनमें उसको ७००० आदमियों को १०० मील ले जाना था। सड़कें बहुत खराब थीं और घुटनों तक कीचड़ से भरी हुई थीं। अनेक नाले भी रास्ते में पड़ते थे जिनमें बरसात के कारण प्रायः बाढ़ आई हुई थी। इन लारियों में से अधिकांश बहुत समय तक कारखानों में रहती थीं, इसलिए उनको सड़कों पर चालू रखना निस्सन्देह बहुत ही प्रशंसनीय कार्य था। इसके अतिरिक्त उन्हें पैट्रोल और एंजिनों का तेल प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती थी। मुख्यतः रंगून के एक नागरिक जोरासिंह और कर्नल आर० एम० अरशाद के प्रभाव से ये चीजें चोर बाजार में से उपलब्ध होती थीं। हमारे साथी जापानियों ने हमारी लारियों के लिए अतिरिक्त हिस्से या एंजिन का तेल देने से इन्कार कर दिया था। बाद में नं० १ डिवीजन को मांडले से हरा कर पिनयानी ले जाने में उन्होंने अत्यन्त प्रशंसनीय सेवा की। यहां से उन्होंने दो बड़े अस्पतालों, रसद और गोला-बारूद के गोदामों एवं लगभग १००० बीमार सैनिकों को हटाया था।

कम्पनी और उसके कमांडर शुरू से आखिर तक अपने अच्छे कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं।

सितम्बर १६४४ में नं० १ डिवीजन के दस्ते दूसरे विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रकार केन्द्रित थेः—

डिवीजन का सदर मुकाम	मांडले
नं० १ (सुभाष ब्रिगेड)	बुदालिन
नं० २ (गांधी ब्रिगेड)	मांडले
नं० ३ (आजाद ब्रिगेड)	चौंगाऊ

आजाद हिन्द फौज के पीछे के अस्पताल मैम्यो और मनीवा में थे।

इस प्रकार मुख्य आजाद हिन्द फौज और जापानियों का आक्रमण समाप्त हो गया जो मई १६४४ में शुरू किया गया था। इस बीच में आजाद हिन्द फौज, जिसके पास बहुत घटिया सामान था और रसद की बहुत ही खराब व्यवस्था थी, हिन्दुस्तान की भूमि पर १५० मील बढ़ गई थी। जब आजाद हिन्द फौज हमला कर रही थी, तब लड़ाई के मैदान में हमारी फौज एक बार भी नहीं हारी और न कभी ऐसा अवसर आया था जब शत्रु-सेना और सामान की अच्छाई के बावजूद भी आजाद हिन्द फौज से किसी जगह को छीन सका हो। इसके विपरीत ऐसा बहुत कम हुआ जब आजाद हिन्द फौज ने किसी अंग्रेजी चौकी पर हमला किया हो और उसे जीत न लिया हो।

इन लड़ाइयों में आजाद हिन्द फौज के लगभग ४००० सैनिक मारे गए थे।

प्रत्येक आदमी यह अच्छी तरह से जानता है कि यह केवल दुर्भाग्य की ही बात थी जो आजाद हिन्द फौज और जापानी फौज इम्फाल को न जीत सकी। वे उसे जीतने ही वाली थीं और एक बार तो वे उससे केवल २ मील दूर रह गई थीं। खुद अंग्रेजों ने कई बार अपनी फौज इम्फाल से हटाने और दीमापुर को हटने का प्रयत्न किया, लेकिन कोहिमा की सड़क आजाद हिन्द फौज और जापानी फौज ने रोक ली थी। यदि यह सड़क अंग्रेजों के लौटने के लिए खुली रखी गई होती तो वे निश्चय ही इम्फाल से हट गये होते। लेकिन हमने तो सब अंग्रेजी फौज और लड़ाई के सामान को इम्फाल में ज्यों-का-त्यों पकड़ लेने की बात सोची थी।

इम्फाल एक मैदान में बसा है जो सब ओर से ऊंचे पहाड़ों से घिरा हुआ है। इन पहाड़ों में होकर तंग सड़कें जाती हैं। अंग्रेज इन्हीं रास्तों से पीछे हटे थे। लेकिन जब ये सड़कें बन्द कर दी गईं तो अंग्रेजी फौज का इम्फाल से पीछे हटना असम्भव हो गया।

नेताजी का ख्याल यह था कि आजाद हिन्द फौज जिस रूप में वह तब थी, इतनी शक्तिमान न थी कि हिन्दुस्तान पर पूरा बड़ा हमला कर सकती और यदि जापानी धोखा देते तो उनसे भी टक्कर ले सकती। इसलिए उनकी सम्मति यह थी कि अंग्रेजी फौज के ५ डिवीजन जिनमें डेढ़ लाख हिन्दुस्तानी सैनिक होंगे, ज्यों-के-त्यों पकड़ लिये जायं। जिससे उन हिन्दुस्तानी सैनिकों को स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने के लिए आजाद हिन्द फौज में शामिल होने के लिए सहमत किया जा सके। साथ ही उनका लड़ाई का जो सामान हाथ लगे उससे आजाद हिन्द फौज की तोपों की और दूसरी जरूरी युद्ध-सामग्री की कमी पूरी हो जाय।

अपने पीछे हटने का सब मार्ग बंद होने पर अंग्रेजी फौज को वहां ही जमकर लड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। उसके सामने दो ही मार्ग थे—या तो वह बिना शर्त आत्म-समर्पण कर देती या लड़ती चली जाती। उसने स्थिति अत्यंत नाजुक होने पर भी लड़ाई जारी रखने का निश्चय किया। उसने फौजी मोटरों और टैंकों को अपने शिखर के चारों ओर खड़ा करके इस्पाती घेरा बनाकर 'पेटी-व्यूह' बनाया। उनकी पैदल सेनायें इसमें ही रखी गई थीं। यह हमारे दुर्भाग्य की बात थी कि जापानी हवाई सेना, जो लड़ाई के पहले दिनों में यहां हवाई लड़ाई में अपना पलड़ा भारी रखती आई थीं, प्रशांत के द्वीपों में जाने के लिए मजबूर हो गई थी जहां अमरीकनों ने हमला किया था और जोरदार जहाजी और हवाई लड़ाई हो रही थी। जापानी हवाई सेना का यहां से चला जाना दर असल बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण था, क्योंकि यदि वह यहां रह जाती तो ब्रिटेन के इन पेटी-व्यूहों को तोड़ सकती थी। इसके

साथ ही जापानी हवाईसेना की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर अंग्रेज अराकान-मोर्चे से एक पूरा डिवीजन हवाई जहाजों में भरकर ले आये थे। यदि जापानी हवाई सेना यहां होती तो वह अंग्रेजों के लिए इस डिवीजन को अराकान से लाना असम्भव कर देती। लगभग ३ मास तक इम्फाल की अंग्रेजी फौज को हवाई जहाजों से सामान मिलता रहा। इनसे अधिक शक्तिमान जापानी हवाई फौज ने यह असम्भव कर दिया होता और शायद अंग्रेजों को आत्म-समर्पण के लिए बाध्य कर दिया होता। हम इम्फाल पर कब्जा न कर सके इसका दूसरा कारण यह था कि हमने आक्रमण करने में बहुत देर कर दी थी। जापानी जनरल स्टाफ का खयाल था कि उनकी फौज इम्फाल पर अधिक-से-अधिक मई के मध्य तक कब्जा कर लेगी और बरसात के आरम्भ होते ही हमें अपने जीते हुए प्रदेश में पैर जमाने का मौका मिल जायगा जिससे अंग्रेजों का प्रत्याक्रमण फिर असम्भव हो जायगा। दूसरी ओर, यदि स्थिति अनुकूल हुई तो आजाद हिन्द फौज और जापानी फौज कोहिमा से आगे बढ़ सकती है और ब्रह्मपुत्र को पार करके बंगाल और बिहार में घुस सकती है। दुर्भाग्य से यह अन्दाज भी गलत हो गया। जब बरसात शुरू हुई तब आजाद हिन्द फौज और जापानी फौज इम्फाल को लेने के लिए ही लड़ रही थीं। अंत में जून १६४४ के अंत में हमारे लिए अपने मोर्चे पर लड़ने वाली फौज को सामान और गोला-बारूद पहुँचाना लगभग असम्भव हो गया। मेंह और कीचड़ हमारे दो जबर्दस्त शत्रु बन गये और उन्होंने हमें इम्फाल पर से अपना घर उठाने के लिए मजबूर कर दिया।

एक अंतिम बात और। मैं यह बात बिलकुल असंदिग्ध रूप से कह सकता हूं कि जापानियों ने इम्फाल के हमले में आजाद हिन्द फौज को पूरी सहायता नहीं दी। दरअसल मैं यह ठीक कहता हूं कि उन्होंने हमें बुरी पटक दी। यदि उन्होंने आजाद हिन्द फौज को धोखा न दिया होता तो इम्फाल की लड़ाई का इतिहास दूसरा ही होता। मेरा अपना

खयाल यह है कि जापानी आजाद हिन्द फौज पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने अपने सम्पर्क-अफसरों की मार्फत यह पता लगा लिया था कि आजाद हिन्द फौज जापानियों का शासन किसी भी रूप में स्वीकार न करेगी और यदि जापानी अंग्रेजों की जगह प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करेंगे तो वह उनसे लड़ेगी। उनको आजाद हिन्द फौज की शक्ति बहुत बढ़ने से भय लगता था। उनको अपनी शक्ति में भी बहुत ज्यादा विश्वास था। वे समझते थे कि वे इम्फाल को आजाद हिन्द फौज की मदद के बिना ही ले लेंगे और इसमें उन्हें बहुत अधिक कठिनाई न होगी। ,मैम्यो के जापानी प्रधान सेनापति मुझसे बातचीत में जो शब्द कहा करते थे उनसे इसका समर्थन होता था। फरवरी १९४४ में जब मैंने उनसे पूछा कि वे इम्फाल की अंग्रेजी फौज के सम्बन्ध में क्या खयाल करते हैं, तो उन्होंने कहा—"फौज के सम्बन्ध में कुछ खयाल नहीं करता।" वास्तव में वे अपने पिछले अनुभव के आधार पर ऐसा कह रहे थे। वे उन जापानी कमांण्डरों में से थे जिन्होंने सिंगापुर में अंग्रेजी फौज को आत्म-समर्पण के लिए मजबूर कर दिया था।

इस प्रकार मुझे भय है कि हमारा पहला आक्रमण दुःखजनक रूप में समाप्त हो गया।

सितम्बर १९४४ में नेताजी येयू में थे। जहां वे मोर्चे की अगली पंक्ति से लौटी हुई फौज से मिले थे। कुछ दिन बाद वे मांडले लौट गये। जहां उन्होंने पहले डिवीजन के डिवीजन-कमांडर और सब ब्रिगेडों के कमांडरों का सम्मेलन किया। इस सम्मेलन में सब कमांडरों का विश्वास था कि जापानियों ने, मुख्यतः आजाद फौज के साथ नियुक्त जापान के सम्पर्क विभाग 'हिकाई की कान' ने हमारी उपेक्षा की; इसलिए यह निश्चय किया गया कि इस विभाग को खत्म कर दिया जाय और टोकियो की जापानी सरकार और बर्मा-स्थित जापानी सदर मुकाम से सीधा सम्पर्क रखा जाय।

अक्तूबर १९४४ के आरम्भ में नेताजी मैम्योगो गए; जहां हमने पिछले भाग में स्थित अस्पताल को देखा। उस अस्पताल में लगभग २००० रोगी थे। जिनमें से अधिकांश बन्दूक की गोली के घावों में छूत का विष लगने, पेचिश और मलेरिया से पीड़ित थे और उनकी अवस्था भयंकर थी। अस्पताल में झांसी की रानी दस्ते की लड़कियों की एक टुकड़ी थी जो नर्सों के रूप में कार्य कर रही थीं। उसको जितना काम करना पड़ता था उसको देखते हुए उनकी संख्या दरअसल बहुत ही अपर्याप्त थी। एक बंगाली लड़की बेला दत्त, जिसकी आयु केवल १६ वर्ष की थी, तेज पेचिस से पीड़ित ८९ सैनिकों की देख-भाल करती थी। वह उनके कपड़े धोती, उनको स्पंज से पोंछती और कपड़े पहनने में सहायता देती थी। जिस दिन नेताजी ने एक-एक रोगी को जाकर देखा उस दिन को मैं नहीं भूल सकता। प्रत्येक बीमार सैनिक ने अपनी-अपनी नर्सों की बहुत प्रशंसा की। उन्होंने नेताजी को कहा—"हमारी मातायें और बहनें भी इनसे अच्छी हमारी सार-संभाल नहीं कर सकती थीं।" नेताजी की आंखों में आंसू भर आये। उन्होंने बेला को उसके कार्य के लिए गौरवान्वित किया और आगे बढ़ गये।

वह ८९ रोगियों की देख-भाल कर रही थी और उसे प्रत्येक रोगी की बीमारी का पूरा हाल ज़बानी याद था। उस दिन उसे अपने उत्तम कार्य के कारण नायक से हवलदार बना दिया गया।

मैं झांसी की रानी दस्ते की लड़कियों के साहस, कष्ट-सहिष्णुता और कर्त्तव्य-परायणता की प्रशंसा करता हूँ। उनके अस्पताल पर अंग्रेजी हवाई जहाजों ने लगभग रोज बम गिराये और मशीनगनों से गोलियां बरसाईं। दो दिन तो कई लड़कियां जिन घरों में रहती थीं, उनके मलवे में लगभग गड़ गईं; लेकिन भारतमाता की इन वीर-पुत्रियों ने साहस को हाथ से कभी नहीं खोया।

अस्पताल के निरीक्षण के समय एक दूसरी घटना हुई। नेताजी एक ऐसे सैनिक के पास पहुंचे जो बेरी-बेरी रोग से पीड़ित था। उसका

चेहरा सूजा हुआ था। नेताजी ने उससे विनोद में कहा—आप कब अच्छे होंगे ?" उसने तुरंत उत्तर दिया—"नेताजी, जिस दिन आप हमें आगे बढ़ने की आज्ञा देंगे, उस दिन हम बिलकुल नीरोग हो जायंगे।"

जब नेताजी अस्पताल का निरीक्षण कर रहे थे तब उनको मालूम हुआ कि वहां दवाएँ, खास तौर से पेचिस की दवाएँ बहुत कम हैं। नेताजी को उन बेचारे सैनिकों की अवस्था से बहुत दुःख हुआ। उन्होंने उन्हें दावत देने का निश्चय किया उन्होंने अपने निवास-स्थान पर उनके लिए जलेबियां तैयार करने और अस्पताल में भेजने की आज्ञा दी। दूसरे दिन वे फिर अस्पताल गए और एक पेचिश के रोगी को पूछा कि 'क्या उन्हें अपना जलेबी का हिस्सा मिल गया और उसे वह कैसी लगी।' सैनिक ने उत्तर दिया—"नेताजी, मुझे वह बहुत अच्छी लगी। सच तो यह है कि डाक्टर की दवा की अपेक्षा उससे मुझे अधिक लाभ हुआ है। कृपा करके कुछ जलेबियां और भेज दें।" तब से नेताजी जलेबी-हकीम प्रसिद्ध हो गये।

नेताजी की रंगून को वापिसी

११ अक्तूबर १९४४ को नेताजी मांडले से रंगून को रवाना हो गए। वे तब आगे की पंक्तियों की सब फौज का निरीक्षण कर चुके थे। उनके साथ उनका निजी स्टाफ और पहिले डिवीजन के और उसके ब्रिगेडों के कमांडर थे। नेताजी जब मांडले में थे, तब उनको ६ अक्तूबर को जापान सरकार का टोकियो और लड़ाई के भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर बातचीत करने के लिए निमन्त्रण मिला था। नेताजी और जापान सरकार के बीच ऐसी बातें प्रायः होती रहती थीं। एक राजनीतिज्ञ के रूप में नेताजी की योग्यता का जापानी बहुत सम्मान करते थे। वे उनसे हिन्दुस्तान-सम्बन्धी मामलों में ही नहीं, बल्कि जापान की वैदेशिक-नीति सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के

सम्बन्ध में भी सलाह लिया करते थे। हमने भी अपनी ओर से इस निमंत्रण का स्वागत किया, क्योंकि उससे इम्फाल के आस-पास की लड़ाई में युद्ध-भूमि में जो अनुभव मिला था उसको ध्यान में रखते हुए लड़ाई के भावी कार्यक्रम का निर्णय करने का अवसर मिलता था।

रंगून में आते ही मंत्रिमंडल की बैठक की गई। नेताजी ने मंत्रि-मण्डल के गैर-फौजी सदस्यों को युद्ध-स्थिति बताते हुये कहाः—

"हमने लड़ाई की कार्रवाई बहुत देर से शुरू की। हमारी सड़कों पर पानी भर गया। नदियों में धार के विपरीत जाना पड़ता था। इसके मुकाबले शत्रु की सड़कें बहुत अच्छी थीं। यदि हम मेंह बरसने से पहले इम्फाल ले लेते तो अच्छा होता। यदि हमारे पास अधिक हवाई-शक्ति होती और शत्रु-सेना का जबतक एक भी सैनिक जीवित रहे तबतक मुकाबला करते रहने की आज्ञा न दी गई होती तो हमें सफलता मिल जाती। यदि हमने जनवरी में हमला शुरू किया होता तो हमें सफलता मिल जाती। सभी क्षेत्रों में बरसात शुरू होने तक हमने सभी मोर्चों पर शत्रु को रोक रखा था या हम आगे बढ़े थे। अराकान के क्षेत्र में शत्रु-सेना रोक दी गई थी। कालाडान के क्षेत्र में हमने शत्रु को हरा दिया था और हम आगे बढ़ गए थे। हम टिड्डिम में आगे बढ़े थे। पलेल और कोहिमा में भी प्रगति की गई थी। ढाका के क्षेत्र में शत्रु रोक दिया गया था। यह सब शत्रु-सेना में सैनिकों की संख्या बहुत अधिक होने और सामान और राशन की पर्याप्तता के बावजूद किया गया था।

जब बरसात शुरू हो गई तो हमें इम्फाल में बड़ी कार्रवाई रोक देनी पड़ी। शत्रु के यांत्रिक डिवीजन भी आ पहुँचे थे, इसलिए उसने कोहिमा-इम्फाल सड़क पर फिर कब्जा कर लिया था। तब यह प्रश्न उठा कि हम कहां मोर्चा बांधकर अपने पैर जमायें। हमारे सामने दो मार्ग खुले थे—हम या तो विशनपुर-पलेल में अपना मोर्चा बांधे और

शत्रु को आगे न बढ़ने दें या पीछे को हटें और किसी अधिक सुविधा-जनक स्थान पर जम जायें।......

इस लड़ाई से हमने क्या सीखा है ? अभी हम लड़ाई में दीक्षित हो चुके हैं। भूतपूर्व नागरिकों के एक दल ने, जैसे गोला-बारूद खत्म होने पर पीछे हटने की आज्ञा दी गई थी, पीछे न हटने का निर्णय किया। इन सैनिकों ने संगीनें चढ़ा कर शत्रु पर हमला किया और जीत कर लौटे।

हमारी फौज में विश्वास बहुत बढ़ गया है। हमको यह मालूम हुआ है कि शत्रु की ओर जो हिन्दुस्तानी सेना है वह हमारी ओर आने के लिये तैयार है हमें अब उसे इस ओर लेने की व्यवस्था करनी हैं। हम ने शत्रु की चालों का पता लगा लिया हैं। उसके कागजात हमारे हाथ लगे हैं। हमारे कमांडरों को अनुभव प्राप्त हुआ है वह भी मूल्य-वान है। जब तक लड़ाई शुरू नहीं हुई थी तबतक जापानियों को हमारी सेना में विश्वास न था और वे उसको जत्थों के रूप में विभक्त करके जापानी सेना के साथ जोड़ देना चाहते थे। मैं चाहता था कि हमारी सेना को एक मोर्चा दे दिया जाय और अंत में ऐसा ही किया गया। हमारे डिवीजन के कमांडर और दूसरे अफसरों ने इस लड़ाई से बहुत लाभ उठाया है।

साथ ही हमें अपनी कमियां भी मालूम हो गई हैं। कठिन पहाड़ी प्रदेश होने से हमारी यातायात और रसद्-व्यवस्था दोषपूर्ण थी। अगले मोर्चे पर हमारा कोई प्रचार न था। यद्यपि हमने इसके लिए कार्यकर्ता तैयार कर लिये थे, लेकिन यातायात-साधनों की कमी के कारण हम इनका उपयोग ही नहीं कर सकें। भविष्य में आजाद हिन्द फौज के प्रत्येक दस्ते के साथ एक प्रचारक टुकड़ी संयुक्त रहेगी। हमें लाउडस्पीकरों की जरूरत थी लेकिन जापानियों ने हमें लाउडस्पीकर नहीं दिये। अब हम अपने लाउडस्पीकर स्वयं बना रहे हैं।"

इसके बाद सर्वसम्मति से यह तय किया गया कि हम लड़ाई को

तबतक जारी रखेंगे जबतक उसका अंत अधिक अच्छा न हो, जबतक हमारा देश स्वतंत्र न हो जाय। यह भी निश्चय किया गया कि हम अंग्रेजों से जहां भी मुकाबला होगा, वहां ही लड़ते रहेंगे। इस कार्य के लिए और शत्रु की बढ़ती हुई शक्ति को ध्यान में रख कर अपने प्रयत्नों में वृद्धि करना और पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों के सब साधनों का पूर्ण सैनिक उपयोग करना आवश्यक समझा गया।

इम्फाल के गिर्द होने वाली लड़ाई में हमें एक बड़ी कमजोरी दीख पड़ी और यह यह थी कि हम राशन, दवाओं और दूसरी चीजों के सम्बन्ध में जापानियों पर बहुत ज्यादा निर्भर रहे। इसलिए यह निर्णय किया गया कि अगली लड़ाई में ये दोष न रहने दिए जायं। एक रसद-विभाग शुरू किया गया और श्री पमानन्द रसद-मंत्री नियुक्त किए गए। दूसरे प्रस्ताव में जापानी-सम्पर्क विभाग 'हिकारी की कान' को तोड़ देने की मांग की गई जिसकी मार्फत हम जापानी सरकार से बातचीत करते थे और टोकियो की जापानी सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने पर जोर दिया गया। इसलिए अस्थायी आजाद हिन्द फौज का एक नया विभाग 'वैदेशिक विभाग' के नाम से खोलने का फैसला किया गया और जनरल चटर्जी विदेश-मंत्री बनाये गए। जापान के साथ राजदूतों के आदान-प्रदान का भी निश्चय किया गया।

अंत में भविष्य में आजाद हिन्द फौज की सब कार्रवाइयों का संचालन करने के लिए एक युद्ध-कौंसिल चुनी गई। यह सोचा गया था कि इस कार्य का संचालन करने के लिए मंत्रि-मंडल बहुत बड़ा है, इसलिए एक छोटी और अधिक कार्यदक्ष कौंसिल होनी चाहिए। युद्ध-कौंसिल के सदस्य इस प्रकार चुने गये थे—

१. नेता जी	२. जनरल भोंसले
३. जनरल चटर्जी	४. जनरल एम० जेड० कियानी
५. कर्नल अजीज़ अहमद	६. कर्नल अहसान कादिर
७. कर्नल हबीबुर्रहमान	८. कर्नल गुलजारासिंह

९. श्री परमानन्द १०. श्री राघवन

११. कर्नल आई० जे० कियानी १२. कर्नल शाहनवाज

युद्ध-प्रयासों को तीव्र करने के निश्चय के अनुसार आजाद हिन्द फौज में सैनिकों की संख्या बढ़ाने की दृष्टि से एक भर्ती-आन्दोलन शुरू किया गया। इपोह, कुआलालमपुर, पेनांग, सिंगापुर और रंगून के रंगरूट सिखाने के केन्द्र बड़े कर दिये गए। इसके फलस्वरूप आजाद हिन्द फौज में सैनिकों की संख्या बहुत बढ़ गई और अंत में ५०००० तक पहुंच गई। उसी समय आजाद हिन्द फौज के दूसरे डिवीजन को बर्मा जाने की आज्ञा दी गई और कर्नल जी० आर० नागर की कमान में एक तीसरा डिवीजन बनाया गया। दूसरे डिवीजन के अगले दस्ते अक्तूबर १९४४ में रंगून में पहुँचने लग गए थे।

नेताजी नवम्बर के शुरू में जनरल चटर्जी, जनरल कियानी और कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ टोकियो को रवाना हुए। रवाना होने से पहले नेताजी ने कर्नल अजीज अहमद को कार्यवाहक प्रधान सेनापति नियुक्त किया और जनरल एम० जेड० कियानी की जगह, जो युद्ध-कौंसिल के सेक्रेटरी नियुक्त कर दिये गए थे, मेरी नियुक्ति कर दी गई। नेताजी ने यह आज्ञा भी निकाली कि मांडले के आस-पास आजाद हिन्द फौज के जितने सैनिक हैं वे मिनमाना में, जो २०० मील के लगभग दूर है लौट जायं। मैं दिसम्बर १९४४ में मांडले में आया और पहले डिवीजन को वहां से हटाने का काम अपने हाथ में लिया। हमें बहुत सी कठिनाइयां पार करनी थीं। सवारियां बहुत अपर्याप्त थीं। बम-वर्षकों के भारी-भारी हमलों के कारण रेलवे लाइनें प्रायः सदा ही बन्द रहती थीं। अंत में जनवरी १९४५ के अंत में महिला डिवीजन और मैम्यो एवं मोनीवा के अस्पताल हटाने का काम पूरा कर दिया गया और मिनमाना में एक नया डिवीजन-शिविर स्थापित कर दिया गया।

इस समय नेताजी और उनका दल टोकियो से लौट आए थे। जापानी सरकार उन सब बातों को मान गई थी जो नेताजी ने उनके

सामने रखी थीं। इसलिए आजाद हिन्द फौज के दूसरे डिवीजन को पोपा की पहाड़ियों के पास लड़ाई शुरू करने के लिए भेजने का फैसला किया गया।

: १० :

नेताजी-सप्ताह

('एक विद्रोहिणी पुत्री' की दिनचर्या पुस्तिका से उद्धृत)

सुभाष बोस २ जुलाई को मोर्चे पर से वापिस आ गए। वे सारे मोर्चे पर पिछले दो महीने से दौरा कर रहे थे और फौज के सैनिकों में स्वयं नया उत्साह भरकर आए थे।

आज 'नेताजी-सप्ताह' शुरू होता है। नेताजी सुभाष बोस ने पिछले साल आज के दिन ही स्योनान (सिंगापुर) सम्मेलन में 'पूर्वी एशिया' आन्दोलन की बागडोर संभाली थी। गत वर्ष ४ जुलाई को ही ३० लाख हिन्दुस्तानी सुभाष बाबू के पीछे संयुक्त होकर खड़े हुए थे और उन्होंने यह शपथ ली थी कि उनका नारा होगा—'स्वतंत्रता या मृत्यु!'

आज फिर जयन्ती का हॉल ठसाठस भरा हुआ था। बाहर सड़क पर भी लाउड-स्पीकर लगाये गये थे। सड़क का खरंजा पत्थरों के बजाय मनुष्यों के सिरों से बना हुआ दिखाई देता था। बाहर की सड़क सीढ़ियां, भवन, उसकी गैलरियां और उसका प्रत्येक कोना संधर्म-रत जन-समुदाय से भरा हुआ था। नेताजी ने भाषण देते हुए कहा—

"पिछले १२ महीने के हमारे कार्य संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१. हमने 'पूर्ण सैनिक तैयारी' की योजना के अनुसार जन; धन और सामान इकट्ठे कर लिए हैं।

२. हमने आधुनिक ढंग की लड़ाई अपनी सेना को सिखा दी है और उसको बहुत बड़ा कर लिया है।

३. हमने अपनी सेना में 'झांसी की रानी रेजीमेंट' के नाम से एक महिला-सैनिक विभाग संगठित कर लिया है।

४. हमने अस्थायी आजाद हिन्द सरकार के नाम से अपनी सरकार बना ली है और मित्र देशों ने उसे मान्य कर लिया है।

५. हमने अंडमान और निकोबार द्वीपों को प्रथम स्वतंत्र भूमि के रूप में प्राप्त कर लिया है।

६. हम अपना सदर मुकाम बर्मा में ले आए हैं और फरवरी १६४४ में हमने स्वतंत्रता की लड़ाई शुरू कर दी थी। २१ मार्च को हमने संसार में यह घोषणा की कि हमारी फौज हिन्दुस्तान में प्रविष्ट हो गई है।

७. हमने अपना समाचार-पत्रीय-प्रचार प्रकाशन विभाग बहुत बढ़ा लिया है।

८. हमने 'आजाद हिन्द' दल' एक नई संस्था बनाई है जो स्वतंत्र हिन्दुस्तान में शासन और पुनर्निर्माण का कार्य अपने हाथों में लेगी।

९. हमने बर्मा में 'आजाद हिन्द राष्ट्रीय बैंक लिमिटेड' नाम से अपना निजी बैंक बना लिया है। हमने स्वतंत्र हिन्दुस्तान में चलाने के लिए अपने सिक्के बनाने की आज्ञा दे दी है।

१. हमने मोर्चे के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी युद्ध-शक्ति का अच्छा परिचय दे दिया है और हमारी फौज हिन्दुस्तान में लड़ रही है; यद्यपि उसकी प्रगति मन्द है; लेकिन वह सब कठिनाइयों और कष्टों के बावजूद लगातार जारी है।...............

किसी समय लोग संदेह करते थे कि आजाद हिन्द फौज लड़ेगी भी या नहीं और यदि वह लड़ी भी तो क्या शत्रु की सेना को सचमुच हरा सकेगी? हम इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए हैं और वास्तव में इससे हम में असीम विश्वास पैदा हो गया है।............

जब से हिन्दुस्तान की भूमि पर लड़ाई शुरू हुई है, बर्मा से यह लड़ाई हमारी लड़ाई बन गई है और इस विचार से कि यह लड़ाई

अब हमारी लड़ाई है, हमारी लड़ाई में लड़ने वाली फौज में ही नहीं बल्कि मोर्चे के पीछे के लोगों में भी एक नया उत्साह उत्पन्न हो गया है।

अब तक हमारी फौज ने उन कष्टों की कोई शिकायत नहीं की है जो उसको भुगतने पड़ रहे हैं। हमारे सैनिकों की केवल एक शिकायत आई है और वह तब जब कि उन्हें आगे भेजने में देर की गई थी। उदाहरण के लिए मैं एक अस्पताल के निरीक्षण के लिए गया जहां वे लोग थे जो या तो घायल हुए थे, या मलेरिया या दूसरी बीमारियों से पीड़ित थे। इन सब सैनिकों ने यह इच्छा प्रकट की थी कि वे अच्छे होते ही मोर्चे पर भेज दिये जायं। ये वे सैनिक हैं जो मोर्चे पर लड़े हैं और वहां की हालतों को जानते हैं, फिर भी वे पूर्णतः प्रसन्नचित्त और आशान्वित हैं। कोई अत्युक्ति किये बिना मैं कह सकता हूं कि असीम आशा का यह भाव पूर्वी एशिया के समान हिन्दुस्तानियों में व्याप्त है।

एक दूसरा भी कारण है जिससे हममें आशावाद अधिक सशक्त हो जाता है। और वह है हिन्दुस्तान के भीतर की स्थिति। आप यह भली-भांति जानते हैं कि अभी तक कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच कोई समझौता नहीं हो सका है। जब कुछ समय पहले महात्मा गांधी अचानक छोड़ दिये गए थे तब बहुत से लोग यह अंदाज लगा रहे थे कि उनकी रिहाई पूर्णतः स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों से हुई है या यह समझौते की भूमिका है। अब यह बिलकुल स्पष्ट होगया है कि महात्मा गांधी की रिहाई विशुद्ध स्वास्थ्य सम्बन्धी आधार पर हुई है। उसके पीछे कोई राजनीतिक हेतु छिपा नहीं है। जब तक महात्मा गांधी और ब्रिटिश सरकार के बीच समझौता नहीं होता, तब तक हमें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। यदि हिन्दुस्तान में कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच समझौता नहीं होता है तो इससे हमारा काम अधिक सुगम हो जाता है। अभी तक समझौते का बिलकुल कोई चिन्ह

नहीं दिखाई देता और हमको एक बात अत्यंत उत्साहप्रद है और वह यह कि महात्मा गांधी के सभी वक्तव्यों में एक ही दिशा लक्षित है। वे कहते हैं कि 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव को रखते समय दो वर्ष पहले उन्होंने जो रुख ग्रहण किया था उसमें परिवर्तन करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता।......

इसलिए मैं तो इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि हिन्दुस्तान की स्थिति हमारे लिए अत्यंत अनुकूल है। यह बात प्रत्येक आदमी आसानी से समझ सकता है कि जब तक कांग्रेस ब्रिटिश सरकार से समझौता नहीं करती, उसके सामने आत्म-समर्पण नहीं कर देती, तब-तक लोगों का आम रुख अंग्रेजों के विरुद्ध ही रहेगा। जैसे ही हमारी लड़ाई बढ़ेगी वैसे ही लोग तुरंत यह अनुभव कर लेंगे कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए लड़ने के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। वे तब लड़ाई में हिस्सा लेने और उसको चलाने के लिए पूरी सहायता देने का निर्णय करेंगे।"

लोगों ने नेताजी का भाषण मंत्र-मुग्ध की तरह सुना। लोग उनका भाषण सुनने के बाद डेढ़ घण्टे में वहां से हट सके। उनमें ऐसा उत्साह था।

९ जुलाई १९४४

आज नेताजी सप्ताह का दूसरा दिन था। रंगून में आजाद हिन्द फौज के सैनिकों ने एक परेड की जिसमें सुभाषबाबू ने सलामी ली। वह बड़ा ही प्रभावोत्पादक दृश्य था। हमारी रेजीमेंट का संगठन पूर्ण था; इसलिए सुभाष बाबू ने हमारी बड़ी प्रशंसा की।

नेताजी ने फौज के सैनिकों से कहा—

"आजाद हिन्द फौज के निर्माण से हमारे दुश्मनों को बड़ी चिंता और परेशानी होगई है। उन्होंने कुछ समय उसके अस्तित्व की उपेक्षा करने का प्रयत्न किया, लेकिन जब यह खबर छिपाई न जा सकी तो दिल्ली के हिन्दुस्तान-विरोधी रेडियो ने यह प्रचार शुरू किया है कि

जापानियों के नियंत्रण में जो युद्ध-बंदी थे, उनको सेना में भर्ती करने के लिए डराया-धमकाया गया है। लेकिन यह प्रचार अधिक समय तक नहीं टिक सका, क्योंकि हिन्दुस्तान में यह खबर पहुँचने लग गई थी कि पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों की बड़ी संख्या आजाद हिन्द फौज में शामिल हो रही है। इसलिए हिन्दुस्तान-विरोध रेडियो को विशेष रूप से अपने हथकंडे बदल देने पड़े। तब उन्होंने यह नया प्रचार शुरू किया कि हिन्दुस्तानी युद्ध-बंदियों ने आज़ाद हिन्द फौज में शामिल होने से इन्कार कर दिया है; इसलिए अब नागरिकों पर सेना में भर्ती होने के लिए दबाव डाला जा रहा है। शायद दिल्ली के इन बुद्धिमान क्षेत्रों को यह नहीं सूझा कि यदि युद्ध-बंदियों को फौज में भर्ती होने के लिए डराना और धमकाना असम्भव था तो नागरिकों को सैनिक बनाने के लिए दबाना तो और भी असम्भव था।

जिसमें तनिक भी सहज बुद्धि है वे यह अनुभव करेंगे कि यद्यपि भड़ैत सेना दबाव से संगठित की जा सकती है, लेकिन स्वेच्छा से भरती होने वाली सेना इस प्रकार नहीं संगठित की जा सकेगी। कदाचित् आप किसी आदमी को अपने कन्धे पर बन्दूक उठाने के लिए मजबूर कर भी सकें; लेकिन आप उसे उस उद्देश्य को लिए, जिसे वह अपना नहीं समझता, अपना जीवन देने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।

इससे पहले हमारे दुश्मन कहा करते थे कि आजाद हिन्द फौज कोई फौज नहीं है। यह तो केवल प्रचार की चीज है और यह कि यह कभी नहीं लड़ेगी। बाद में दिल्ली का हिन्दुस्तान विरोधी रेडियो चीखने लगा कि आजाद हिन्द फौज ने हिन्दुस्तान की सीमा पार नहीं की है। अब सीमा भी पार कर ली गई और हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की लड़ाई उसकी भूमि पर लड़ी जा रही है। अब शत्रु का प्रचार एक नई निराशा-जनक चाल के आधार पर किया जा रहा है। अब उसने हमारे दिल्ली पहुँचने के सम्बन्ध में पूर्ण तारीखें दी हैं और उनको हमारे द्वारा निश्चित किया हुआ बताया है। वे अब हमें निर्धारित

कार्यक्रम के अनुसार अपने लक्ष्य पर न पहुँचने पर हमें बुरा-भला कह रहे हैं।

मैं आपको अभी कह चुका हूं कि आजाद हिन्द फौज भूतपूर्व सैनिकों और नागरिकों की बनी हुई है। मैं आपको यह भी सूचित कर सकता हूँ कि इसमें पुरुष ही नहीं है, स्त्रियां भी हैं।

मित्रो, आजाद हिन्द फौज ऐसी सेना है जिसमें हिन्दुस्तानी शामिल हैं, इतना ही नहीं है, बल्कि उसको शिक्षित भी हिन्दुस्तानियों ने ही किया है। यह सेना अब हिन्दुस्तानी अफसरों की कमान में मोर्चे पर लड़ रही है।

आजाद हिन्द फौज अस्थायी आजाद हिन्द सरकार का सैनिक-संगठन है। अस्थायी आजाद हिन्द सरकार और आजाद हिन्द फौज हिन्दुस्तान राष्ट्र के सेवक हैं। उनका काम लड़ना और हिन्दुस्तान को आजाद कराना है। जब हिन्दुस्तान आजाद हो जायगा, तब अपनी इच्छा के अनुसार यह फैसला करना कि हिन्दुस्तान की सरकार का क्या रूप हो, हिन्दुस्तान के लोगों का काम होगा। तब सरकार स्वतंत्र हिन्दुस्तान में स्थायी सरकार बनाने का प्रयत्न करेगी और यह सरकार हिन्दुस्तान के लोगों की इच्छा के अनुसार बनाई जायगी। उस गौरव-पूर्ण दिन को देखने के लिए हम श्रम कर रहे हैं, अपना पसीना बहा रहे हैं और लड़ रहे हैं।"

हजारों आदमियों के कंठों से 'जयहिन्द' की आवाजें निकलीं। सैनिकों ने अपनी बन्दूकें उठाईं और अपने कन्धों पर ऊंची रखीं और तब 'चलो दिल्ली' और 'जय हिन्द' के गगन-भेदी नारे लगाये।

तब नेताजी ने अराकान के मोर्चे पर हमारे वीरों ने जो कर्तब दिखाये, उनकी चर्चा की और ·········को सरदारे जंग का पदक दिया। उन्होंने अराकान-मोर्चे पर बड़ी योग्यता से सेना का संचालन किया था। उन्होंने लैफ्टिनेण्ट प······को 'वीरे हिन्द' पदक ऊंची देशभक्ति साहस और

कर्त्तव्य-परायणता के पुरस्कार-स्वरूप भेंट किया; जो उन्होंने ४ फरवरी को दिखाई थी ।

६ जुलाई '४४

आज नेताजी ने रेडियो पर गांधीजी को सम्बोधित करते हुए भाषण दिया ।

वे इस प्रकार बोले मानो वे अपने पिता से बोल रहे हों। उनकी वाणी सीधी उनके हृदय से निकल रही थी, वे अपने दुखों और सुखों को बिना छिपाए प्रकट कर रहे थे और उन्होंने अपने विरोध की एक भी बात नहीं छिपाई थी।

उन्होंने कहा था—

"महात्मा जी,

अंग्रेजों की जेल में श्रीमती कस्तूरबा की दुःखजनक मृत्यु के बाद आपके देशवासियों का आपके स्वास्थ्य के हाल के सम्बन्ध में चिन्तित होना स्वाभाविक था ।

हिन्दुस्तान के बाहर के हिन्दुस्तानियों के लिए तरीकों का भेद घरेलू मतभेदों के समान है। जब लाहौर कांग्रेस में सन् १९२९ में आपने स्वतंत्रता के प्रस्ताव का समर्थन किया तब से राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के सब सदस्यों का एक ही ध्येय है। हिन्दुस्तान के बाहर के हिन्दुस्तानी आपको अपने देश की वर्तमान जागृति का जन्मदाता मानते हैं। जब आपने अगस्त १९४२ में वीरता पूर्वक 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को रखा तब से हिन्दुस्तान के बाहर के हिन्दुस्तानियों और हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के समर्थकों का आपके प्रति आदर-भाव और भी गहरा हो गया है ।

यदि हम ब्रिटिश सरकार और अंग्रेज़ लोगों को अलग-अलग समझेंगे तो हम गम्भीर भूल करेंगे। निःसन्देह संयुक्त राज्य की भांति ब्रिटेन में भी आदर्शवादी लोगों का एक दल है जो हिन्दुस्तान को स्वतंत्र देखना चाहता है। ये आदर्शवादी, जिन्हें उनके अपने देशवासी पागल

मानते हैं, संख्या में बहुत थोड़े हैं। जहां तक हिन्दुस्तान का सम्बन्ध है, समस्त व्यावहारिक दृष्टियों से ब्रिटिश सरकार और अंग्रेज लोग एक ही विचार रखते हैं। संयुक्त राज्य के युद्ध-उद्देश्यों के सम्बन्ध में यह कह सकता हूं कि अमरीकी शासक-गुट संसार पर प्रभुत्व स्थापित करने का स्वप्न देखता है। यह शासक-गुट और इसका प्रतिनिधित्व करने वाला समुदाय खुल्लम-खुल्ला कहते हैं कि यह 'अमरीकी शताब्दि' है। इस शासक-गुट में ऐसे उग्रवादी भी हैं जो ब्रिटेन को संयुक्त राज्य का ४६ वां राज्य भी कहते हैं।

महात्मा जी, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैंने इस जोखम-भरे कार्य को पूरा करने के लिए रवाना होने से पहले दिन, सप्ताह और महीने इस प्रश्न के सब पहलुओं पर विचार करने में बिताए। अपने लोगों की सेवा अपनी योग्यता के अनुसार करने के बाद मुझे ऐसी कोई इच्छा नहीं हो सकती थी कि मैं देश-द्रोही बनूं या ऐसा काम करूं कि कोई मुझे देश-द्रोही कहना उचित समझे।......मैं अपने देशवासियों की उदारता और गहरे प्रेम के कारण ही यह उच्चतम सम्मान पा सका हूं जिसे हिन्दुस्तान का कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता प्राप्त कर सकता है। मैंने ऐसे पक्के और सच्चे साथियों का एक दल भी बनाया था जिनका मुझमें पूरा विश्वास था। एक जोखमभरी खोज में विदेशों को रवाना होकर मैं अपने जीवन और भविष्य को ही खतरे में नहीं डाल रहा था, बल्कि इससे भी अधिक अपने दल के भविष्य को बिगाड़ रहा था। यदि मुझे तनिक भी आशा होती कि विदेशों में कार्रवाई किये बिना हम स्वतंत्रता ले सकते हैं तो मैं संकट-काल में हिन्दुस्तान से कभी न आता। यदि मुझे अपने जीवन में इस लड़ाई की भांति ऐसा कोई दूसरा अवसर मिलने की भी आशा होती जिसमें हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते तो इसमें सन्देह है कि मैं अपने देश से यहां आता।......

अब मुझे केवल एक प्रश्न का उत्तर देना रह जाता है जो धुरी

देशों के सम्बन्ध में है। क्या यह सम्भव हो सकता है कि वे मुझे धोखा दे देते ? मेरा विश्वास है कि सभी लोग यह स्वीकार करेंगे कि अत्यंत चतुर और चालाक राजनीतिज्ञ अंग्रेजों में मिलते हैं। जो आदमी अपनी तमाम उम्र अंग्रेज राजनीतिज्ञों के साथ काम करता या उनसे लड़ता रहा है, उसे संसार का कोई दूसरा राजनीतिज्ञ धोखा नहीं दे सकता। यदि अंग्रेज राजनीतिज्ञ मुझे डरा या फुसला नहीं पाए हैं तो कोई दूसरा राजनीतिज्ञ इसमें सफल नहीं हो सकता । यदि ब्रिटिश सरकार जिसने मुझे दीर्घ काल तक कैद रखा है, कष्ट दिये हैं और मेरे शरीर पर प्रहार किये हैं, मेरा साहस नहीं तोड़ सकी है तो कोई दूसरी ताकत ऐसा करने का साहस नहीं कर सकती। मैंने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया है जिससे देश के आत्म-सम्मान या हितों को तनिक भी आघात पहुंचे।

किसी समय जापान हमारे शत्रु का मित्र था। जब तक अंग्रेजों और जापान की मित्रता रही, तब तक मैं जापान नहीं गया था। जब तक दोनों देशों के बीच साधारण कूटनीतिक सम्बंध थे, तब तक मैंने इस भूमि में प्रवेश नहीं किया। जब जापान ने अपने इतिहास का महत्त्वपूर्ण कदम उठाया, ब्रिटेन और अमरीका के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी तब मैंने अपनी इच्छा से जापान जाने का निश्चय किया। अपने अनेक देशवासियों के समान सन् १९३७-३८ में मेरी सहानुभूति चीन की राष्ट्रीय सरकार की ओर थी। आपको स्मरण होगा कि कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में मैंने दिसम्बर १९३८ में चीन देश को एक डाक्टरी दल भेजा था।......

महात्मा जी, दूसरों की अपेक्षा आप अधिक अच्छी तरह से जानते हैं कि वादों को हिन्दुस्तान के लोग कितने सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। यदि जापान की नीति सम्बंधी घोषणाएं महज़ वादे ही होते तो जापान का मेरे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा होता।.........

महात्मा जी, आज मैं आपसे कुछ बात अपनी आज़ाद हिन्द सर-

कार के सम्बन्ध में, जो हमने यहां बनाई है, कहना चाहूंगा। अस्थायी सरकार का उद्देश्य हिन्दुस्तान को सशस्त्र लड़ाई करके अंग्रेजी राज के जुए से मुक्त करना है। यदि हमारे शत्रु एक बार हिन्दुस्तान से निकल जायंगे और शांति एवं व्यवस्था स्थापित हो जायगी तो अस्थायी आजाद हिन्द सरकार का काम समाप्त हो जायेगा। हम अपने प्रयत्नों का, अपने कष्ट-सहन का और अपने बलिदान का पुरस्कार अपनी मातृ-भूमि की स्वतंत्रता को मानते हैं। हममें से कितने ही लोग देश के स्वतंत्र हो जाने पर राजनीतिक क्षेत्र से अवकाश ग्रहण कर लेना पसंद करेंगे।

यदि संयोग से हमारे देश में रहने वाले देशवासी अपने प्रयत्नों से ही स्वतंत्र हो सकें या किसी संयोग से, ब्रिटिश सरकार आपके 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को स्वीकार कर सके और उसे कार्य-रूप दे सके तो हमसे अधिक प्रसन्नता अन्य किसी को न होगी। लेकिन हम इस मान्यता के आधार पर चल रहे हैं कि इसमें से कोई बात सम्भव नहीं है और यह कि सशस्त्र संघर्ष अनिवार्य है।...हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की अंतिम लड़ाई शुरू हो गई है। आजाद हिन्द फौज के सैनिक अब वीरतापूर्वक हिन्दुस्तान की भूमि पर लड़ रहे हैं और सब कष्टों एवं कठिनाइयों के बावजूद वे धीरे-धीरे, किन्तु बिना रुके, बढ़ते चले जा रहे हैं। यह सशस्त्र संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक कि एक भी अंग्रेज हिन्दुस्तान की भूमि पर से नहीं निकल जाता और जब तक हमारा तिरंगा राष्ट्रीय झंडा नई दिल्ली में वायसराय भवन पर फहराने न लग जाय।

हमारे राष्ट्र-पिता ! हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की इस लड़ाई में हम आपका आशीर्वाद और मंगल-कामना चाहते हैं।"

९ जुलाई '४४

आज नेताजी ने हजारों दर्शकों के सामने मुसलमान करोड़पति श्री ह०—के महान् त्याग की घोषणा की। उन्होंने अपने आभूषण,

जायदाद और लगभग एक करोड़ रुपये हिन्दुस्तान के स्वतंत्रता संघ को स्वतंत्रता की लड़ाई चलाने के लिए दान कर दिये हैं। नेताजी ने उन्हें 'सेवके हिन्द' पदक दिया। यह पदक पहली बार उन्हीं को दिया गया है।

हिन्दुस्तान से जो खबरें आ रही हैं वे बहुत ही आशाप्रद हैं। लेकिन हमारे स्टाफ के अफसर आशा करते हैं कि अंग्रेज हिन्दुस्तान से जाने से पहले लम्बा और कठिन युद्ध करेंगे। अंग्रेज अपने साम्राज्य को बचाने के अंतिम प्रयत्न में निश्चय ही जान पर खेलकर लड़ेंगे। हिन्दुस्तान के हाथ से निकल जाने पर ब्रिटेन तीसरे दर्जे की शक्ति रह जायगा। वे इस बात को जानते हैं।

१० जुलाई '४४

सुभाष बाबू ने एक सार्वजनिक समारोह में जोरदार भाषण दिया। इसमें लगभग तीस हजार आदमी शामिल हुए थे। उन्होंने हमारे आन्दोलन की योजना इन शब्दों में बताई:—

"हम जानते हैं कि जब तक हिन्दुस्तान के भीतर की अंग्रेजी सेना पर बाहर से हमला नहीं किया जाता तब तक वह देश में क्रांतिकारी आन्दोलन को कुचलती ही रहेगी। इसीलिए आजाद हिन्द फौज ने हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की लड़ाई में यह दूसरा मोर्चा खोला है। हम जब हिन्दुस्तान में और आगे बढ़ेंगे और लोग अपनी आंखों से अंग्रेजी फौज को पीछे हटती हुई देखेंगे तो उनमें यह विश्वास पैदा हो जायगा कि अंग्रेजों का पतन निकट है। वे तभी अपने ऊपर जोखम लेंगे और देश को स्वतंत्र करने के लिए हमारी फौज में आ मिलेंगे। तब हम साथ-साथ मिलकर अंग्रेजों का पीछा करेंगे और उनको हिन्दुस्तान की भूमि से निकाल बाहर करेंगे।

मित्रो! केवल मूर्ख ही शत्रु की शक्ति को कम समझते हैं। हमने अराकान, कालाडान, हाका क्षेत्र, टिड्डिम क्षेत्र, मणिपुर और आसाम में शत्रु की कई किस्म की सेना देखी है। जैसा बहुत पहले से ही

समझते थे, उनका राशन और सामान हमारे राशन और सामान से अच्छे हैं, क्योंकि वे हमारे लड़ने के लिए हिन्दुस्तान को लूटते रहे हैं। लेकिन हमने फिर भी उनको सब स्थानों में पीटा है। संसार में सभी जगह क्रांतिकारी सेनाओं को हमारी जैसी अवस्थाओं में लड़ना पड़ता है; लेकिन वे फिर भी अंत में विजयी होती हैं। उनको शराब, डिब्बों में बन्द सूअर के मांस और बैल के मांस से ताकत नहीं मिलती, बल्कि विश्वास, त्याग, वीरता और कष्ट-सहिष्णुता से मिलती है। आजाद हिन्द फौज को अत्यंत कठिन और कष्टप्रद अवस्थाओं में लड़ने की शिक्षा दी गई है। वह हिन्दुस्तान के जिन ३८८० लाख हिन्दुस्तानियों की स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है, उनको कभी नहीं भुलायेगी।"

: ११ :

नेताजी मोर्चे की अगली पंक्तियों में

१८ फरवरी १९४५ को नेताजी पहली और दूसरी डिवीजन की फौज को देखने के लिए मिनमाना आये। इनमें से पहली डिवीजन मिनमाना में थी और दूसरी क्यौकयादांग और पोपा में। उस समय पहली डिवीजन के अफसर और सैनिक बिलकुल अस्वस्थ हो रहे थे और उनमें से केवल २० प्रतिशत के पास हथियार थे। यह बिलकुल स्पष्ट था कि बहुत काफी समय तक यह डिवीजन लड़ाई में भाग न ले सकेगी।

नेताजी ने मुझसे कहा कि दूसरी डिवीजन ने शुरू फर्वरी में मोर्चे की ओर कूच शुरू किया था। दुर्भाग्य से उसके सेनापति कर्नल अजीज-अहमद ऐन वक्त पर वर्मों से किये एक हमले में घायल हो गये थे। इसलिए उन्होंने मुझे पोपा जाने और दूसरी डिवीजन का संचालन अपने हाथ में लेने की आज्ञा दी।

मैंने अपनी पल्टन से, जिसके साथ मैं इम्फाल की लड़ाई में शुरू से लेकर आखिर तक लड़ा था और जिस पर मुझे बहुत अभिमान था, विदा ली। मैं नेताजी और उनके व्यक्तिगत अमले के साथ मिनमाना से मीकटिला को चल पड़ा जहां से मुझे पोपा जाना था। २० फरवरी को प्रातःकाल हम लोग मीकटिला से २० मील दक्षिण में स्थित 'इन्दो' नाम से हिन्दुस्तानी गांव में आ पहुंचे और दिन भर वहां ही ठहरे। दिन में शत्रु के हवाई जहाजों ने इतने हमले किये कि किसी भी मोटर

का सड़क पर चलना असम्भव हो गया और रात में भी मोटरों और लारियों को रोशनी के बिना ही आगे बढ़ना पड़ता था। क्योंकि उन्हें भय रहता था कि हवाई जहाज कहीं उन्हें देख न लें और उन पर गोले न गिरा दें।

जब हम इस गांव में आराम कर रहे थे, तभी हमें यह खबर मिली कि पकोकाऊ के पास न्यानगू और पगान में जिस मोर्चे पर चौथा रेजीमेन्ट (नेहरू ब्रिगेड) लड़ रहा था, उसे शत्रु ने तोड़ दिया है। हमें खबर दी गई थी कि हमारे दस्तों के बहुत आदमी हताहत हुए हैं और अब शत्रु मीकटिला की ओर बढ़ रहा है।

नेताजी ने तुरंत मीकाटिला जाने और आगे बढ़ती हुई अँग्रेजी फौज ने हमारे मोर्चे में जो दरार कर ली थी उसे भरने की कोशिश करने का निश्चय किया। हम लोग २० फर्वरी १९४५ को शाम के वक्त मीकटिला में आ पहुंचे। हमारे दल में नेताजी का निजी अमला था; जिसमें एक जापानी मेजर दुभाषिये का काम करने के लिए और २० हथियारबन्द सैनिक उनके निजी अंग-रक्षक के रूप में शामिल थे।

उस समय दर असल मोर्चे पर हालत बहुत ही डांवा-डोल थी। क्यौकसे में जोरदार लड़ाई हो रही थी। मांडले पर कब्जा कर लिया गया था। अंग्रेजी फौज अपनी बख्तरी गाड़ियों वगैरा की पूरी ताकत के साथ मांडले से मीकटिला होकर रंगून जाने वाली सड़क पर दक्षिण की ओर बढ़ती जा रही थी। मांडले के आस-पास जो जापानी फौज लड़ रही थी, उसे अंग्रेजी टैंकों और हवाई जहाजों ने आ दबाया था और निर्दयता के साथ समाप्त कर दिया था। जो बच गये थे वे मैम्यो की ओर और शान राज्यों में पीछे को हट गए थे जिससे वे पहाड़ों में शरण ले सकें। मीकटिला के पश्चिम में अंग्रेजी फौज इरावदी नदी को कई जगह पार कर गई थी और मिनत्याम, पकोकाऊ, न्यानगू और पगान में भारी लड़ाई हो रही थी। शत्रु मीकटिला की ओर बढ़ने की कोशिश कर रहा था, जो जापानियों के रेल और सड़क के मार्गों का

मुख्य केन्द्र था। मीकटिला पर कब्ज़ा होते ही वर्मा के मोर्चे की सारी जापानी फौज बेकार हो जाती। इसलिए मीकटिला में नेताजी का ठहरना अनुपयुक्त समझा गया। खास तौर से इसलिए, क्योंकि उनके बचाव का कोई उचित इन्तज़ाम न था और उसके लिए वहां कोई फौज भी न थी।

हम सभी ने नेताजी से प्रार्थना की कि वे मीकटिला से हट जायं और पोपा जाने का विचार भी छोड़ दें जहां इस वक्त लड़ाई हो रही थी। उन्होंने हमारी एक न सुनी, लेकिन अंत में मैंने उन्हें जैसे-तैसे इस बात के लिए सहमत कर लिया कि पहले मैं पोपा हो आऊं और और वहां की सैनिक स्थिति को देख लूं तथा उसके बाद मैं वहां से वापिस आकर उन्हें अपने साथ पौपा ले जाऊं। तब तक नेता जी कालाव चले जायं और वहां के आजाद हिन्द फौज के अस्पताल का निरीक्षण कर आयें।

नेता जी के सैनिक-सेक्रेटरी मेजर महबूब अहमद और मैं २१ और २२ फरवरी की रात को मीकटिला से रवाना हुए। उस समय आधी रात का वक्त था। नेता जी हमें रवाना करेंगे और लड़ाई की उस योजना के सम्बंध में पूरी हिदायतें देने के लिए आये जिस पर हमें चलना था। ऐसे नाज़ुक वक्त में, जब सामान्य मनुष्यों को भी यह स्पष्ट मालूम हो गया था कि वर्मा की लड़ाई खत्म हो गई है और धुरी देशों की हार होने में केवल कुछ दिनों की ही देर है, तब भी नेताजी को इस बात का पूरा विश्वास था कि जीत हमारी ही होगी। वे कहते थे "यदि धुरी-देश हथियार भी डाल दें, तब भी हमें अपनी लड़ाई जारी रखनी चाहिए। जब तक अंग्रेज हमारे देश से नहीं चले जाते तब तक हमारी लड़ाई खत्म नहीं हो सकती। उनकी सम्मति थी कि अंग्रेजों को आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए और न अपने मोर्चे में घुसने देना चाहिए भले ही आजाद हिन्द फौज के सारे सैनिक मारे जायं। उनकी यह तीव्रतम इच्छा थी कि आजाद हिन्द फौज के शहीद अपनी

वीरता की एक ऐसी अमर कहानी और परम्परा पीछे छोड़ जायं कि अगली पीढ़ियां उन पर अभिमान कर सकें। उनको यह विश्वास करा दिया गया था कि उनकी इच्छा के अनुसार ही कार्य किया जायगा और जब तक आजाद हिन्द फौज का एक भी सैनिक जीवित है, तब तक हम अंग्रेजों को अपने मोर्चे पर आगे नहीं बढ़ने देंगे। इसके बाद हम पोपा को रवाना हुए। क्यौकयादांग में हम २२ फरवरी १९४५ को ५ बजे प्रातः आकर लगे। हम चौथी रेजीमेंट के कमांडर कर्नल ढिल्लन से मिले और उनको विस्तृत हिदायतें दीं। इसके बाद हम डिवीजन के प्रधान कार्यालय और कर्नल प्रेमकुमार सहगल द्वारा संचालित दूसरी पैदल पल्टन को देखने के लिए गये। मैंने डिवीजन की कमान संभाल ली और ब्रिगेड के कमांडरों को आज्ञा दे दी, उनको विभिन्न कार्य सौंपे जिसकी पूरी विगत बाद में दी जाने को थी।

२५ फरवरी को महबूब अहमद और मैं मीकटिला लौट आये और पौपा-मोर्चे की हालत नेताजी को बता दी। मैंने उन्हें खोलकर कहा कि मोर्चे की डांवाडोल स्थिति के कारण आगे बढ़ना उचित नहीं है, क्योंकि उसमें बहुत ज्यादा खतरा है। यह बातचीत आधी रात के समय, जब चांदनी छिटकी हुई थी, एक खुले मैदान में हुई। हमें तोपों के धुंआधार गोलों और मशीनगनों की गोलियों की चमक दिखाई देती थी। स्थिति बहुत ज्यादा संगीन थी। अंग्रेजी टैंक किसी भी समय मीकटिला में घुस सकते थे और उस पर कब्जा कर सकते थे। साथ ही नेता जी भी वहां उनके हाथ पड़ सकते थे। मेजर रावत, कर्नल महबूब और मैंने नेताजी से प्रार्थना की कि वे पोपा जाने का विचार त्याग दें। ठीक उसी समय एक जापानी अफसर भी आ गया। उसने खबर दी कि अंग्रेजी टैंकों और बख्तरी मोटरों का एक बड़ा कालम पिनाबिन में घुस आया है और अब तौंगया की ओर बढ़ रहा है, जो मीकटिल से लगभग ४० मील उत्तर-पश्चिम की ओर है। उसने नेताजी से यह प्रार्थना की कि वे उसी रात

को मीकटिला से चले जांय और वहां से दक्षिण में स्थित पिनमाना में पहुंच जाएं जहां आजाद हिन्द फौज की पहली डिवीजन शत्रु के आगे बढ़ने पर उससे लड़ने के लिए तैयार बैठी थी। उसने नेता जी को यह खबर भी दी कि अब तौंगथा और मीकाटिला के बीच में हमारी सेना बिलकुल नहीं रही है। मैंने नेताजी को कहा कि बख्तरबन्द कालम के लिए ४०मील का फासला कुछ नहीं होता। उसे वह अधिक-से-अधिक दो घंटे में तय कर सकता है। हमारे पास उसे रोकने के लिए फौज भी नहीं है। केवल २० आदमियों के पास, जो नेताजी के अंग-रक्षक थे, बन्दूकें थीं; इसलिए बख्तरबन्द दस्ते का मुकाबला किसी भी तरह नहीं किया जा सकता था। मैंने नेताजी से मीकटिला से चले जाने का बहुत अनुरोध किया, लेकिन उन्होंने उस पर ध्यान ही नहीं दिया। मैंने अधीर होकर अन्त में कहा—"नेताजी, आप बहुत अधिक स्वार्थी हैं। आप अपनी वीरता दिखाने भर के लिए अपने प्राण संकट में डाल रहे हैं; लेकिन आपको इस प्रकार अपने प्राण संकट में डालने का कोई अधिकार नहीं है। अपने जीवन पर आपका कोई अधिकार नहीं है। यह तो हिन्दुस्तान की एक कीमती धरोहर है जिसकी रक्षा का भार हमें सौंपा गया है। मैं यह इतमीनान कर लेना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान की यह कीमती धरोहर इस प्रकार जोखम में न पड़ जाय। नेताजी, आप ख्याल तो कीजिए कि यदि आपको कुछ हो गया तो आजाद हिन्द फौज और हिन्दुस्तान के स्वतंत्रता-आन्दोलन का तब क्या होगा ?"

उन्होंने मेरी ये बातें ठंडे दिल से सुनीं, क्योंकि वे जानते थे कि मैंने जो कुछ कहा है वह वही कहा है जो मैं अपने हृदय में अनुभव करता हूँ और उसके मूल में उनकी सुरक्षितता के लिए मेरी तीव्रतम चिन्ता है। उनके ओठों पर मुसकान दौड़ गई और उन्होंने कहा—"शाहनवाज, मुझसे तर्क करना व्यर्थ है। मैंने पोपा जाने का निश्चय कर लिया है और मैं वहां जा रहा हूं। आपको मेरी सुरक्षितता के लिए

चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूं कि इंग्लैंड ने अभी वह बम नहीं बना पाया है जिससे सुभाषचन्द्र बोस मर सकता है।" उनकी यह आखिरी बात खास तौर से सच जान पड़ी, क्योंकि नेताजी का प्रत्यक्ष जीवन मानो एक जादू था। उसी दिन दोपहर को नेताजी के स्थान पर ६० बी २९ एस. टाइप के हवाई जहाजों ने जोरदार बमबारी की। उन्होंने चारों ओर भारी बर्बादी की थी। यह समझ में नहीं आता था कि नेताजी कैसे बच गये। उनको एक खरोंच भी न आई थी।

हम सभी ने नेताजी को समझाया कि वे आगे न बढ़ें, लेकिन इसमें कोई सफलता न मिली। उन्होंने एक बार जो इरादा कर लिया था, उसे कोई बदल नहीं सकता था। फिर हम सभी को यह विश्वास था कि उनका पोमा जाना बहुत अधिक खतरनाक है। हम भयङ्कर असमंजस में थे। अंत में नेताजी के सहायक मेजर रावत ने एक तरकीब सोची। उस समय रात के दो बजे होंगे। यदि हम नेताजी को वहां से हटाने में दो घंटे की भी देर कर देते तो दिन हो जाता और उनकी रवानगी कम-से-कम उस दिन तो रुक ही जाती। अंत में रावत ने अपने देर-दार करने वाले हथकंडे शुरू किए। नेताजी रवाना होने के लिए उतावले हो रहे थे, लेकिन रावत ने एक महत्त्वपूर्ण चिट्ठी को, जिसे तैयार करने की उन्होंने आज्ञा दी थी, टाइप करने में बहुत समय लगा दिया। रावत ने नेताजी के ड्राइवर को भी कह दिया था कि वह उनकी मोटर के एंजिन में कोई खराबी पैदा कर दें। उसी रात को हमें जनरल कियानी और जापानी फौज के प्रधान सेनापति के जरूरी तार मिले जिनमें नेताजी से प्रार्थना की गई थी कि वे तुरन्त रंगून चले आयं। नेताजी बड़ी उतावली में थे और हर किसी पर बिगड़ उठते थे। लेकिन रावत और उनका ड्राइवर अपनी शक्तिभर जितनी जल्दी हो सकती थी उतनी जल्दी करने का बहाना कर रहे थे। होते-होते सुबह के ९ बज गए। मैं जानता था कि हमने उन्हें कम-से-कम आज

तो रोक ही लिया है। इससे हमें सैनिक-स्थिति को समझने के लिए कुछ अधिक समय मिल गया। साढ़े पांच बजे हमने नेताजी को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे समीप के गांव में एक फूंस की झोंपड़ी में लेट जायं और थोड़ी देर सो लें। इस बीच में जापानी सम्पर्क-अफसर शत्रु-सेना की तात्कालिक हलचलों की खबर लेने के लिए गया। वह आठ बजे लौट आया। उसने खबर दी कि शत्रु का एक यांत्रिक दस्ता मीकटला से १० मील उत्तर महलाइंग में आ गया है और उसने मीकटिला से मांडले और मीकटिला से क्यौक-यादांग की सड़कें काट दी हैं। उसने हमें बताया कि शत्रु आगे बढ़ने की तैयारी कर रहा है और चूंकि मीकटिला और महलाइंग के बीच में हमारी सेना नहीं है,इसलिए वह किसी भी क्षण मीकटिला ले सकता है। उसने यह भी कहा कि हमने बहुत देर कर दी है और हमारी मीकटिला रंगून सड़क की लाइन, जहां तक हम लौटना चाहते थे, कदाचित काट दी गई है। हम बड़ी दुविधा में पड़ गए। हमारे सामने दो मार्ग रह गए थे—एक, हम जहां हैं वहां ही ठहरे रहें और लड़ते-लड़ते मर जायं, क्योंकि हमारी फौज इतनी कम थी कि हमारे लिए शत्रु की प्रगति को रोक रखने की कोई आशा ही न रह गई थी। दूसरे, शत्रु द्वारा मुख्य सड़क के काट दिये जाने पर भी हम मीकटिला से निकल जाने का प्रयत्न करें। नेताजी का सुझाव यह था कि हमें शत्रु की पंक्ति को तोड़ कर निकलने का प्रयत्न करना चाहिए और यदि शत्रु ने सड़क पर हमें पीछे हटने से रोकने के लिए रुकावट खड़ी कर दी हों तो यह अच्छा है कि हम वहां अपने प्राण दे दें। वास्तव में यह निश्चय वीरता-पूर्ण था, क्योंकि सड़क पर शत्रु द्वारा रुकावटें खड़ी करने की सम्भावना का ख्याल छोड़ भी दें, तब भी दिन में उस सड़क पर चलना लगभग आत्मघातकारी ही था। उस सड़क पर हवाई हमले से रक्षा करने के योग्य कोई आश्रय-स्थान न था और आकाश में शत्रु के बहुत से हवाई

जहाज सदा चक्कर लगाते रहते थे। कुछ भी हो, नेताजी ने निर्णय कर दिया था और हमें उस पर चलना था।

१० मिनट के भीतर हम तैयार हो गए। उस समय हमारे पास केवल एक मोटर थी जिसे हम तुरन्त काम में ला सकते थे और उसमें चार आदमी बैठ सकते थे। वे चार आदमी कौन-कौन हों, यह चुनाव मैंने नेता जी पर छोड़ दिया। मैं क्या करता, यह निर्णय करना मेरे लिए कठिन था। एक ओर मेरी सेना थी जो पोपा और क्यौकयादांग में भारी कठिनाइयों में बहुत ही वीरता पूर्वक लड़ रही थी। वह वहां मेरी प्रतीक्षा में थी और सड़क बन्द होने के बावजूद मेरी यह तीव्र इच्छा थी कि सड़क की रुकावट का चक्कर काटकर भी मैं अपनी पोपा की फौज के पास पहुंच जाऊं। दूसरी ओर अपने नेताजी के प्रति मेरी निजी वफादारी और मेरा कर्त्तव्य था। उनके जीवन को भारी जोखम था। उस समय मैं उन्हें कैसे छोड़ सकता था। मैं स्वयं इन दो विरोधी कर्त्तव्यों में से चुनाव नहीं कर सकता था, इसलिए मैंने इसका निर्णय भी नेताजी पर छोड़ दिया। नेताजी ने निश्चय किया कि उनका जापानी सम्पर्क-अफसर और उनका निजी डाक्टर कर्नल राजू उनके साथ जायंगे। एक आदमी की जगह खाली रही। नेता जी का कहना था कि सम्भवतः उन्हें भी लड़कर अपना मार्ग बनाना पड़ेगा। इस-लिए यह आवश्यक था कि उनके साथ जो भी आदमी जायं वे ऐसे हों जो लड़ते हुए निकल सकें। अंत में नेताजी मेरी ओर मुड़े और बोले—"आप मेरे साथ चलिए।" मैंने उनका निर्णय स्वीकार कर लिया और मोटर को दस्ती बमों और कारतूसों से भर लिया। हम अनुभव कर रहे थे कि यहां से निकलने का अवसर बहुत ही कम है। लेकिन हम सभी इस स्थिति का सामना करने के लिए तैयार थे। हम में किसी ने भी कुछ नहीं कहा, लेकिन दूसरे क्या सोच रहे हैं; यह हम पूरी तरह जानते थे। सभी प्रसन्न-चित्त थे। एक बात निश्चित थी। वह यह कि शत्रु हमें जीवित कदापि न पकड़ सकेगा। हम जब

मोटर में बैठे और रवाना हुए तो नेताजी के पैरों पर भरी हुई टामी-गन रखी थी । राजू के पास दो दस्ती बम तैयार रखे थे। जापानी-सम्पर्क-अफसर के पास दूसरी टामी-गन थी और मेरे हाथ में एक भरी हुई ब्रेन-गन थी। हम प्रत्येक क्षण गोलियां चलाने के लिए तैयार बैठे थे। जापानी अफसर मोटर के तख्ते पर खड़ा था जिससे यह देख सके कि कहीं शत्रु के हवाई जहाज तो नहीं आ रहे हैं । राजू ड्राइवर के पास बैठा यह देख रहा था कि सड़क कहीं रुकी हुई तो नहीं है। नेताजी और मैं पीछे बैठे हुए सड़क के दोनों ओर की बगलों में झांक रहे थे ताकि उधर से आक्रमण होने पर शत्रु को देख सकें।

हम पहले एक छोटे हिन्दुस्तानी गांव 'इन्दो' में पहुँचना चाहते थे जो मीकार्टला से लगभग २० मील दूर दक्षिण में था। हम सड़क पर लगभग ४० मिनट तक चल चुके थे, लेकिन फिर भी हमें शत्रु का कोई हवाई जहाज दिखाई नहीं दिया और न कहीं सड़क ही रुकी हुई मिली। यह एक चमत्कार ही था। हम इन्दो गांव में सुरक्षित पहुँच गए और दिन का बाकी हिस्सा हमने वहां ही बिताने का निश्चय किया। ज्यों ही हम गांव में पहुँचे, अंग्रेजी लड़ाकू हवाई जहाज आ गए और गांव के ऊपर मशीनगनों से गोलाबारी शुरू कर दी। यदि हमें ५ मिनट की देर हो जाती तो हमारी मृत्यु निश्चित थी। जिन लोगों को कभी हवाई हमले में की गई बम-वर्षा या मशीनगनों की गोलाबारी का सामना नहीं करना पड़ा, वे इस बात का अनुमान नहीं लगा सकते कि शत्रु के हवाई जहाज खुले मैदान में किसी को आ घेरें तब कैसी भयंकर अवस्था होती है। इनमें से कुछ हवाई जहाजों में बाहर-बाहर मशीनगनें थीं। उन्होंने हमारे सैनिकों पर २२ और ४० एम० एम० के बख्तर-बेधी कारतूस चलाने में भी कोई हिचक नहीं दिखाई। ये कारतूस लगभग १० इंच लम्बे होते हैं, और रेल, एंजिनों एवं भारी-भारी टैंकों को नष्ट करने के लिए काम में लाये जाते हैं। ये जब मनुष्यों

पर चलाते जाते हैं तो मनुष्यों के शरीरों को भयंकर रूप से मांस का लोथड़ा बना देते हैं।

इस समय इन्दो गांव मीकाटिला के समीप के बाकी इलाके की भांति ही जासूसों और शत्रु के एजेंटों से भरा हुआ था। इसलिए मैंने नेताजी से प्रार्थना की कि वे गांव से हट जायं और जंगल में चलें। पहले हम गांव के पास एक बिना पत्तों की झाड़ी में जाकर छिपे, लेकिन हम जल्दी ही देख लिये गए। एक बहुत ही संदिग्ध-सा व्यक्ति हमारे विश्राम-स्थान पर आया और अच्छी तरह से उस स्थान को देखने के बाद चला गया। मैंने नेताजी को कहा कि मुझे इस व्यक्ति पर अंग्रेजों का जासूस होने का सन्देह है इसलिए हमें अपना स्थान बदल देना चाहिए। नेताजी इससे सहमत हो गए तब मैं उनको गांव से लगभग एक मील दूर एक घने जंगल में ले गया। ज्यों ही हम अपने नये स्थान पर पहुँचे, त्यों ही दो अंग्रेजी हवाई जहाज आ गए और उसी बिना पत्तों की झाड़ी के ऊपर जिसमें नेताजी छिपे हुए थे, बहुत नीचे उड़ने लगे। मैंने नेताजी को उन हवाई जहाजों को दिखाया और विनोद में कहा—"नेताजी, ये आपकी तलाश में हैं।" जिस वर्मी ने हमें झाड़ी में देख लिया था, वह आखिर अंग्रेजों का जासूस ही निकला। हमने वह दिन जंगल में ही बिताया। हमें तब बड़ी भूख लगी थी; इसलिए मैं पास के एक खेत में जाकर होले ले आया। नेताजी ने वह दिन उन्हीं को खाकर निकाला।

उस दिन हमारे पास शत्रु के कई हवाई जहाज आए, लेकिन सौभाग्य से उनमें से कोई भी हमें न देख सका। शत्रु की तोपों के गोलों से और हवाई हमले से बचाव करने के लिए सावधानी के रूप में मैंने नेताजी के लिए एक छोटी-सी खाई खोद ली थी। एक बार शत्रु के कुछ हवाई जहाज आ गए और जहां हम छिपे हुए थे वहां पेड़ों की ऊंचाई पर बहुत नीचे उड़ने लगे। हमें ऐसा प्रतीत हुआ कि या तो उन्होंने हमको देख लिया है या उनको अंग्रेजी जासूसों ने चेता दिया

है कि हम वहां मौजूद हैं। हम दोनों उसी खाई में छिप गए। यकायक मैंने नेताजी की गर्दन से मुश्किल से एक इंच की दूरी पर एक बहुत बड़ा काला बिच्छू चलता हुआ देखा। नेताजी ने भी उसे देख लिया, लेकिन इस भय से कि कहीं शत्रु के हवाई जहाजों को हमारा पता न लग जाय, हमने वहां से हिलने का भी साहस नहीं किया। एक या दो मिनट के बाद शत्रु के हवाई जहाज दूसरे तरु-समूह को देखने चले गए हम उनको दिखाई नहीं दिये थे। उसके बाद हमने बिच्छू को मार दिया।

सायंकाल को सूर्य के छिपते ही नेताजी ने मुझे फिर बुलाया और कहा कि वे फिर मीकटिला वापिस जाना चाहते हैं। चूंकि वहाँ आजाद हिन्द फौज के कुछ सैनिक अभी तक बाकी थे, इसलिए वे उनको वहां से निकालने की व्यवस्था किये बिना पीछे हटना नहीं चाहते थे। अन्त में वे मिनमाना जाने के लिए तैयार हो गए और मैं मीकटिला चला गया। मैं वहां २६ फरवरी की रात को १० बजे पहुंचा। मुझे कस्बे में भारी लड़ाई होती हुई मिली। मीकटिला में जापानियों का एक बड़ा अस्पताल था, जिसमें १०००के लगभग रोगी थे। शत्रु इतनी तेजी से आगे बढ़ा था कि जापानियों को उनको हटाने का अवसर नहीं मिला। इसलिए उन्होंने एक अफसर को संरक्षक दल के साथ वहां छोड़ दिया और आदेश दे दिया कि जो लोग चल न सकें, उनको गोली मार दी जाय। यह आदेश पूरा कर दिया गया।

मैंने मीकटिला से आजाद हिन्द फौज का सब सामान और उसके सब आदमी हटा लिये और मिनमाना लौट आया, जहां नेताजी मुझे प्रतीक्षा करते हुए मिले। मैं उनसे १ मार्च १९४५ को मिला। मुझे मालूम हुआ कि शत्रु के मिनमाना में आ पहुंचने की अवस्था में लड़ाई की योजना बना रखी थी। उस समय शत्रु के तेजी के साथ मिनमाना और तौंगू की ओर बढ़ने की बहुत सम्भावना थी। नेताजी की योजना यह थी कि आजाद हिन्द फौज के पहले डिवीजन में से जो सैनिक बाकी बचे हैं उनमें से एक 'एक्स' दस्ता तैयार किया जाय।

इस सेना को लेकर वे मिनमाना से कुछ मील उत्तर में एक बचाव मोर्चा बनाना चाहते थे। उन्होंने मुझे कहा कि वे मिनमाना में ठहरने और अंग्रेजों के विरुद्ध अन्तिम लड़ाई लड़ने का निश्चय कर चुके हैं। बीमार सैनिकों के सम्बन्ध में उन्होंने आज्ञा निकाल दी थी कि वे १० मील पीछे की ओर बनाये गए एक दूसरे शिविर में हटा दिये जायं। यदि अंग्रेज 'एक्स' दस्ते की रक्षा-पंक्ति को भी तोड़ डालें तो वे खुद आत्म-समर्पण कर दें। 'एक्स' दस्ते को उन्होंने यह आज्ञा दी थी कि जब तक एक भी सैनिक जीवित बचे, तब तक वे लड़ाई जारी रखें।

'एक्स' रेजीमेंट के सेनापति कर्नल ठाकुरसिंह बनाये गए थे। वे बहुत ही साहसी सेनापति थे और मणिपुर की लड़ाई में मुझसे दूसरे स्थान पर थे। पहली डिवीजन के बाकी सैनिकों और अफसरों को कर्नल आर० एम० अरशाद की कमान में रखा गया था। नेताजी ने बड़े अफसरों की एक कान्फ्रेंस की और उनको आज्ञायें देनी शुरू कीं। जब वे यह कार्य कर चुके, तो मैंने उनको विश्वास दिलाया कि उनकी इच्छाओं के अनुसार ही कार्य किया जायगा। लेकिन उनका मिनमाना में ठहरना और इस लड़ाई को अपनी आखिरी लड़ाई बनाना आवश्यक नहीं है। हम सभी ने उनसे प्रार्थना की कि वे रंगून लौट जायं और वहां से ही आजाद हिन्द फौज के पहले, दूसरे और तीसरे डिवीजनों के सैनिकों का नियन्त्रण करें और उनकी कमान संभालें। हमने नेता जी को यह विश्वास भी दिलाया कि सम्भवतः शत्रु अभी मीकटिला में अपनी स्थिति को मजबूत करेगा और तब आगे बढ़ेगा। इसमें उसको कदाचित् एक पखवाड़ा लग जायगा। नेताजी ने स्थिति का अध्ययन करने के बाद यह बात मान ली और मुझे रंगून जाने एवं वहां से प्रोम-येनांग्योंन, क्योंकयादांग होकर पोपा जाने की आज्ञा दी। यह मार्ग अभी तक खुला था और नेताजी को सुरक्षित रूप से रंगून पहुंचाने के बाद अपने डिवीजन में जा मिलना मेरे लिए सम्भव था।

हम जब रंगून में आए, तब हमें सूचना मिली कि दूसरे डिवीजन के चार बड़े अफसर पोपा से भाग कर अंग्रेजों की ओर जा मिले हैं। इससे नेताजी को चिन्ता हो गई। उन्होंने मुझे आधी रात के समय बुलाया और कहा कि स्टाफ के इन अफसरों की इस करतूत से वे अत्यन्त लज्जित हैं। उन्होंने कहा कि लड़ाई का रुख बदल जाने का और कुछ जगह अंग्रेजों की जीत होने से कुछ अफसरों की हिम्मत टूट गई, यह वे अनुभव करते हैं। उन्होंने अपने स्टाफ के अफसरों के चुनाव में मुझे पूरी स्वतन्त्रता दी और उसके एवज में मैंने उनको यह आश्वासन दिया कि भविष्य में अब कोई सैनिक या अफसर सेना को छोड़कर न भागेगा। मैंने अपने चारों ओर निगाह डाली और अच्छे-से-अच्छे अफसर अपने स्टाफ़ में चुने। वे ये थे—मेजर रामस्वरूप, मेजर मेहरदास, मेजर अजाइबसिंह और मेजर बी० एस० रावत। हम ७ मार्च १९४५ को रंगून को रवाना हुए। उससे पहले मैं स्टाफ़ के सब अफ़सरों को नेताजी के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए उनके पास ले गया। हमने उनके साथ भोजन किया और भोजन के बाद उन्होंने हमसे बातें कीं। उन्होंने कहा— "मैं जानता हूँ कि हम बर्मा की लड़ाई हार गए हैं लेकिन इससे हमें किसी भी प्रकार निराश न होना चाहिए। हमें अपने देश का सम्मान कायम रखने के लिए लड़ाई जारी रखनी है। आज़ाद हिन्द फौज के इतिहास में इस अत्यन्त नाजुक घड़ी में आपको लड़ाई का नियंत्रण संभालने के लिए कहा गया है। यह आपको विशेष अधिकार दिया गया है। इस पर आपको गर्व हो सकता है। अब आजाद हिन्द फ़ौज की इज्जत आपके हाथों में है। मुझे विश्वास है कि आपको जो कार्य सौंपा गया है, आप उसके योग्य सिद्ध होंगे।" जब हमने उनकी बैठक की सीढ़ियों पर उनसे विदा ली तो उनकी आंखों में आंसू भर आए! कदाचित् वे यह अनुभव करते थे कि हम एक अत्यन्त जोखम-भरा काम करने जा रहे हैं और सम्भवतः हम अब फिर न मिल सकेंगे।

अपने स्टाफ़ के सब अफसरों की ओर से मैंने नेताजी से कहा कि वे हम लोगों का पूरा विश्वास करें। हमने उन्हें विश्वास दिलाया कि हम सब परिस्थितियों में हिन्दुस्तान के सम्मान की रक्षा करेंगे। हम पोपा में १२ मार्च १६४५ को आ पहुंचे।

दूसरे डिवीजन की रचना और उसके कार्य

दूसरा डिवीजन दिसम्बर १६४५ में सिंगापुर में बनाया गया था और कर्नल एस०एन०भगत उसके कमांडर नियुक्त किये गए थे। शुरू में इसमें पुरानी मैदानी फौज थी, अर्थात्—

पहली पैदल पल्टन।
भारी तोपची पल्टन।
लड़ाकू बख्तरबंद मोटर पल्टन।
डिवीजन की संकेत-सेना।
डिवीजन के इंजीनियर।

उसमें शामिल थे। दूसरे डिवीजन के दस्तों के पास पहले डिवीजन की अपेक्षा अधिक भारी हथियार थे। पहला डिवीजन मुख्यतः छापामार लड़ाई के लिए बनाया गया था और दूसरा डिवीजन मैदानी लड़ाई में भाग लेने के लिए। पैदल दस्तों के पास भारी तोपें, टैंक-तोड़क तोपें और बन्दूकें एवं भारी मशीनगनें थीं।

शुरू में यह ख्याल किया गया था कि इम्फाल के आस-पास के पहाड़ी इलाके में छापामार पलटन की कार्रवाई आवश्यक है और इम्फाल पर कब्ज़ा करने और हिन्दुस्तान के मैदानों में लड़ाई पहुंच जाने के बाद भारी हथियारों से लैस दूसरे डिवीजन को लड़ाई में उतार दिया जायगा।

अप्रैल १६४४ में यह डिवीजन इपोह पहुंच गया और 'पांचवें छापामार दस्ते' के नाम से एक नया रेजीमेंट बनाया गया और उसे दूसरे डिवीजन के साथ संयुक्त कर दिया गया। इस रेजीमेंट के सेना-

पति कर्नल रोडरीग्स थे। कुछ समय के कड़े शिक्षण के बाद इस डिवीजन के दस्ते मोर्चे पर चले गए। जुलाई १९४४ में डिवीजन का जनरल सदर मुकाम इपोह से हटा लिया गया और नवम्बर १९४४ के आरम्भ में वह रंगून ले आया गया। इपोह से डिवीजन सदर मुकाम हटाने से पहले नेताजी ने यह अनुभव किया कि कुछ आन्तरिक कठिनाइयों के कारण दूसरे डिवीजन के सेनापति को बदल दिया जाय। उन्होंने कर्नल अजीज अहमद को, जो बर्मा में नेहरू ब्रिगेड के कमांडर थे, मलाया बुलाया और ब्रिगेड का कमांडर नियुक्त कर दिया।

डिवीजन रंगून में केन्द्रित

मई १९४४ में पहले पैदल रेजीमेंट लैफ्टिनेंट कर्नल एस० एम० हुसेन की कमान में जितरा से बर्मा को रवाना हुआ। यह उसी रास्ते से आया जिससे पहले डिवीजन के दस्ते आए थे। उस समय शत्रु के हवाई जहाज और पनडुब्बियां बहुत जोर पकड़ गए थे। वे रेलों, पुलों और मार्ग की फौजी छावनियों पर लगातार बम गिरा रहे थे जिससे मोर्चे की अगली पंक्ति को सहायता न पहुंचा सके। ब्लाश्शी (विक्टोरिया पौइन्ट) से मरगुई तक की समुद्री यात्रा खास तौर पर से खतरनाक हो गई थी। शत्रु के बम-वर्षक और पनडुब्बियां उस पर लगातार कड़ा पहरा दे रहे थे। उन्होंने मैदानी तोपों, टैंक-तोड़क तोपों और मशीनगनों से भरा हुआ पहले पैदल रेजीमेन्ट का जहाज तारपीडो मारकर डुबा दिया था। इसका नतीजा यह हुआ कि जब पहली पैदल रेजीमेन्ट रंगून में पहुँची तो उसके पास केवल बन्दूकें और कुछ हलकी मशीनगनें रह गई थीं। परिणाम स्वरूप फिर इन हथियारों से लैस किये बिना वह आगे बढ़ने के बिलकुल अयोग्य था।

हमारी फौज को थाईलैंड (स्याम) से रंगून तक की यात्रा अधिकांश पैदल ही तय करनी पड़ी थी जिससे पहले रेजीमेंट को रंगून पहुंचने में लगभग चार मास लग गए थे।

डिवीजन का सदर मुकाम और पांचवां छापामार रेजीमेंट इपोह से जुलाई १६४४ में रवाना हुआ था। दिसम्बर १६४४ के अंत तक दूसरा डिवीजन रंगून में छावनी डाले पड़ा था। लगभग उसी समय छापामार रेजीमेंट (नेहरू ब्रिगेड), जो पहले डिवीजन का हिस्सा था, दूसरे डिवीजन में मिला दिया गया था। यह ब्रिगेड कर्नल-अजीज-अहमद की कमान में मई १६४४ में मांडले से आया था और कर्नल अजीज अहमद का तबादला मलाया को कर देने पर कर्नल अरशाद इसके कमांडर बनाये गए थे। पीछे मेजर ए० के० राना इसके कमांडर बनाए गए और बाद में उनकी जगह मेजर महबूब अहमद नियुक्त किये गए। इस ब्रिगेड ने पहले डिवीजन को कालेवा से निकालकर मांडले लाने में बहुत अच्छा काम किया।

लड़ाई में दूसरे डिवीजन का कार्य

चौथा छापामार रेजीमेंट (नेहरू ब्रिगेड)

अक्तूबर १६४४ के आरम्भ में नेहरू ब्रिगेड मेजर महबूब अहमद की कमान में इरावदीघाटी में मिग्यान में बदल दिया गया। वहां उसे अंग्रेजी फौज को, जो उस मोर्चे पर इरावदी नदी को पार कर रही थी, रोकने के लिए रक्षा-पंक्ति बनानी थी। कुछ दिन बाद मेजर जी०एस०ढिल्लन ने इस दस्ते की कमान मेजर महबूब अहमद से ले ली जो तब रंगन में नेताजी के फौजी सेक्रेटरी नियुक्त कर दिये गए थे।

इस दस्ते में बहुत कम सैनिक थे और उसके पास सामान भी बहुत थोड़ा था। उसके पास केवल बन्दूकें, हल्की मुख्यतः लेविस गनें और ब्रेनगनें थीं। इस दस्ते में तामिल लोग बहुत बड़ी संख्या में थे। उनको मलाया में भर्ती और शिक्षित किया गया था मिग्यान में काम शुरू कर दिया गया और अंग्रेजी हवाई जहाजों द्वारा लगातार हमले किये जाने पर भी दस्ते ने अच्छी प्रगति की। दिसम्बर १६४४

में हमारे दस्तों को शत्रु की बम-वर्षा के कारण बहुत हानि उठानी पड़ी। उसके बहुत से आदमी हताहत हो गये।

जनवरी १९४५ के अंत में मेजर ढिल्लन को शत्रु की हलचलों के सम्बन्ध में ये खबरें मिलीं, "(अ)—एक अंग्रेजी डिवीजन मलाया के पास इरावदी को पार कर गया है। (ब) एक दूसरा अंग्रेजी डिवीजन सैगोन में आ गया है और मिनबू और उसके आस-पास दूसरे स्थानों में पुल-चौकियां बना ली गई हैं। और (स) एक डिवीजन कालेम्यो से गांगाव घाटी में होकर कान—गांगाव तिलिन-मौक सड़क पर आगे को बढ़ रहा है और मकोकाऊ के आस-पास पहुंच गया है। न्यानगू और पगान के आस-पास इरावदी के पार पुल-चौकियां बनाने के लिए मौका देख रहा है।

२९ जनवरी को मेजर ढिल्लन को यह आज्ञा मिली—"चौथा छापामार रेजीमेन्ट तुरन्त न्यानगू और पगान को रवाना होगा और उन स्थानों में शत्रु को नदी पार करने से रोकेगा। उसके पीछे दूसरी सहायक सेना पकोकाऊ-तिलिन सड़क पर गश्त लगाने के लिए पकोकाऊ भेजी जायगी। यह दस्ता २० जनवरी तक अपनी जगह पहुंच जाना चाहिए।"

जैसा इस आज्ञा से प्रकट है, यह खयाल किया गया था कि मेजर ढिल्लन का दस्ता अपनी रक्षा-पंक्ति २० जनवरी तक तैयार कर लेगा लेकिन इस आज्ञा की प्रतिलिपि वास्तव में उनको २९ जनवरी को मिली। यह आन्तरिक पत्र-व्यवहार की प्रणाली की बेहद खराबी का नतीजा था। लेकिन अपना स्वास्थ्य खराब होने पर भी मेजर ढिल्लन ने यह कार्य तुरन्त अपने हाथों ले लिया। उनके पास कोई यातायात साधन अर्थात मोटरें आदि नहीं थीं वे सारे ब्रिगेड को आगे बढ़ाने के लिए किराये की बर्मी बैलगाड़ियों पर निर्भर थे और उन्हें इसी प्रकार ८० मील मार्ग तय करना था। वे फरवरी के पहले हफ्ते में मिंग्यान से अपनी पल्टन की अगली टुकडियों के साथ रवाना हुए।

उन्होंने मार्ग में सुना कि अंग्रेज इरावदी को पार कर चुके हैं लेकिन इसके बावजूद वे आगे ही बढ़ते गये। वहां आकर उन्हें मालूम हुआ कि यद्यपि शत्रु के गश्ती दस्ते पकोकाऊ पहुंच गये हैं, फिर भी उन्होंने अभी इरावदी पार नहीं की है। मेजर ढिल्लन ने उस क्षेत्र की भली-भांति जांच की और उसे एक पलटन को सौंप दिया। उन्होंने न्यानगू के क्षेत्र को ७ वीं पलटन को सौंपा। दूसरी कमान लैफ्टिनेंट हरीराम के हाथ में थी। पगान का क्षेत्र नवीं पलटन को दिया गया था। जिसके कमांडर लैफ्टिनेंट चन्द्रभान थे। आठवीं पलटन पीछे की ओर कुछ मील दूर एक गांव में रखी गई थी और वह रक्षित फौज थी।

पकोकाऊ के क्षेत्र में शत्रु से सम्पर्क करने के लिए लड़ाकू गश्ती दस्ते इरावदी के पार भेज दिये गए थे। इस बीच में ब्रिगेड का मुख्य भाग, जिसका संचालन मेजर जागीरसिंह कर रहे थे, ८ फरवरी १९४६ के करीब अपनी जगह पहुंचने लग गया था और उसने खाइयां खोदना शुरू कर दिया था। हमारी फौज मुश्किल से एक दिन मोर्चे में रही कि शत्रु के हमले तेज हो गए। हमने नदी के पार जो गश्ती दस्ते भेजे थे, वे पीछे हटा दिये गए और ९। १० फरवरी की रात को एक अंग्रेजी गश्ती दल इरावदी को पार करके हमारे क्षेत्र में आगया। उसके सैनिक या तो मार डाले गए या पकड़ लिये गए।

इस बीच में नदी के उस पार एक पूरा अंग्रेजी डिवीजन, शायद ७ वां हिन्दुस्तानी डिवीजन, आ पहुंचा था। उसने अपनी भारी तोपें वहां पंक्तियों में लगा दी थीं जो हमारे सैनिकों को दिखाई देती थीं। हमारे सैनिकों के पास केवल बन्दूकें, हल्की यांत्रिक बन्दूकें और कुछ मझोली मशीनगनें थीं।

१० फरवरी को सुबह के वक्त, शत्रु ने हमारे मोर्चों पर बड़े जोर से गोला बारी शुरू की। रात को उन्होंने विस्तृत मोर्चे पर नदी पार करने का प्रयत्न किया, लेकिन वे पीछे हटा दिये गए। उन्हें भारी हानि उठानी पड़ी। अगले तीन दिनों में उन्होंने कई बार नदी को पार करने

का प्रयत्न किया, लेकिन हर जगह हमारे आदमियों ने उन्हें रोक लिया और उनके सब प्रयत्नों को व्यर्थ कर दिया।

१३।१४ फरवरी की रात को शत्रु को तोपों की और कुमुक मिल गई जिससे पाकर उसने अत्यंत तीव्र आक्रमण किया। उसने हमारी मोर्चेबन्दियों पर तोपों से बहुत ही जोरदार गोलाबारी की और उसकी आड़ में अगन-बोटों में नदी पार करने का प्रयत्न किया। रातभर भयंकर लड़ाई होती रही और अंग्रेजों को प्रत्येक हमले में पीछे हटाया जाता रहा। पगान-मोर्चे पर लड़ाई खास तौर से तेज थी जहां कप्तान चन्द्रभान ने अपनी मशीनगनों को बहुत अच्छी जगहों पर लगा रखा था। उन्होंने पहले शत्रु को किनारे के समीप आ जाने दिया। तब उन्होंने अपनी सब मशीनगनों से एक साथ गोलियां चलाईं। उनका मुकाबला ईस्ट लंकाशायर रेजीमेन्ट के अंग्रेज टामी सैनिकों से था। उनके सैनिकों ने बदले की क्रूर भावना के साथ लड़ाई लड़ी। उन्होंने टामी सैनिकों से भरी हुई कम-से-कम २० नावें डुबाईं। बाकी टामी सैनिक पीछे को मुड़ पड़े और अपनी जानें बचाने के लिए अपने किनारे की ओर भागे। पीछे यह विश्वस्त रूप से मालूम हुआ था कि उनका कमांडिंग अफसर अपनी नाव डूब जाने पर तैर कर अपनी पंक्तियों में पहुंचा था और उसकी पतलून इरावदी में ही रह गई थी।

१४ फरवरी को सुबह का उजाला होते ही शत्रु के हवाई जहाजों से हमारे मोर्चे पर तेज गोलाबारी शुरू की और मशीनगनों से गोलियां भी चलाईं। साथ ही दूसरे किनारे पर लगी हुई शत्रु की तोपें तेजी से गोले बरसाने लगीं। हमारे सैनिकों के पास उनका बदला लेने के लिए २ मैदानी तोपें भी नहीं थीं। उन्हें तबतक रुकना पड़ा जब तक शत्रु उनकी गोलियों की पहुंच के भीतर न आ गया। दोपहर के लगभग अंग्रेजी फौज ने हमारे बाईं ओर पकोकाऊ के सामने की एक छोटी जापानी चौकी पर कब्जा कर लिया और वहां इरावदी के पूर्वी किनारे पर अपने पैर जमा लिए। यहां एक पुल चौकी बनाकर

वे उसमें होकर बहुत बड़ी संख्या में अपने सैनिक ले आए। उस समय तक लगातार लड़ने से और मशीनों के फालतू हिस्से न होने से हमारी सब मशीनगनें ठंडी पड़ गई थीं और कारतूस भी लगभग सब चुक गए थे।

शत्रु जापानी मोर्चे पर उतरने के बाद दक्षिण की ओर मुड़ा और उसने हमारी ७ वीं पलटन को घेर लिया। उन्होंने हवाई छतरियों से हमारी पंक्तियों के पीछे भी अपने सैनिक बड़ी संख्या में उतार दिये थे। हमारे आदमियों ने गोलियां खत्म हो जाने पर संगीनों से हमला किया, लेकिन अंत में ७ वीं पलटन के अधिकांश आदमी हिम्मत हार गए और उन्हें आत्म-समर्पण कर देना पड़ा। लेकिन रक्षित पलटन और कप्तान चन्द्रभान की ६ वीं पलटन अपने मोर्चे में जमी रही। शाम के वक्त मेजर ढिल्लन ने अपने सब सैनिकों को इकट्ठा करने और शत्रु को नदी के पार हटाने के लिए उस पर प्रत्याक्रमण किया, लेकिन शत्रु के हवाई जहाजों और तोपों के कारण दिन में हमला करना संम्भव न था।

मेजर ढिल्लन और पलटन के कमांडर के बीच की बातचीत का केवल एक साधन था हरकारा। अपने दस्ते से सम्पर्क रखने के लिए उनके पास टेलीफोन भी न था। इसलिए अपने दस्तों पर नियंत्रण रखना उनके लिए लगभग असम्भव था। उन्हें हर एक काम दस्ते के कमांडरों के ऊपर ही छोड़ना पड़ता था।

हवाई जहाजों, मशीनों की गोली-वर्षा और बम-वर्षा के शिथिल होते ही मेजर ढिल्लन तेजी से क्योंक यादांग गये, वहां सब आदमियों को इकट्ठा किया और उन विपरीत अवस्थाओं में भी उसी जगह से खुराक और दूसरा सामान जुटाने की बहुत अच्छी व्यवस्था कर आए।

मेजर ढिल्लन को अगले कुछ दिन अपने दस्तों का पुनर्संगठन करने में लगे। २१ फरवरी १९४५ को नेताजी से मुझे और मेजर महबूब अहमद को नेहरू ब्रिगेड और दूसरे पैदल रेजीमेण्ट को, जो

क्यौक यादांग और पोपा में थे, देखने के लिए मीकटिला से भेजा।

२३ फरवरी को पोपा में रेजीमेण्ट के कमांडरों की एक कान्फ्रेंस हुई। इसमें मैंने अंग्रेजी फौज को इरावदी के पार हटाने के अंतिम उद्देश्य से नीचे लिखे अनुसार काम के बारे में आज्ञाएं निकालीं।

१—दूसरा पैदल रेजीमेंट कर्नल प्रेमकुमार सहगल की कमान में पोपा में एक मजबूत अड्डा बनाने और आक्रमण के लिए तैयारी करने वाला था।

२—चौथे रेजीमेंट को तौंगजोन के पास क्यौक यादांग-न्यानगू सड़क पर शत्रु के विरुद्ध छापामार लड़ाई करने की आज्ञा दी गई थी।

चौथे छापा मार रेजीमेंट ने भारी हानि उठाने के बावजूद इस नये कार्य को उत्साह के साथ शुरू किया उसने जोरदार छापामार लड़ाई शुरू कर दी और शत्रु को इस मार्ग से क्यौक यादांग की ओर बढ़ने से रोक दिया।

२७ फर्वरी को शत्रु की एक यांत्रिक गश्ती टुकड़ी टैंकों की सहायता लेकर क्यौक यादांग की ओर बढ़ी। पौजू में उसे हमारी गश्ती टुकड़ी का सामना पड़ा। हमारे सैनिकों के पास केवल बन्दूकें थीं। उन्होंने यह जानते हुए भी कि उनकी गोलियों का कोई असर न होगा, शत्रु के टैंकों पर गोलियां चलाईं। उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ। कि गोलियां चलाये जाने पर शत्रु के टैंकों ने अपना मुंह बदल दिया और पीछे लौट गया।

लगातार और तेज कार्रवाई करके हमारे दस्तों ने शत्रु की चौकियों को पीछे हटा दिया और मार्च के शुरू होने तक वे न्यानगू पुल की सड़क से केवल ८ मील दूर रह गये थे।

११ मार्च को मेजर ढिल्लन ने तौंगजोन पर, जहां कुछ समय से शत्रु ने सेना लेकर अधिकार जमा लिया था, हमला किया; लेकिन हमारा हमला होने से पहले ही वह उस जगह को खाली कर गया था।

कर्नल जी. एस. ढिल्लन

कर्नल आई. जे. कियानी

कर्नल लक्ष्मी

लैफ्टिनेंट कर्नल ए. डी. लोकनाथन

मेजर जनरल एम. जेड. कियानी

मेजर जनरल ए. सी. चटर्जी

१६ मार्च को कप्तान खान मुहम्मद को सादे गांव के पास एक पहाड़ी पर हमला करने की आज्ञा दी गई। इस पहाड़ी पर शत्रु ने अनुमानतः कम-से-कम एक पलटन लेकर अच्छी पावन्दी कर ली थी। एक रात होशियारी के साथ अपनी टुकड़ी को लेकर खान मुहम्मद उस पहाड़ी के नीचे वहने वाली नदी के भंडारे में पहुंच गए। पहाड़ी सीधी खड़ी हुई और पथरीली थी; इसलिए इन्होंने अपने सव कमजोर और नंगे पैर सिपाहियों को पहाड़ी के नीचे ही छोड़ दिया जिससे वे हमले के वाद उनके लिए मार्ग खुला रख सकें। ऐसे सैनिक वहुत थे जिनके पैरों में जूते नहीं थे। फिर भी वे अपने सव कर्त्तव्यों का पालन करते थे। वस्तुतः कपड़ों, दवाओं और भोजन की कमी से उनकी शत्रु-विरोधी कार्रवाइयों में कभी वाधा नहीं आई। खान मुहम्मद की टुकड़ी यथा सम्भव कम-से कम आहट किये पहाड़ी पर चढ़ी; लेकिन पत्थरों के गिरने का शब्द होने से जल्दी ही शत्रु को यह पता चल गया कि पहाड़ी पर कोई चढ़ रहे हैं। उन्होंने दोनों ओर से जोरदार गोलावारी शुरू कर दी। हमारे सैनिक इससे रुकने वाले न थे। वे आगे वढ़ते गए और शत्रु की चौकी के विलकुल समीप आ गये। शत्रु के सैनिकों ने अनुभव कर लिया कि वे नष्ट हो जायंगे। उन्होंने तुरंत खतरे का संकेत देकर कुमुक मांगी। कप्तान खान मुहम्मद की टुकड़ी ने तव अपनी वन्दूकों में संगीनें चढ़ा लीं और शत्रु की पंक्तियों पर हमला किया। वड़ी भयंकर दस्त-वदस्त लड़ाई हुई। इस वीच में शत्रु को कुमुक मिल गई। उसमें ४०० सैनिक थे। जिन्होंने तुरंत सादे पहाड़ी पर प्रत्याक्रमण कर दिया और चौकी पर हमला करने वाली कप्तान खान मुहम्मद की टुकड़ी को घेर लिया। हमारे सैनिक शत्रु की दो गोलियों के वीच में आ गए। वे मुड़ पड़े और इस प्रत्याक्रमण का जोरदार मुकावला करते हुए पीछे को हटने लगे। उन्होंने 'चलो दिल्ली' 'नेताजी की जय' के नारे लगाते हुए भारी हमला किया। कप्तान खान मुहम्मद की जो थोड़ी-सी सेना वापिसी का रास्ता खुला रखने के लिए नाले में पीछे

रह गई थी, काबू में न रह सकी। उसने भी 'भारत माता की जय' और 'नेताजी की जय' का घोष करते हुए खान मुहम्मद की सेना पर जवाबी हमला करने के लिए पहाड़ी पर जाती हुई शत्रु-सेना पर भयंकर गोलाबारी शुरू कर दी। शत्रु के सैनिकों की संख्या बहुत अधिक थी और पहाड़ी पर उनका बहुत बड़ा जमघट था। हमारे सैनिक उन पर बड़ी आसानी से हमला कर सकते थे। उनको भयंकर हानि उठानी पड़ी। हमारे जो आदमी नाले में खड़े थे, उनके पास कारतूस खत्म हो गए थे। इसलिए वे अपनी संगीनें चढ़ाकर आगे बढ़े और शत्रु के सैनिकों में घुस गए। बूट न होने से जो आदमी पीछे रह गए थे, उन्हें पहाड़ी के नुकीले पत्थरों का खयाल ही न रहा और वे हमले में अपने दूसरे साथी सैनिकों के साथ शामिल हो गए। लड़ाई २ बजे से ४ बजे तक हुई। उसके बाद शत्रु के जो सैनिक बचे, वे सादे पहाड़ी को हमारे अधिकार में छोड़कर हमारी पंक्ति में होकर निकल गए। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों ने जो लड़ाइयां लड़ीं उनमें यह सबसे भयंकर लड़ाई थी। उन्होंने प्रशंसनीय आचरण किया था। यह अनुमान किया गया था, और पीछे बर्मी भेदियों ने इसका समर्थन भी कर दिया कि इस लड़ाई में शत्रु के कम-से-कम २००सैनिक मारे गए।

सादे पहाड़ी पर सफल हमला करने के बाद खान मुहम्मद अपने सदर मुकाम पर लौट आए। इस लडाई में हमारे १७ सैनिक हताहत हुए। इस हमले से शत्रु को बड़ा धक्का लगा, क्योंकि उसका खयाल था कि उसने आजाद हिन्द फौज को न्यानगू और पगान की लड़ाई में समाप्त कर दिया है।

हम जिस इलाके में लड़ रहे थे वह चौरस और सूखा रेगिस्तानी था जिसमें जहां-तहां कुछ झाडियां थीं। इस इलाके में लड़ने वाली फौज को लगभग २० मील दूर क्यौक यादांग से खाना और पानी मिलता था और चूंकि हमारे पास मोटरें, ठेले नहीं थे, इसलिए पानी बैलगाड़ियों में ले जाना पड़ता था।

उस समय इस मोर्चे पर शत्रु की योजना पगान, न्यानगू, पकोक्काऊ और मिंग्यान की पुल-चौकियों पर कब्जा बनाये रखने और न्यानगू से मिनविन—तौंगथा होकर ।मीकटिला में शक्तिमान यांत्रिक फौज ले जाने की थी।

जापानी फौज आजाद हिन्द फौज की सहायता से सब ओर से जवाबी हमला करके उनकी मीकटिला की ओर प्रगति में बाधा डाल रही थी। वह शत्रु को एक बार फिर इरावदी के पार खदेड़ देना चाहती थी।

आजाद हिन्द फौज ने न्यानगू के मुख्य अंग्रेजी अड्डे को, जो नया खतरा पैदा कर दिया था, इससे अंग्रेज सेनापति को, जो हमारी फौज पर कप्तान खान मुहम्मद के सादे पहाड़ी पर किये गए हमले के बाद दूसरे दिन एक बड़ी सेना लेकर हमला करने का विचार कर रहा था, बहुत अधिक चिन्ता हो गई थी।

तौंगजीन की लड़ाई, १७ मार्च १९४५

१७ मार्च को हमारी एक पल्टन तौंगजीन में रक्षात्मक लड़ाई लड़ रही थी। लैफ्टिनेंट कर्तारसिंह की कमान में एक सैनिक कम्पनी नालाइंग में थी। 'ब' कम्पनी के कमांडर सेकण्ड लैफ्टिनेंट ज्ञानसिंह बिष्ट थे। यह तौंगजीन के उत्तर-पूर्व में थी। 'स' कम्पनी रक्षित फौज में थी।

११ बजे के लगभग शत्रु ने उत्तर-पश्चिम की ओर से हमारे मोर्चे पर तोपों से भारी गोलाबारी की। उस समय 'अ' कम्पनी की एक गश्ती टुकड़ी हमारे मोर्चे के सामने क्षेत्र में गश्त लगा रही थी। इस गश्ती टुकड़ी पर अचानक गोरखों के एक प्लाटून ने, जो न्यानगू की ओर से लारियों में आया था, हमला कर दिया।

हमारी गश्ती टुकड़ी अपना बचाव करने लगी और शत्रु की गोलियों का जवाब देने लगी, जिनसे ७ गोरखे मारे गए। पल्टन के कमांडर ने इस लड़ाई की खबर पाते ही लैफ्टिनेंट दित्तूराम की कमान

में एक और लड़ाकू गश्ती टुकड़ी भेज दी। यह टुकड़ी पहली टुकड़ी से मिल गई और शत्रु की प्रगति जैसे-तैसे रुक गई।

साढ़े बारह बजे के लगभग शत्रु के १५ टैंक, ११ बख्तरबन्द गाड़ियां और १० मोटर ठेले मुख्य सड़क पर होकर आगे बढ़े। उन्होंने हमारी आगे की पंक्तियों पर जोरदार गोलाबारी की और मशीनगनों से गोलियां चलाईं। हमारे सैनिकों ने इसका जवाब बन्दूकों और मशीनगनों से दिया। तब शत्रु का कालम दो हिस्सों में बंट गया। एक हिस्सा 'अ' कम्पनी की ओर चला गया और दूसरा 'ब' कम्पनी की ओर, जो सेकंड लैफ्टिनेंट ज्ञानसिंह बिष्ट की कमान में तौंगजीन के उत्तर-पूर्व में रक्षात्मक लड़ाई लड़ रही थी।

यह कम्पनी जिस क्षेत्र में लड़ रही थी वह एक चौरस भूमि थी जो खुली दिखाई देती थी और जिस पर गोली-वर्षा की जा सकती थी। वहां छिपने के लिए कोई स्थान न था। इस स्थान के समीप ही एक उथला सूखा तालाब था जिसके पास सैनिक-दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तीन सड़कें मिलती थीं। यहां से ४ मील उत्तर-पश्चिम में १४२३ फीट ऊंची एक पहाड़ी थी जिसकी आड़ में शत्रु की तोपें इस तरह से लगी हुई थीं कि उनसे सड़कों के तिराहे और उसके दक्षिण के क्षेत्र पर गोले फेंके जा सकते थे। इस पर कब्जा होने से लड़ाई की पूरी योजना पर असर पड़ जाता।

ऐसे मार्के के स्थान पर ज्ञानसिंह की 'ब' कम्पनी रखी गई थी। ज्ञानसिंह को सैनिक-शिक्षण सिंगापुर के अफसर-शिक्षण-स्कूल में मिला था। उनकी कम्पनी में कुल ६८ सैनिक थे। उनके पास मशीनगनें या हलकी मशीनगनें भी नहीं थीं। उनके पास रक्षा करने या हमला करने के लिए एक मात्र हथियार बन्दूकें थीं। उन्होंने आज्ञा दी थी कि सब कुछ हानि उठाकर भी इस क्षेत्र को शत्रु के अधिकार में जाने से बचाया जाय।

वे इस स्थान पर दो दिन से थे; लेकिन शत्रु ने आगे बढ़ने का

साहस ही नहीं किया था। उसके बाद १७ मार्च १९४५ को सुबह के वक्त बहुत तड़के से लेकर ११ बजे तक शत्रु के लड़ाकू हवाई जहाजों ने उनके मोर्चे पर बम गिराये और मशीनगनों से गोलियां बरसाईं। फिर शत्रु की भारी तोपों ने गोलाबारी शुरू की। इस गोलाबारी की आड़ में शत्रु की मोटरवाली पैदल सेना का एक कालम आगे बढ़ा। यह कालम सीधा उस तालाब पर पहुंचा जहां कम्पनी के अगले दस्ते मोर्चे में जमे बैठे थे। शत्रु ने अपनी बख्तरबन्द गाड़ियों से उनकी खाइयों पर गोले और गोलियां बरसाईं। हमारे सैनिक खाइयों में छिप गए और पैदल फौज के आने की प्रतीक्षा करने लगे। टैंक और बख्तरबन्द मोटरें इस्पाती राक्षसों की भांति अपनी प्रहार-शक्ति से प्रलय का-सा संहार करती हुईं इतने पास आ गईं कि उन्होंने हमारी खाइयों पर पास से और भी तेज हमला शुरू किया, जिससे हमारे सैनिक हिम्मत हार जायं। उनको रोकने के लिए दो सुरंगें फेंकी गईं; लेकिन दुर्भाग्य से वे फटी ही नहीं।

इस चौकी और पल्टन के सदर मुकाम के बीच कोई खबरें नहीं आती-जाती थीं। सेकंड लैफ्टिनेंट ज्ञानसिंह ने देखा कि उनकी बन्दूक की गोली शत्रु की तोपों, मशीनगनों, दस्ती बमों और हल्की यांत्रिक बन्दूकों की मार का मुकाबला किसी भी तरह नहीं कर सकती और यदि वे खाइयों में अधिक समय तक ठहरेंगे तो वे निश्चय ही मारे जायंगे या कैद कर लिये जायंगे। दूसरी ओर शत्रु को कोई हानि नहीं पहुंच सकती। इस स्थिति में उन्होंने अपने सैनिकों को हमला करने की आज्ञा दी। उन्होंने हमले का संचालन खुद किया और 'नेता जी की जय' 'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'आजाद हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए अपने सैनिकों को शत्रु के इस्पाती टैंकों की सहायता प्राप्त पैदल पल्टन से भिड़ा दिया। हमारे सब आदमियों ने उनके नारों का जवाब नारों से दिया जो शत्रु की तोपों और बन्दूकों की गूंज से ऊंचे गूंजने लगे। हमारे सैनिक जानते थे कि वे लगभग निश्चित रूप

से मृत्यु से जूझ रहे हैं, लेकिन उन्हें तो उसका भय ही नहीं रहा था। दृढ़ संकल्प उनका सहारा था जो शत्रु के उत्कृष्ट शस्त्रास्त्रों के मुकाबले में इन वीरों को प्रोत्साहन दे रहा था। हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के नाम पर उन्होंने शत्रु के मोटर ठेलों पर हमला किया। शत्रु-सैनिक तुरंत उनमें से कूद पड़े और दस्त-बदस्त लड़ाई होने लगी जो पूरे दो घण्टे तक चली; लेकिन हमारे वीर हार ही न मानते थे। ४० सैनिकों ने अपने जीवन की आहुतियां दे दीं, किन्तु शत्रु को इससे भी अधिक हानि पहुंची। उनके इस दृढ़ संकल्प का शत्रु पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह तेजी से पीछे हट गया।

उसी समय लैफ्टिनेंट ज्ञानसिंह ने तीसरे प्लाटून को आगे बुलाया। वे उसे आज्ञा दे ही रहे थे कि उनके सिर में गोली लगी और वे सदा के लिए धरती माता की गोद में सो गये। तब उनके सहायक ने कम्पनी की कमान संभाल ली और सेना का पुनर्संगठन किया।

सेकंड लैफ्टिनेंट ज्ञानसिंह बिष्ठ अपने आदमियों से कहा करते थे कि वे उनके साथ ही मरेंगे। उन्होंने अपना वचन निबाहा और यह सिद्ध कर दिया कि वे जीवन और मृत्यु दोनों में उनके सच्चे साथी थे। शत्रु की जो सेना 'अ' कम्पनी की ओर आ गई थी, उसने पहले गांव पर गोलाबारी की और फिर उसके टैंक, बख्तरबंद गाड़ियां और मोटर वाली पैदल सेना 'अ' कम्पनी की खाइयों पर आ गई। लड़ाकू बख्तर-बंद मोटरें गांव में घुस गईं और गोलियां चलाने लगीं। हमारी कम्पनी ने भी जवाब में गोलियां चलाईं। लगभग ६ बजे सायं शत्रु की सेना संगीनें चढ़ाकर टैंकों के आगे-आगे बढ़ने लगी। हमारे सैनिकों ने गांव में आग लगा दी और इससे टैंकों का बढ़ना रुक गया। टैंकों की मदद बंद होने पर शत्रु-सैनिकों में आगे बढ़ने का दम न था। जब अंधेरा हो गया तो वे अपने तीन सैनिकों की लाशें मैदान में पड़ी छोड़कर पीछे हट गए और तौंगजीन दिन भर की भीषण लड़ाई के बाद हमारे ही अधिकार में बना रहा।

१६ मार्च १६४५ को मैं खावोक में कर्नल ढिल्लन से उनके सदर मुकाम पर मिला और उनके पल्टन-कमांडर लैफ्टिनेंट खान मुहम्मद और कप्तान मुहम्मद हुसेन से भी मैंने बातें कीं। हमारी फौजों की हिम्मत दो हमलों में लड़ चुकने के बाद भी कायम थी। इसके बाद अगले पूरे हफ्ते तक दोनों ओर से गश्ती दस्तों की लड़ाई बड़े पैमाने पर जारी रही।

साधारणतः शत्रु के सैनिक दिन में बहुत ही क्रियाशील रहते थे, क्योंकि उनको हवाई जहाजों और टैंकों की मदद मिलती थी। इस मदद के बिना वे असहाय थे और रात को वे कंटीले तारों के घेरे में रहते थे। दूसरी ओर हमारे सैनिक, जिन्हें दिन में जोरदार हवाई हमलों के कारण छिपकर रहना पड़ता था, रात को बहुत क्रियाशील रहते थे। बहुत बार ऐसा होता था कि लड़ाई के मैदान की कुछ जगहों पर दिन में शत्रु का कब्जा रहता था और रात में हमारा कब्जा।

२७ मार्च को दूसरे डिवीजन को आज्ञा दी गई कि ३०।३१ मार्च की रात को वह पिनबिन पर हमला करे।

चौथे रेजीमेन्ट (नेहरू रेजीमेंट) को, अपना कार्य सफलता पूर्वक कर चुकने पर; पोपा को लौटने की आज्ञा दी गई। वह वहां ५ अप्रैल को पहुंच गया और उसे मीकटिला-क्योक यादांग सड़क और पोपा की मोर्चेबन्दी पर नया काम सौंप दिया गया।

८ अप्रैल को यह खबर मिली कि शत्रु ने मीकटिला पर कब्जा कर लिया है और वहां उससे आगे बढ़ गया है। अब मिनमाना के पास लड़ाई हो रही है।

एक दूसरा शक्तिमान् अंग्रेजी कालम मीकटिला से क्योकयादांग सड़क पर बढ़ा था और नतमाऊ और तौंदविंगी पर कब्जा करने के लिए दक्षिण की ओर मुड़ गया था। इस प्रकार शत्रु के दो डिवीजन हमारे पीछे के भाग में १५०-२०० मील के लगभग चले गये थे। स्थिति

बहुत नाजुक हो गई थी और जापानी फौज को जल्दी-से-जल्दी मौलमीन लौटने की आज्ञा दी गई थी।

दूसरे डिवीजन को मगवे-मिनबू क्षेत्र में, जहां पहला पैदल रेजीमेंट कर्नल एस० एम० हुसैन की कमान में शत्रु के छाताधारी सैनिकों और छापामारों के मुकाबले में अड़ा हुआ था, जाने की आज्ञा दी गई।

उस समय लड़ाई के सम्बन्ध में जो आज्ञा निकाली गई वह यह थी—

कायरता और विश्वास-घात के विरुद्ध रोष, निन्दा और घृणा प्रकट करने के लिए आजाद हिन्द फौज के प्रत्येक शिविर में पहले से निश्चित किये गए दिन एक विशेष समारोह होगा। इस समारोह को सफल बनाने के लिए प्रत्येक शिविर अपना कार्य-क्रम बनाने के लिए स्वतंत्र होगा। लेकिन मोटी हिदायतें यहां दी जाती हैं—

(अ) कायरता और विश्वास-घात के प्रति घृणा और निन्दा प्रकट करने वाली कवितायें, लेख और रचनायें पढ़ी जायं।

(ब) कायरता और विश्वास-घात के प्रति घृणा प्रकट करने के लिए नाटक बनाए और खेले जायं।

(स) (रियाज, मदन, सरवरी, राय, मुहम्मदबख्श और दूसरे) देश-द्रोहियों के पुतले, गत्ते, फूंस, मिट्टी या किसी दूसरी चीज के मनुष्य या पशु रूप में बनाये जायं और शिविर का प्रत्येक सदस्य उनके प्रति घृणा प्रकट करे।

(द) हिन्दुस्तान के प्राचीन काल के वीरों की प्रशंसा में व्याख्यान दिये जायं और स्वतंत्रता की वर्तमान लड़ाई में आजाद हिन्द फौज के सदस्यों ने वीरता के जो कार्य किये हैं, उनकी सराहना की जाय।

(ह) समारोह के अंत में राष्ट्र-गीत गाया जाय और सामूहिक नारे लगाये जायं।

जो शिविर सबसे अच्छा प्रदर्शन करेगा उसे विशेष पुरस्कार दिया

जायगा ।

ह० सुभाषचंद्र बोस, प्रधान सेनापति

बर्मा १३–५–१६४५ आजाद हिन्द फौज ।

अंत में वह दस्ता ११ । १२ अप्रैल १६४५ की रात को पोपा से चल पड़ा और शत्रु के दो घेरों को तोड़कर १६ अप्रैल की प्रातःकाल मगवे में आ गया । उसी दिन सायं ३ बजे के लगभग शत्रु के टैंक भी मोर्चे में घुस आये । तब दस्ते को प्रोम को लौटने की आज्ञा दी गई । प्रोम से वह ताइकी आ गया, जो रंगून के लगभग ३० मील उत्तर में है । वहां सड़क रुकी हुई देखकर वह पूर्व में पीगूयोमा पर्वतों में मुड़ पड़ा । १४ मई को वापसी के सब सम्भव मार्ग रुक जाने पर हम घेरे में आ गये और दस्ते के मुख्य भाग को पीगू में अंग्रेजों के सामने आत्म-समर्पण कर देना पड़ा । पोपा से पीगू तक की ५०० मील लम्बी इस यात्रा की पूरी कहानी पुस्तक में पीछे दी गई है ।

दूसरे पैदल रेजीमेंट के कार्य

यह रेजीमेंट दिसम्बर १६४३ में सिंगापुर में बनाया गया था । कर्नल रोडरीग इसके कमांडर नियुक्त किये गए थे । वहां से यह इपोह भेजा गया और दिसम्बर १६४४ के आरंभ में वह रंगून आ गया ।

रंगून में आने पर कर्नल प्रेमकुमार सहगल रोडरीग की जगह इसके कमांडर बनाये गए और कर्नल रोडरीग डिवीजन के सदर मुकाम में जनरल स्टाफ के अफसर बना दिये गए ।

सन् १६४५ की फरवरी के आरम्भ में इस रेजीमेंट को प्रोम और क्यौक यादांग होकर पोपा जाने की आज्ञा दी गई । ब्रिगेड को पोपा की पहाड़ी के क्षेत्र को शत्रु के विरुद्ध कार्रवाई करने वाले छापामारों को मजबूत केन्द्र के रूप में परिणत करने का कार्य सौंपा गया ।

१२ फरवरी को वे अपने सदर मुकाम के साथ रंगून से पोपा आ गये । मार्ग में वे जापान की अराकान कमान के जनरल स्टाफ के प्रधान

का काम कर रहे थे। वे पहले सिंगापुर में आजाद हिन्द फौज के जापानी सम्पर्क-विभाग में थे। पहली आजाद हिन्द फौज के साथ संकट पैदा होने पर वे वहां से बदल दिये गए थे। लेकिन फिर भी उनको आजाद हिन्द फौज के मामलों में बड़ी दिलचस्पी थी। चूंकि लड़ाई में आजाद हिन्द फौज का दूसरा डिवीजन साकूबूटाई कमान के मातहत रखा गया था, इसलिए कर्नल सहगल ने जनरल इवाकुरो को बताया कि आजाद हिन्द फौज के पास तोपें, टैंक-तोड़क सुरंगें, या टैंक-तोड़क तोपें कुछ भी नहीं हैं। जनरल इवाकुरो ने उन्हें पूरी सहायता देने का वचन दिया।

साकूबूटाई सदर मुकाम से, जो रंगून से ३० मील उत्तर में प्रोम की सड़क पर जंगल में स्थित था, वे येनावग्यौंग गये और जनरल यामायोतो से मिले, जो उस क्षेत्र में लड़ने वाले जापानी डिवीजन का संचालन कर रहे थे। उनके साथ निकट-सम्पर्क स्थापित किया गया और आपस में मिलकर अपने-अपने लड़ाई के क्षेत्र स्थिर कर लिये गए।

यहां आकर ही सहगल को यह पता चला कि चौथा छापा-मार रेजीमेंट (नेहरू ब्रिगेड), जो न्यानगू और पगान में लड़ रहा था, पोपा और क्यौंक यादांग में हटने के लिए बाध्य हो गया है। स्थिति बहुत गंभीर हो गई थी। इसलिए कर्नल सहगल ने निश्चय किया कि जितनी जल्दी सम्भव हो पोपा पहुँचा जाय और पोपा और क्यौक यादांग में ही शत्रु की प्रगति रोक दी जाय।

इस बीच में शत्रु ने न्यानगू, पगान और पकोकाऊ में इरावदी नदी को पार करने के बाद पिनबिन, तौंगथा और मीकटिला के बाहरी मुहल्लों पर अधिकार कर लिया था। नेताजी को अंग्रेजी फौजों ने मीकटिला में इसी समय घेरा था। कर्नल सहगल १८ फरवरी को पोपा में आ गये और तुरंत पोपा की मोर्चेबन्दी करवाने में लग पड़े। उनका दस्ता २००-२०० की टुकड़ियां बनाकर आ रहा था।

इसी दरमियान में वे मेजर जी० एस० ढिल्लन से मिले, जो न्यानग

से हट आये थे। दोनों ने अपनी सब शक्तियां मिला दीं और पोपा एवं क्यौक यादांग की रक्षा करने का निश्चय किया।

२२ फर्वरी को मैं (कर्नल शाहनवाज) पोपा में आ गया और दूसरे डिवीजन की कमान अपने हाथ में ले ली। मैंने विभिन्न ब्रिगेडों को इस तरह काम बांटा—

१—दूसरा पैदल रेजीमेण्ट कर्नल प्रेमकुमार सहगल की कमान में पोपा को शत्रु की इरावदी पार करने वाली सेनाओं के विरुद्ध कार्रवाई करने का अड्डा बनायगा। उसे पोपा के ठीक उत्तर और उत्तर-पूर्व में गश्ती दस्तों से जोरदार कार्रवाई करने की आज्ञा दी गई। बर्मा के बचाव की योजना में पोपा की पहाड़ी के क्षेत्र का मुख्य स्थान था। यह एक छोटा पहाड़ी पठार है जिस पर तीन महत्त्वपूर्ण सड़कें मिलती हैं। चारों ओर बीस-बीस मील दूर तक यहां से ही पानी जाता है। इसलिए लड़ाई की दृष्टि से यह बड़े मौके की जगह थी जिस पर कब्जा होने से लड़ाई की पूरी योजना पर ही प्रभाव पड़ता था। बचाव के लिए यह अत्यन्त अनुकूल थी। यहां रक्षा-पंक्ति बनाने का काम दूसरे रेजीमेंट ने बड़े उत्साह से शुरू कर दिया था। पल्टनों के इस तरह क्षेत्र बांटे गये थे।

(अ)—पहली पल्टन पिनब्रिन-पोपा सड़क के गिर्द का क्षेत्र।

(ब)—दूसरी पल्टन—क्यौक यादांग–पोपा सड़क के गिर्द का क्षेत्र।

(स)—तीसरी पल्टन—तौंगथा सड़क के गिर्द का क्षेत्र।

इसके अतिरिक्त दूसरी पल्टन को क्यौक यादांग—मीकटिला सड़क पर क्यौक यादांग के पूर्व में लगभग १ मील दूर एक रक्षा-पंक्ति पर कब्जा रखना था।

२—चौथी रेजीमेन्ट (नेहरू ब्रिगेड) को मेजर जी० एस० ढिल्लन की कमान में क्यौक यादांग के पश्चिम में शत्रु की सेना पर छापे मारने की आज्ञा दी गई।

२४ फर्वरी को प्रातःकाल कर्नल सहगल को खबर दी गई कि

शत्रु की सेना सीकटिन में घुस गई है और पोपा की ओर जा रही है। कर्नल सहगल उस समय कर्नल शाहनवाज की अनुपस्थिति में, जो नेता जी को स्थिति बताने के लिए मीकटिला चले गये थे, डिवीजन-कमांडर का कार्य कर रहे थे। उन्होंने देख-भाल करने और लड़ने वाली जोरदार गश्ती टुकड़ियां पोपा की ओर भेजीं और शत्रु से सम्पर्क स्थापित किया।

कुछ दिन बाद हमारी एक गश्ती टुकड़ी ने, जिसका नेतृत्व सीनियर अफसर अब्दुल्ला खां कर रहे थे, डौंगले गांव के पास देख-भाल करते समय शत्रु का एक बख्तरबंद मोटरों का दस्ता गांव की ओर आता हुआ देखा। टुकड़ी ने तुरंत उस पर हमला करने का निश्चय कर लिया। सीनियर अफसर अब्दुल्ला खां ने अपनी लगभग २० आदमियों की टुकड़ी को दो भागों में बांट दिया और शत्रु की ओर बढ़ने लगे। शत्रु ने उन पर गोलियां चलानी शुरू कर दीं। हमारे सैनिक छिप गये और जवाब में गोलियां चलाने लगे जिससे उनके कई आदमी हताहत हुए। तब अब्दुल्ला खां होशियारी की चाल चलते हुए और गोली चलाकर आगे बढ़ने के हथकडों का प्रयोग करते हुए अपनी टुकड़ी को शत्रु के समीप ले गये और हमला कर दिया। लेकिन शत्रु तब तक जा चुका था। उस दिन शत्रु के दो सौ सैनिकों की लाशें और तीन जीम मोटरें वहां पड़ी रह गईं। हमारे सैनिकों के हाथ बेतार के तार की मशीन-गनें और बहुत-सा गोला-बारूद लगा।

दूसरे दिन शत्रु की एक पल्टन टैंकों और तोपों की सहायता लेकर डौंगले गांग पर चढ़ गई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह पोपा पर हमला करेंगे। हमारे सैनिक मोर्चों में जम गये और शुत्रु के आने की राह देखने लगे। शत्रु को आगे बढ़ने से रोकने के लिए जोरदार लड़ाकू गश्ती टुकड़ियां भी भेजी गईं।

शत्रु डौंगले गांव पर चढ़ आया और तेज गोलाबारी के बाद उस पर कब्ज़ा कर लिया। वहां आज़ाद हिन्द फौज नहीं थी। तब उसने

गांव में आग लगा दी और सायंकाल को पिनविन की ओर वापिस चला गया।

अगले कुछ दिनों तक शत्रु ने दूसरे रेजीमेंट को कोई कष्ट नहीं दिया। उसने पोपा से दूर रहना ही ठीक समझा।

१४ मार्च को दूसरी रेजीमेंट को पिनविन पर हमला करने की आज्ञा दी गई। आक्रमणकारी दल ११ बजे रात को पोपा से रवाना हुआ। इसमें कर्नल सहगल की कमान में दो बन्दूकची कंपनियां थीं। चूंकि जहां लड़ाई लड़ी जाती थी वहां पानी नहीं था, इसलिए बैल-गाड़ियों में पानी ले जाने की व्यवस्था की गई थी। हथियारों और गोला-बारूद की दृष्टि से दूसरे पैदल रेजीमेंट की स्थिति बहुत ही असंतोष-जनक थी।

इस दस्ते में ३ मैदानी डच तोपें थीं और उनके ८० गोले थे। अधिक रसद मिलने की कोई सम्भावना न थी। उनकी मझोली मशीन-गनें दो विभिन्न नमूनों की थीं। कुछ इंग्लैंड की बनी हुई थीं और कुछ हालैंड की। प्रत्येक तोप के साथ केवल ४०० गोले थे और नये गोले आने की सूरत दिखाई न देती थी। हलकी यांत्रिक बन्दूकों में ब्रेनगनें और लेविसगनें थीं। प्रत्येक सैनिक के पास केवल १०० कारतूस थे। ब्रिगेड के पास रक्षित गोला-बारूद बिलकुल न था। दस्ते के पास इस प्रकार दो घंटे लगातार लड़ने लायक गोले-गोलियां थे।

प्रदेश खुला-सा होने के कारण दस्ते की टुकड़ियां विस्तृत क्षेत्र में फैला दी गई थीं। हमारे पास बेतार का तार या टेलीफोन जैसा कोई बातचीत का साधन न था।

११ बजे पोपा से चलकर यह आक्रामक सेना ६ बजे प्रातः सेट-सायो में पहुंच गई। इस पर जापानियों की एक छोटी चौकी ने कब्जा कर लिया था। मिट्टी बालूदार होने से यात्रा कष्टकर थी। पानी लाने वाली गाड़ियां सेना तक पहुंच ही न सकी थीं। फलतः वहां के रहने वाले लोगों से पानी खरीदना पड़ा।

दिन में हमारे सैनिक छिपे रहे। कर्नल सहगल जापानी कमांडर के पास गये और शत्रु की व्यवस्था के बारे में जो कुछ उनसे मालूम हो सका, मालूम किया। अपनी गश्ती टुकड़ियों से जो कुछ मालूम हुआ था उसके आधार पर कर्नल सहगल ने १५। १६ मार्च की रात को पिनबिन पर हमला करने का निश्चय किया।

वे रात को साढ़े नौ बजे सेटसायो से रवाना हुए और मेरे स्थान पर पहुंच गये। यहां से आगे सेना दो भागों में बंट गई। एक दल दाहिनी ओर से नकली हमला करने के लिए था और मुख्य हमला दाहिनी ओर से थोड़ी बाद किया जाने वाला था। यह चाल सफल सिद्ध हुई। शत्रु ने समझा कि वह घिर जाने और नष्ट हो जाने के खतरे में फंस गया है, इसलिए वह खाइयों में से निकलकर पीछे हट गया। हमारे सैनिकों ने उनकी खाइयों पर पीछे हमला किया। उन्हें वे खाली मिलीं। केवल एक छोटी चौकी पर उन्होंने कुछ मुकाबला किया; लेकिन उसे लैफ्टिनेंट जोगेन्द्रसिंह ने दस्ती बम फेंककर तोड़ दिया। उनके बमों से शत्रु के ८ आदमी मारे गये। इस लड़ाई में जापानियों को सेटसायो से आया हुआ एक प्लाटून लैफ्टिनेंट जोगेन्द्रसिंह की सीधी कमान में रखा गया था। हमारा एक आदमी मारा गया और एक घायल हुआ। पिनबिन में सामान और झोंपड़ों को नष्ट करने के बाद एक सैनिक दल सेटसायो को लौट गया और १७ मार्च के सुबह पोपा पहुंच गया।

उस समय मीकटिला में अंग्रेजी और जापानी फौजों में भारी लड़ाई हो रही थी। आजाद हिन्द फौज के कुछ दस्ते इस क्षेत्र में लड़ रहे थे। अंग्रेजी फौज ने सब हवाई अड्डों पर कब्जा कर लिया था और मांडले, रंगून, थाजी और क्यौक पादांग से मीकटिला में आने वाली सब सड़कें काट दी थीं। चूंकि मीकटिला बर्मा में जापानियों का सबसे प्रमुख विरोध-केन्द्र था, इसलिए वे इसे वापिस लेने की सिर तोड़ कोशिश कर रहे थे। जापानियों ने थाजी, प्यायबिने, मिंग्यान और

क्योंक थादांग से अंग्रेजों पर एक बहुत ही शक्तिपूर्ण प्रत्याक्रमण किया था।

२० मार्च १९४५ को यह निश्चय किया गया कि यदि एक सेना मिनबिन पर, जो एक महत्त्वपूर्ण मार्ग-केन्द्र है और जिसमें होकर सब सामान और कुमुक मीकटिला जाते हैं, कब्जा कर ले तो मीकटिला पर हमला करने में जापानियों को बड़ी सहायता मिलेगी। शत्रु ने पिनबिन पर किये गए हमारे पिछले हमले के बाद यहां अपनी रक्षा-व्यवस्था बहुत मजबूत करा दी थी और यह विश्वास किया जाता था कि वहां एक पल्टन रखी गई है और सामान का भी बहुत बड़ा जखीरा जमा किया गया है।

अंततः यह निर्णय किया गया कि आजाद हिन्द फौज और जापानी पिनबिन पर लगातार हमला करते रहेंगे और वहां की सब सेना और सामान को नष्ट कर देंगे। इस हमले के लिए यह आज्ञा निकाली गई थी—

(अ) शत्रु-शक्ति : शत्रु का एक यांत्रिक कालम, जिसमें अनुमानतः एक ब्रिगेड होगा, और जो मीकटिला में गत मास में घुस आया था, अभी तक वहां ही है। शत्रु इसे कुमुक पहुंचा रहा है। उसने न्यानगू और पकोकाऊ में मज़बूत पुल-चौकियां बना रखी हैं। इन पुल-चौकियों पर शत्रु की सेना में लगभग दो ब्रिगेड होंगे।

यह भी मालूम हुआ है कि शत्रु ने अभी हाल में १० टैंक, १० बख्तर बंद मोटरें और एक पैदल पल्टन लेकर पिनबिन पर कब्जा कर लिया था। मिनब्रिन से उत्तर-पूर्व में लगभग १२ मील दूर थेजाय में तौंगथा मोर्चे के लिए शत्रु की रक्षित सेना रखी गई है। मिंग्यान, तौंगथा और महलाइंग में भी शत्रु के मजबूत जत्थे पड़े बताये जाते हैं।

(ब) हमारी और मित्रों की फौज: मीकटिला पर शक्तिमान् जापानी फौज हमला कर रही है और उसने शत्रु को झील की पश्चिम की बगल में शहर के बाहर हटा दिया है।

हमारे मोर्चे पर मिनबिन से १० मील दक्षिण-पूर्व में सीकतान में एक नया हीदान आ गया है।

खांजो दस्ते सेतसेत्यो में पहुंच गए हैं जो मिनबिन से ४ मील दक्षिण में हैं। इससे पश्चिम क्यौक यादांग न्यानगू सड़क पर एक नई पल्टन ने तौंगजोन और मादो के नेगालाइने का बचाव ४९६ नम्बर के दस्ते से अपने हाथ में ले लिया है। इरावदी के दोनों ओर कातेत्सू संतोषजनक रूप से आगे बढ़ रहे हैं।

इरादा: ९२१ नम्बर का दस्ता खांजो के साथ मिल कर ३०।३१ मार्च को रात को पिनविन पर हमला करेगा और वहां की शत्रु-सेना को नष्ट कर देगा।

तरीका: हमले से पहले निम्न दस्ते अपनी वर्तमान जगहों से नीची लिखी तारीखों में इन क्षेत्रों में जायंगे:—

दस्ता	स्थान	तारीख
(अ) नम्बर ९४५ दस्ता	सीकतीन	२९।३० मार्च की रात
(ब) १—खांजो दस्ता	ओइन (मिनबिन २ मील दक्षिण-पूर्व) से	,,
	तौंगडाव (पिनबिन से ५ मील दक्षिण)	,,
२—नम्बर ४९० दस्ता और होसोकावा दस्ते	मिनबिन से ६ मील दक्षिण- पश्चिम का चौराहा	,,

३०।३१ मार्च की रात को खांजो और नम्बर ४९० दस्ता अपने वर्तमान पड़ाद से आगे बढ़ेंगे और रात को १ बजे मिनविन पर हमला करेंगे और शत्रु की सेना को नष्ट करेंगे। नम्बर १४९ दस्ता मजबूत टुकड़ियां पूर्व से (१) मिनबिन टाडा (२) मिनविन—थाब्येवा और (३) मिनबिन-कामा सड़कों को काटने के लिए भेजेगा।

ये टुकड़ियां ३०।३१ मार्च की रात को ११ बजे अपने नियत स्थानों पर होंगी। मिनबिन पर नम्बर ४९० दस्ते और लांजो के हमले के समय

कैप्टन अमरीकसिंह

मेजर सूरजमल

कैप्टन हरिसिंह

कैप्टन मनसुखलाल

श्रीरासबिहारी बोस

जनरल मोहनसिंह

श्री डा० एम० खान

श्री परमानंद

नम्बर ५४५ दस्ता आगे बढ़ेगा और इन सड़कों पर होकर शत्रु के जो सैनिक निकलने की कोशिश करेंगे, उन्हें नष्ट करेगा और मिनविन में पूर्व से और उत्तर-पूर्व से जानी वाली कुमुक को रोक देगा।

नम्बर ५३१ दस्ते आज्ञा संख्या २

उनके पास शत्रु के टैंकों के लिए सड़कें बन्द करने योग्य काफी सुरंगें होंगी। भारी तोपें ओइन की ओर से हमले में सहायता देंगी।

हमले के बाद कार्रवाई

इस हमले को पूरा करने के बाद नम्बर ५३१ दस्ते की सब टुकड़ियां दिन निकलने से पहले ही जिन पंक्तियों से चली थीं उन्हीं में वापिस चली जायगी। दिन में फौज बिलकुल बिखरी हुई रहेगी और इस बात की पूरी सावधानी रखी जायगी कि शत्रु के हवाई जहाज और उनके हमले नुकसान न पहुंचा पायं।

व्यवस्थाः—

दस्तों के रसद के मार्ग ये होंगे—

(अ) नम्बर ४५० दस्ता—मिनविन के पश्चिम में पोपायवा—ढोंगी—सड़क।

(ब) नम्बर ५४५ दस्ता—पोपायवा—सीकटीन सड़क। दस्ते जितनी बैलगाड़ियों की जरूरत होगी उतनी बैलगाड़ियों का इन्तजाम स्थानीय रूप से कर लेंगे और हमले के खत्म होने पर वे उसके मालिकों को लौटा दी जायंगी।

राशन, पानी और दूसरी सामग्री

सब दस्तों की मांगें पोपायवा के डिवीजनल क्वार्टर मास्टर-जनरल के सामने पेश की जायंगी और वह उनकी पूर्ति का यथासम्भव प्रयत्न करेगा। आगे के क्षेत्रों में न्यूनतम ७ दिन का सूखा राशन दस्तों की व्यवस्था में दे दिया जायगा।

एस० ए० ए० ए०

३०३ एस० ए० ए० गोले बहुत कम संख्या में डिवीजनल क्वार्टर मास्टर जनरल के पास से मिल सकते हैं। दस्तों से प्रार्थना है कि वे गोले बारूद को अत्यन्त मितव्ययिता से खर्च करें।

सुरंगें

बहुत कम उपलब्ध हैं। ये शिक्षित इंजीनियरों के साथ दस्तों की सहायता के लिए भेजी जाती हैं।

औषधि-सहायता

सब घायल पोपायवा ले जाये जायंगे। जहां पानी उबाला नहीं जा सकता वहां पानी साफ करने के लिए थोड़ी-सी ब्लीचिंग की बुकनी दस्तों को दी जायगी।

बातचीत के साधन

नम्बर ४५० दस्ते और नम्बर ५३१ दस्ते से बातचीत होसो-कावा दस्ते के मार्फत बेतार के तार से होगी। नम्बर ५४५ दस्ते और नम्बर ५३१ दस्ते से बेतार के तार से होगी।

लड़ाई का सदर मुकाम

५३१ नम्बर का दस्ता पोपायवा से २६।३० मार्च की रात को सौकटीन के समीप पहुंच जायगा।

मुख्य सदर मुकाम

५३१ दस्ता मेजर रामस्वरूप की कमान में पोपायवा में रहेगा।

दस्तों को विशेष हिदायतें; १—मिनबिन पर जो हमला किया जायगा वह छापामारों के हमले की तरह यकायक किया जायगा। उसका उद्देश्य शत्रु को जितना अधिक सम्भव हो उतना अधिक नुक-सान पहुंचाना और फिर वहां से निकाल देना है। कमान्डरों को सैनिकों का प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए और अनावश्यक रूप से

कोई हताहत न हों, इसका ध्यान रखना चाहिए। २—जहां तक सम्भव हो कुछ जीवित कैदी वापिस लाने चाहिएं। ३—सब कागजात, दूसरे दस्तावेज और दस्तों के विशेष बिल्ले, जो भी शत्रु के शिविर में मिलें, वापिस ले आये जायंगे।

विवरण

नम्बर ४५० दस्ता   १   शाहनवाज कर्नल

नम्बर ५४५ दस्ता   १   कमांडर नं० ५२१ दस्ता।

नम्बर ५० दस्ता

देख-भाल करने वाली गश्ती टुकड़ियां भेजी गईं। इनमें से कुछ शत्रु के मोर्चे के पीछे जा पहुंची थीं और वे बहुत जरूरी खबरें लेकर आई थीं।

२८ मार्च को डिवीजनल सदर मुकाम लड़ाई के क्षेत्र में आ गया।

२६ मार्च की शाम को दूसरे ब्रिगेड के दस्ते लड़ाई के क्षेत्र में नये मोर्चों में आगये जिससे हमले के लिए तैयार रह सकें। कर्नल प्रेम-कुमार सहगल ६ बजे रात को ब्रिगेड के सदर मुकाम की ओर पहली पलटन की देख-भाल करने वाली टुकड़ियों के साथ पोपा से रवाना हो गए। यह टुकड़ी एक मोटर और एक ठेले में लेजाई गई थी और उसके आगे-आगे एक मोटर-साइकिल वाला भेजा गया था। चूंकि गश्ती टुकड़ियों ने खबर दी थी कि सीकटीन क्षेत्र में शत्रु नहीं रहा है। इस-लिए कर्नल सहगल का विचार सीकटीन और तैलौंग जाने का था। कम्पनियों के क्षेत्र उन्होंने खुद ही चुने थे।

उस रात को जब फौज उस जगह जा रही थी जहां उसे इकट्ठा होना था, तब मैं एक फौजी मोटर में जाता और वापिस आता था। रात को ११ बजे के लगभग जब मैं लेगी में था, मैंने वहां तेजी से मशीनगनों और बन्दूकों के चलने की आवाज सुनी; जो लगभग सौ गज आगे की ओर से आरही थी। उसके थोड़ी देर बाद ही एक अफसर मेरे पास दौड़ा हुआ आया और मुझे खबर दी कि कर्नल सहगल के

पूरे दल पर शत्रु ने छिपकर हमला कर दिया। उनके फंसाने के लिए जो जाल बिछाया गया था, वे उसमें सीधे चले गए। शत्रु के सैनिकों ने उनके ऊपर केवल ३० गज की दूरी से गोली-वर्षा की। यदि उनमें से कोई बच जाय तो यह चमत्कार ही होगा। कर्नल सहगल जिस मोटर में थे उसमें गोलियों के १६ छेद थे। तब तक दूसरी कम्पनी का जो कालम रवाना होने वाला था,वह भी आ गया था। मैंने आगे बढ़ने और कर्नल सहगल की देख-भाल करने का निश्चय किया। जो अफसर यह खबर लाया था उसे यह ज्ञात नहीं था कि कर्नल सहगल और उनके दल के लोग मारे गये या गिरफ्तार हो गए। थोड़ी ही देर बाद कर्नल सहगल भी आ गए और उन्होंने सारी स्थिति मुझे बताई। हमने आगे बढ़ने और अपने जीप कार और ठेले को वापिस छीनने का फैसला किया।

प्रत्याक्रमण किया गया और अपनी सब मोटरें वापिस ले ली गईं, लेकिन हमारे सब कागज शत्रु के हाथ पड़ गये थे जिनमें निशान लगाये हुए नकशे और लड़ाई की आज्ञायें भी थीं।

उस समय बहुत देर हो गई थी और इससे आगे बढ़ने का समय नहीं रहा था; इसलिए यह तय किया गया कि लेगी में हट चलें और बचाव की लाइन बना लें।

काब्यू की लड़ाई

२० मार्च को हमारी एक कम्पनी पर, जो मिनविन पर हमला करने की दृष्टि से काब्यू में रखी गई थी, शत्रु की पैदल पलटन और टैंकों ने भारी हमला किया। इस कम्पनी का संचालन कप्तान बागड़ी कर रहे थे। वे तीसरी पलटन के कमांडर थे; लेकिन अब मिनविन पर हमला करने वाली कम्पनी का संचालन करने के लिए खुद आये थे। उनके दाहिनी ओर एक जापानी कम्पनी रखी गई थी। १० बजे के लगभग १००० सैनिक और टैंक मिनविन की ओर से काब्यू की ओर जाते हुए

दिखाई दिये। हमारे सैनिक एक बिलकुल खुले मैदान के बीच में जम गये; जहां भूमि या आकाश से होनेवाले हमलों से बचाव के लिए कोई रुकावट न थी। हमारे सामने रक्षा का केवल उपाय वे टैंक-तोड़क सुरंगें थीं जो हमने पास की जापानी टुकड़ी से मांग ली थीं और अपने मोर्चे के सामने वृत्ताकार में बिछा दी थीं। हमारे सभी सैनिक जानते थे कि ऐसी भूमि पर शत्रु को रोकने का प्रयत्न व्यर्थ है। शत्रु की हवाई सेना भी काम कर रही थी और सुबह से ही हमारी खाइयों पर बम और मशीनगनों की गोलियां बरसा रही थी।

पहले शत्रु जापानी मोर्चे की ओर बढ़ा। उसका एक टैंक टैंक-तोड़क सुरंग से बेकार हो गया। यह देखकर जापानी सैनिकों का उत्साह बहुत बढ़ गया। शत्रु का कालम तब हमारे मोर्चे की ओर बढ़ा। उसके पीछे पैदल सेना आ रही थी जो लड़ाई के लिए तैयार करके रखी गई थी। हमारे मोर्चे के पास आते ही शत्रु का एक दूसरा टैंक एक सुरंग-क्षेत्र में घुस गया और उलट गया। उससे हमारे सैनिकों को बड़ी प्रसन्नता हुई और शत्रु के टैंक आगे बढ़ने से रुक गये। लेकिन शत्रु की पैदल सेना बढ़ती गई। उसमें अंग्रेज सैनिक थे। उनको इतना पास आया हुआ देखकर हमारे सैनिकों ने संगीनें चढ़ा लीं और 'जय हिन्द' और 'नेता जी की जय' के नारे लगाते हुए वे शत्रु का मुकाबला करने के लिए २०० गज बढ़ गये। जापानियों ने भी हमारे सैनिकों को हमला करते देखकर ऐसा ही किया। वे भी ६०० गज आगे बढ़ आये।

इस जापानी कम्पनी में लगभग १५० आदमी थे। शत्रु-सेना में लगभग १००० सैनिक थे। उन्होंने मशीनगनों और बन्दूकों से जापानियों पर गोलियां बरसाईं और उनको जमीन पर लिटा दिया। इसके बाद वे उन्हें घेरने के लिए आगे बढ़े। जापानियों के लगभग ६० प्रतिशत अफसर और सैनिक मारे गए और बाकी घिर जाने के भय से पीछे को मुड़ पड़े और मुर्दों और घायलों को वहीं ही पड़ा छोड़कर अपनी खाइयों में जा घुसे।

कप्तान बागड़ी ने, जो यह सब स्थिति देख रहे थे, शत्रु पर बड़ी तेज गोली-वर्षा की और उसको बहुत हानि पहुंचाई। तब उन्होंने एक ओर से प्रत्याक्रमण किया और उसको पीछे हटा दिया। वे सब जापानी मुर्दों और घायलों को अपनी पंक्ति में उठा लाये। सायंकाल को जापानी ब्रिगेडियर जापानी कम्पनी को बचाने और जापानी घायलों और मुर्दों को उठाकर लाने के लिए मुझे धन्यवाद देने और आजाद हिन्द फौज के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए खुद मेरे पास आया।

यह निश्चित हुआ कि हम उस रात को मिनबिन पर हमला करें; लेकिन हमारी कार्रवाई सम्बन्धी आज्ञाओं के शत्रु के हाथ लग जाने से वह स्थगित कर देना पड़ा। ३० मार्च की शाम को भी जापानी तोपखाने के उन दस्तों पर, जो ओइन जाकर हमारी मिनबिन पर हमला करने वाली फौज को सहायता देने वाला था, शत्रु के हवाई जहाजों ने हमला किया और उनकी सब तोपें और गोले-गोलियां नष्ट कर दिये।

दूसरे दिन कप्तान बागड़ी को ग्वेडेकोन पर हट जाने को आज्ञा दी गई। वहाँ उनको लेगी में बचाव करती हुई पहली पलटन के बायें पक्ष की रक्षा करने का काम दिया गया था।

३०-३१ मार्च भी रात को, जो मिनबिन पर हमला करने के लिए नियत की गई थी, दस्ता नम्बर ४, छापामार रेजीमेंट (नेहरू ब्रिगेड) और खान जोबूताई (जापानी दस्तो) अपने-अपने क्षेत्रों में पहुंच गये और ओइन से तोपें चलने की प्रतीक्षा करने लगे। लेकिन दुर्भाग्य से उससे पहले शाम को शत्रु की बम-वर्षा से उस दस्ते की सब तोपें टूट गई थीं। सुबह बहुत तड़के ही हमारे दस्ते फिर अपनी-अपनी इकट्ठे होने की जगहों में आ गये और मिनबिन पर फिर हमला करने की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

उसके बाद दोनों ओर से जोरदार गश्ती कार्रवाई शुरू हुई। हमारे लेगी के गश्ती दस्ते अक्सर सीकटिन में घुस जाते थे और शत्रु की शक्ति और व्यवस्था के बारे में जानकारी ले आते थे। दूसरी अप्रैल को

लगभग १ बजे दिन में शत्रु ने लेंगी की हमारी पंक्तियों पर मशीनगनों से गोलियां चलाईं और गोले गिराये। इसमें हमारे ६ आदमी मारे गये। उस दिन शत्रु ने हमारे लेंगी के दस्तों पर, जो खाइयां खोदने के औजारों की कमी के कारण अपनी खाइयां अधूरी ही बना सके थे, मशीनों से अत्यन्त तेज गोलाबारी की और हवाई जहाजों से बम गिराये। दो घण्टे तक शत्रु के १४ बम-वर्षकों ने हमारे मोर्चों पर बम गिराये और गोलियां बरसाईं। उसके साथ ही शत्रु ने तोपों से हमारे मोर्चे पर दिन भर गोलाबारी की। हमारे आदमी इसमें हताहत नहीं हुए, यह चमत्कार ही था। तोपों की इस गोलाबारी का जवाब देने के लिए हमारे पास जो भारी से भारी हथियार थे, वे तीन-तीन इञ्ची मैदानी तोपें थीं जो शत्रु की तोपों के मुकाबले में बेकार थीं। हमारे अधिकांश सैनिकों ने इस सबका सामना बड़ी वीरता से किया; लेकिन कुछ कमजोर लोग ऐसे भी थे, जो शत्रु से जा मिले। इससे हमारी पंक्तियों में स्वभावतः कुछ निराशा हुई; लेकिन अब जब मैं उन भारी कठिनाइयों का ख्याल करता हूं जिनसे हमारे सैनिक ऐसी लड़ाई लड़ रहे थे जिसमें वे अनुभव करते थे कि वे हार चुके हैं, तब मैं शत्रु की ओर चले जानेवाले इन सैनिकों को दोष नहीं देता।

उस समय बर्मा में लड़ाई की स्थिति हमारे और जापानियों के लिए बहुत नाजुक हो गई थी।

प्रथम, शत्रु ने शान राज्यों में कालाव पर अधिकार कर लिया था और जापानियों की बचाव करती हुई सेना के पच पर नौंगू में हमला करने की दृष्टि से तानगी और मोची की खानों की ओर बढ़ रहा था।

दूसरे, मध्य भाग में शत्रु ने मीकाटिला ले लिया था और प्याबवे में लड़ाई हो रही थी।

तीसरे, इससे भी पश्चिम में मीकटिला—क्योंक याडांग सड़क पर शत्रु १९ मील के लगभग आगे बढ़ गया था और यांत्रिक पैदल

फौज और टैंकों के दस्ते दक्षिण की ओर चले गए थे और नटयौम्स और नौंदविंगी पर कब्जा कर चुके थे।

चौथे, पोपा के मोर्चे पर तौंगथा में शत्रु का जोरदार डिवीजन आ गया था और तौंगथा—पोपा सड़क पर आगे को बढ़ रहा था।

पांचवें, इरावदी के मोर्चे पर शत्रु ने अपनी न्यानगू और पकोकाऊ की पुल चौकियां और अधिक फैला ली थीं।

अराकान मोर्चे पर शत्रु ने तोंगूप पर कब्जा कर लिया था और प्रोम की ओर तेजी से बढ़ रहा था।

जापानियों ने बर्मी लोगों की जो सेना बनाई थी और शिक्षित की थी, उसने जनरल आंगसांग की कमान में मार्च के मध्य में 'गून से प्रोम की ओर कूच करना शुरू किया था। उसका उद्देश्य शत्रु को प्रोम में रोकना था यह सेना प्रोम में पहुँचकर इरावदी को पार करके उसके पश्चिम थायेटमेयो के क्षेत्र में पहुँच गई थी। यहां पहुँचने पर जहां जापानी बहुत कम थे, बर्मी सेना ने घोषित कर दिया कि वह बर्मा सरकार के नियंत्रण से मुक्त है। उसने जापानियों के विरुद्ध लड़ाई का ऐलान भी कर दिया। उसके बाद वह छोटे-छोटे छापामार दलों में विभक्त हो गई और उसको रंगून से प्रोम तक की जापानी यातायात लाइन पर छापे मारने की आज्ञा दी गई। उसने इस कार्य को बहुत ही अच्छी तरह से पूरा किया और जापानियों के लिए अपनी अगले मोर्चे की सेना तक रसद और गोली-बारूद पहुँचाना असम्भव कर दिया। इससे जापानियों की नाज़ुक स्थिति और भी गम्भीर हो गई।

ये छापामार दल सदा ही इस ताक में रहते कि कहीं जापानी फौज की कोई छोटी टुकड़ी तो नहीं जा रही है। यदि उन्हें कोई ऐसी टुकड़ी मिल जाती तो वे उसे नष्ट कर देते। मैं तो कहता हूँ कि बर्मा में जापानियों की विरोध शक्ति के यकायक समाप्त हो जाने का कारण अंग्रेजी फौज की शक्ति की अपेक्षा बर्मी सेना की कर्तव्य-हीनता अधिक था। दूसरी ओर, मैं यह भी अनुभव करता हूं कि बर्मियों के पास इस

प्रकार शत्रु-पक्ष से जा मिलने और अपने पहले साथियों के विरुद्ध लड़ने के लिए पर्याप्त कारण था। जापानियों ने बर्मा पर जब से अधिकार किया था, तभी से उनका अत्यन्त निर्दयता-पूर्वक शोषण किया था। यह सच है कि उन्होंने बर्मा को स्वतंत्र देश घोषित कर दिया था और बर्मी लोगों की सेना बनाई थी, लेकिन वास्तव में ये दोनों ही काम दिखावटी थे। बर्मा सरकार के प्रधान डा० बायाव और उनके मंत्री दुर्बल-संकल्प और स्वार्थी थे। वे जापानियों के शोषण के सामने आसानी से झुक गये थे और बर्मी सेना जापानी अफसरों के सीधे नियंत्रण में होने से स्वतंत्र रूप से कार्य करने के अयोग्य थी। बर्मी लोगों में तीन वर्ष के जापानी शासन के बाद, जिसको उन्होंने खुद सन् १९४२ में अंग्रेजी फौज से लड़कर स्थापित करने में सहायता दी थी, अब यह अनुभव कर लिया था कि वे अंग्रेजों के शासन में ही अधिक अच्छे थे। अन्न की बहुत कमी थी, क्योंकि सब चावल और पशु जापानी सेना के नियंत्रण में थे। कपड़े की भी बेहद कमी थी, क्योंकि बर्मा में अधिकांश कपड़ा हिन्दुस्तान और जापान से आता था। रुपये का मूल्य बहुत गिर गया था। एक मुर्गी का बच्चा साठ रुपये में और एक अंडा तीन रुपये में मिलता था। लोगों की भलाई का खयाल न तो जापानियों ने रखा और न कठपुतली बर्मी सरकार ने। बच्चों की शिक्षा की तो कोई व्यवस्था ही नहीं थी। इन सब कारणों से बर्मा के लोग जापानियों के अधिकार से बहुत दुखी और असंतुष्ट हो गए थे। अंग्रेजी और अमरीकी बम-वर्षक का बर्मा के समस्त सुन्दर नगरों और कस्बों को बम-वर्षा से नष्ट कर रहे थे। इसलिए बर्मियों को यह चिन्ता हो गई थी कि यह लड़ाई; जिसमें बर्मा इतना दुखी और नष्ट हुआ था, जितनी जल्दी सम्भव हो, उतनी जल्दी बन्द हो जाय। जिन बर्मियों से जापानियों ने इतनी आशायें बांधी थीं और उनसे इतने उत्साह के साथ सहयोग किया था, उन्होंने ही अंग्रेजी सेना के वापिस लौटने का स्वागत किया। इस समय ही जनरल आंगसांग ने, जो ३२ वर्ष की आयु के

क्रान्तिकारी बर्मी थे, युवक जापानियों के विरुद्ध विद्रोह करने का और बर्मी सरकार पर से अपना नियंत्रण हटा लेने का निर्णय किया। उन्होंने कुछ विश्वासी बर्मी अफसरों और जनता पर बहुत अधिक प्रभाव रखने वाले बर्मी पुजारियों के साथ मिलकर जापानी शासन को उखाड़ फेंकने की गुप्त योजना बनाई। मार्च के शुरू में; जब वे बर्मी सेना को लेकर रंगून से रवाना हुए, तो बर्मी जनता ने और जापानियों ने उनको बड़े उत्साह से विदा किया। बर्मी दस्तों के जापानी अफसर और फौजी भी उनके साथ थे। थायेटमेयो पहुंचते ही सबसे पहले उन्होंने जापानी अफसरों को मार डाला और उसके बाद स्वतंत्र छापेमार दस्ते बनाकर मोर्चे के अगली पंक्तियों के जापानी सैनिकों को रसद और गोला-बारूद ले जाने वाली लारियों और बैलगाड़ियों पर हमले करके उसको नष्ट करना शुरू किया।

इसमें उनको जो सफलता-मिली, उससे उत्साहित होकर आसपास के अधिकांश युवक भी उनके साथ हो गए और छोटी बर्मी तलवार 'धा' से जापानी सैनिकों पर जब भी अवसर मिलता, हमले करने लगे और उनकी बन्दूकें छीनने लगे।

लेगी की लड़ाई

इस कठिन स्थिति में आजाद हिन्द फौज का दूसरा डिवीजन पोपा-क्यौकयादांग-क्षेत्र में लड़ रहा था और शत्रु की प्रगति रोक रहा था। शत्रु ने अपने पास की सब फौज इस विरोध को साफ करने के लिए काम में लाने का फैसला कर लिया था और इसके लिए उसने तीन ओर से हमारी फौज पर हमला करने की योजना बनाई थी। योजना यह थी :

(अ) दूसरा अंग्रेजी डिवीजन तौंगथा से वेलौंग-सीकटीन पोपा होकर हमला करेगा।

(ब) सातवां अंग्रेजी डिवीजन न्यानगू से क्यौक यादांग तक हमला करेगा।

(स) पांचवां अंग्रेजी डिवीजन मीकटिला से क्यौक यादांग तक हमला करेगा।

पोपा के दूसरे अंग्रेजी डिवीजन का मुकावला करने के लिए आजाद हिन्द फौज का दूसरा पैदल रेजीमेन्ट लेगी में रखा गया था।

१ अप्रैल को सीकटीन-वेलौंग के दोनों ओर स्थित एक चौकी ने शत्रु की हलचलों के बारे में यह खबर दीः—

(१) साढ़े ग्यारह बजे प्रातः शत्रु के १० टैंक ५० सैनिकों के साथ वेलौंग से लेगी की ओर जा रहे थे।

(२) साढ़े तीन बजे शाम को १८ लारियां, २ टैंक, १ वख्तरबन्द मोटर, २ मोटर साइकिलें और २ भारी तोपें वेलौंग से लेगी की ओर जाती हुई देखी गईं। लारियों में सामान और सैनिक थे।

(३) चार बजे शाम को कुछ और टैंक लेगी की ओर जाते हुए देखे गये। इस सेना में सब टैंक मंझोले, भारी शेरमैन और चर्चिल किस्म के टैंक थे। यह सब फौज सीकटीन तक बढ़ी और वहां रुक गई।

सब-अफसर अब्दुल्लाखाँ की कमान में एक मजबूत लड़ाकू टुकड़ी सीकटीन-क्षेत्र में भेजी गई थी। यह गश्ती टुकड़ी आगे बढ़ी और सीकटीन से जाने वाले शत्रु के गश्ती दस्तों से लड़ी। यह २ अप्रैल १९४५ को १० बजकर ४० मिनट पर सदर मुकाम पर लौट आई। १।२ अप्रैल की रात को हमारे मोर्चे पर शत्रु ने कोई कार्रवाई नहीं की।

२ अप्रैल को ११॥ बजे सीकटीन के दक्षिण में शत्रु के २००० सैनिक खाइयां खोदते हुए देखे गए और १ बजकर १० मिनट पर शत्रु के १४ हवाई जहाजों ने लेगी पर लगभग दो घंटे तक भारी बम-वर्षा की और गोलियां चलाईं। सारे गांव में आग लगा दी गई और हमारा सब राशन और बैलगाड़ियों एवं लारियों में लाया हुआ पानी नष्ट कर दिया गया। इस हवाई हमले के समाप्त होते ही शत्रु की तोपों ने हमारी

मोर्चेबन्दियों पर अत्यन्त तेज गोला-बारी शुरू कर दी। यह गोलाबारी रात के नौ बजे तक जारी रही।

दिन के ३ बजे से ५ तक शत्रु की गश्ती कार्रवाई जारी रही। ५ बजे शत्रु की १५ लारियां टैंकों की मदद लेकर सीकटीन से लेगी की ओर गईं। शत्रु-सैनिक हमारे मोर्चे पर पहुँच कर अपनी लारियों में से उतरे और हमारी खाइयों की ओर बढ़े। उनमें से कुछ गिरते हुए देखे गए और बाकी नाले में गायब हो गए। टैंक और लारियां भी मुड़ गईं और सीकटीन की ओर दौड़ गए। इससे हमारी सेना का साहस बढ़ गया और उनमें नया जोश भर गया।

यह बिलकुल प्रत्यक्ष था कि दिन में शत्रु देख-भाल करता और हमारे मोर्चे को तलाश करता रहा था, इसलिए दूसरे दिन पूरी ताकत से हमला किया जाने वाला था, इसे रोकने के लिए तीसरी पलटन की एक कम्पनी पोपा से लाई गई और लेगी में पहली पलटन की दाहिनी ओर नियुक्त कर दी गई।

इस कम्पनी की कमान सिंगापुर में सिखाई गई एक युवक अफसर सेकंड लैफ्टिनेंट केवलसिंह के हाथ में थी। जब अंग्रेजी सेना ने सिंगापुर में आत्म-समर्पण किया तो वह अंग्रेज़ी सेना में नायक था।

३ अप्रैल १९४५ को कुछ अफसरों के भाग जाने से हमारे अफसरों और सैनिकों में कुछ डर और निराशा दिखाई देने लग गई थी। हर एक आदमी यह अनुभव करता जान पड़ता था कि शत्रु को हमारी खाइयों का पूरा पता चल गया है और उसकी ताकत बहुत अधिक होने से हमारा मामला निराशाजनक है। इसी समय कर्नल सहगल ने जो लेगी में मौजूद थे, खुद फौज की कमान संभाली। साढ़े ग्यारह बजे शत्रु की एक फौज, जिसमें १२ मंझौले टैंक, ३० हलके टैंक, ६० लारियां, १२ तोपें और १००० पैदल सैनिक थे, हमारी 'स' कम्पनी मुकाबले जो हमारे बाईं ओर को थी, आगे को बढ़ी।

१२ बजे शत्रु की तोपों ने हमारी खाइयों पर बहुत तेज गोलाबारी शुरू की।

१२ बजे दिन में शत्रु के ११ मझोले टैंकों, ३० बख्तरबंद मोटरों और ६० लारियों का एक शत्रु-दल लेगी की ओर बढ़ता हुआ देखा गया। यह दल हमारी खाइयों के सामने १००० गज दूर रुक गया और पंक्तियों के रूप में बिखर गया।

३ बजे शत्रु के सैनिकों का एक छोटा दल हमारी दाहिनी ओर गया और हमारी 'ब' पंक्तियों पर हमला किया। हमारे सैनिकों के लिए यह बिलकुल आकस्मिक हमला था। उस वक्त वे खाना पका रहे थे या राशन और पानी ले जा रहे थे। हमारे बहुत आदमी हताहत हुए। शत्रु ने इस पर कब्जा कर लिया; लेकिन सायंकाल ७ बजे से पहले इसकी खबर हमारे सदर मुकाम में नहीं पहुंच सकी।

'१ बजकर ४९ मिनट पर सैकंड लैफ्टिनेंट केवलसिंह की कमान में जो कम्पनी थी उसकी खाइयों पर भारी गोलाबारी के बाद लगभग एक पलटन ने हमला किया। शत्रु के ये सैनिक हमारी खाइयों के बहुत पास आ गये। यद्यपि बड़ी भयंकर घमासान लड़ाई के बाद पीछे हटाया जा सका; लेकिन उनके बहुत ज्यादा आदमी हताहत हुए।

२ बजे शत्रु के लगभग एक प्लाटून ने, जो हमारे पंक्तियों में घुस आया था, हमारे पीछे गोलियां चलाईं, इनका जवाब दिया गया, और शत्रु को इस जगह से पीछे हटा दिया गया। इस समय तक शत्रु की छोटी तोपें और मैदानी तोपें सामने से हमारे ऊपर गोले फेंक रही थीं। हमारे दाहिनी ओर, बाईं ओर और पीछे से उनकी गोलाबारी जारी थी।

४ बजे शत्रु की तोपों ने हमारी दाहिनी ओर लगभग १० मिनट तक गोले बरसाये। इस बीच में लगभग १५० गोले फेंके गये होंगे। इसके बाद एक नई पलटन ने लैफ्टिनेंट केवलसिंह की कम्पनी पर हमला किया। इस कम्पनी ने एक बार फिर अत्यंत वीरता के साथ

अपनी खाइयों की रक्षा की और शत्रु को भारी हानि पहुंचाने के बाद पीछे हटा दिया।

इस तमाम लड़ाई में कम्पनी के कमांडर सेकण्ड लैफ्टिनेंट केवल-सिंह और एक प्लाटून कमांडर हवलदार अब्दुल मन्नू दो पहाड़ियों की चोटी पर खड़े हो गये थे और खुद अपने दस्तों को गोलियां चलाने के बारे में हिदायतें दे रहे थे। ये दोनों वीर अफसर छोटे हथियारों की गोलियों की पहुंच में आ जाने पर भी अपनी जगह से नहीं हटे। इन दोनों अफसरों की वीरता के कारण ही शत्रु को बार-बार किये हमलों में पीछे हटाना पड़ा।

इस समय यह प्रत्यक्ष हो गया था कि शत्रु हमारी दाहिनी ओर से हमारे मोर्चे में प्रवेश करने का इरादा कर चुका है; इसलिए 'स' कम्पनी, जो बाईं ओर थी, वहां से हटाकर लैफ्टिनेंट केवलसिंह की कम्पनी की सहायता के लिए दाहिनी ओर लगा दी गई।

७ बजे सायं यह खबर मिली कि 'ब' पंक्तियों पर शत्रु ने हमला करके कब्जा कर लिया है। इसलिए 'स' कम्पनी को प्रत्याक्रमण करने और शत्रु को उस क्षेत्र से हटाने की आज्ञा दी गई। लैफ्टिनेंट गंगासिंह ने रात को ६ बजे हमला किया और उसमें उसको पूरी सफलता मिली। शत्रु के सैनिक भारी हानि उठाकर तितर-बितर होकर भाग गए।

७॥ बजे हमारे दाहिनी ओर शत्रु ने फिर तोपों से हमला किया और लैफ्टिनेंट केवलसिंह पर तीसरी बार हमला किया गया। उनकी वीर कम्पनी ने एक बार फिर शत्रु को पीछे हटा दिया। इसी समय शत्रु की एक सेना, जिसमें लगभग दो कम्पनियां थी, टैंकों के साथ हमारी बाईं ओर 'ब' कम्पनी के सामने आगे बढ़ी, लेकिन दोनों ओर से थोड़ी-सी गोलाबारी के बाद यह सेना आसानी से पीछे को हटा दी गई।

इस समय कर्नल सहगल ने कुमुक मांगी और मेजर बी० एस०

नेगी की कमान में तीसरी पलटन की एक दूसरी कम्पनी उनके पास भेज दी गई।

४ अप्रैल को लगभग २ बजे रात को हमारी मोर्चेबन्दी पर शत्रु का घेरा पड़ जाने और अत्यन्त कठिन अवस्थाओं में अत्यंत वीरता के साथ लड़ने के बाद हमारे सैनिकों के थक जाने के कारण कर्नल सहगल ने सेना को पोपा की ओर पीछे हटने की आज्ञा दी। निदान सेना पीछे को मुड़ पड़ी और ७ बजे प्रातः पोपा में आगई।

उसी दिन कर्नल जी० एस० ढिल्लन को अपने दस्ते के साथ पोपा को लौटने की आज्ञा दी गई। और वे ५ अप्रैल को नेहरू ब्रिगेड को लेकर पोपा आ गये। तब मैंने ब्रिगेड-कमांडरों का एक सम्मेलन किया जिसमें यह तय किया गया कि पोपा के बचाव का कार्य नेहरू ब्रिगेड को सौंपा जाय और कर्नल प्रेमकुमार सहगल सेना का पुनः संगठन करें और शत्रु पर आक्रमण करने के लिए तैयार रहें।

७ अप्रैल को पोपा से २ मील उत्तर क्यौकताग़ा में हमारी जो कम्पनी थी उस पर शत्रु ने हमला किया; लेकिन इसमें शत्रु को पीछे हटा दिया गया। ८ अप्रैल को मुझे आज्ञा मिली कि दूसरा डिवीज़न पोपा से हटाकर मगवे-मिनबू-यौनबूहंगी ले जाया जाय जहां कर्नल एस०एम० हुसेन की कमान में पहला पैदल रेजीमेंट मार्च १९४५ से लड़ रहा था।

दस्तों को नया काम जो दिया गया, वह था शत्रु के छाता-सैनिकों से अपने क्षेत्रों की रक्षा करना और अपने यातायात के मार्गों को बचाना।

पोपा से वापिसी

१० अप्रैल को पोपा के दस्तों को कूच करने की आज्ञा दी गई। उनके पीछे हटने के मार्ग ये थे :

डिवीजनल सदर मुकाम और चौथा रेजीमेंट एक बैलगाड़ियों के रास्ते में होकर पीछे हटेंगे जो क्यौक यादांग पौलू-येजन-भोक्योटन-

वेतमासूत और मगवे गांवों में होकर जाता था।

दूसरी पैदल पलटन क्यौक यादांग क्याटकून-सैगोन-मागीगांव-यौमून-नतसौक और तोंग निंगी में होकर जाने वाले मार्ग पर होकर जायंगी।

१० अप्रैल को हमारे डिवीजनल सदर मुकाम और अस्पताल के क्षेत्र पर ३९ अंग्रेजी बम-वर्षकों ने भारी बम-वर्षा की। उन्होंने अत्यंत तेज भड़कीले और दाहक बम गिराये जिनसे हमारे बीमार और घायल सैनिकों में से बहुत से हताहत हुए। यह खबर हमारी ओर से गये हुए अफसरों और सैनिकों ने शत्रु को दी होगी। उसी दिन हमारे फौजी सदर मुकाम पर शत्रु की भारी तोपों ने भी गोले बरसाये।

१२ अप्रैल को क्यौक यादांग की हमारी आगे की कम्पनी को शत्रु के टैंकों और पैदल सेना ने घेर लिया। यह वह कम्पनी थी जिसकी कमान लैफ्टिनेन्ट केवलसिंह के हाथ में थी और जिसने लेगी में इतनी वीरता से मुकाबला किया था। बाकी पल्टन से कट जाने पर भी कम्पनी के सैनिक लड़ते रहे। अंग्रेज कमांडर ने कम्पनी की इस निराशाजनक स्थिति को देखते हुए लैफ्टिनेन्ट केवलसिंह को खबर भेजी कि वे आत्म-समर्पण कर दें। लैफ्टिनेन्ट केवलसिंह ने उत्तर भेजा—"जनाब, अभी हमारे पास कुछ गोली-बारूद बाकी है। मैं अभी आपके पास नहीं आऊंगा।" वे जब तक उनकी पूरी गोलियां खत्म न हो गईं तब तक लड़ते गए और उसके बाद उन्हें आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

उसी दिन शत्रु ने अत्यन्त तेज गोलाबारी के बाद क्यौक यादांग को ले लिया और हमारा येनान, ग्यौंग और संगवे को लौटने का एक मात्र मार्ग बन्द कर दिया।

इसी बीच में मीकटिला से आनेवाली शत्रु-सेना हमारे क्यौक-यादांग से १० मील पूर्व के मोर्चे पर भारी हमला कर रही थी। यहां हमारी सेना को अपने मोर्चे को कायम रखने में बड़ी कठिनाई हो रही थी।

डिवीजन का मुख्य हिस्सा पोपा से १२-१३ अप्रैल को २ बजे रात को रवाना हो गया। जब हम क्यौक यादांग को जा रहे थे तब हमें मालूम हुआ कि शत्रु के गश्ती दस्तों ने सड़क रोक रखी है। इसलिए हमें अपने सब यांत्रिक यातायात साधन सड़क पर ही छोड़ देने पड़े और शत्रु के घेरे को तोड़कर निकलने का प्रयत्न करना पड़ा। चौथे छापा-मार रेजीमेंट के कमांडर कप्तान खान मुहम्मद को अगले दस्ते का कमांडर बनाया गया और उन्हें एक दरार बनाने की आज्ञा दी गई; जिसमें होकर बाकी डिवीजन निकल सकें। पोपा-तौंगथा सड़क पर शत्रु की प्रगति रोकने के लिए कप्तान बागड़ी की कमान में तीसरी पल्टन पोपा में छोड़ दी गई जिससे बाकी डिवीजन को घेरे में से निकल जाने का समय मिल जाय।

१३ अप्रैल को ८ बजे प्रातः डिवीजन शत्रु के घेरे को तोड़कर इंडोवाक्री के क्षेत्र में आ गया था। यह एक खुला क्षेत्र था, जिसमें जहां-तहां पेड़ थे। इस क्षेत्र में तमाम डिवीजन दिनभर रहा। यहां हम शत्रु के हवाई जहाजों की निगाह से कैसे बच सके, यह एक आश्चर्य ही है। शत्रु के ये हवाई जहाज इस क्षेत्र में लगातार गश्त कर रहे थे। उसी दिन कप्तान बागड़ी की सेना पोपा में अपना काम पूरा करके इंडोवाक्री में आ गई और अपने ब्रिगेड में शामिल हो गई।

१३ अप्रैल की शाम को इंडोवाक्री के पास ही मैंने दस्तों के कमांडरों को आखिरी हिदायतें दे दीं। पिछली रात को कर्नल सहगल गिर पड़े थे और उनके पैर में मोच आ गई थी। उनको एक बैलगाड़ी में डालकर लाया गया था। डिवीजन के बाकी बीमार और घायल भी बैलगाड़ियों में लाये गए थे। इंडोवाक्री से हम अलग-अलग मार्गों से चले, लेकिन दुर्भाग्य से शत्रु ने नटमौक और तौंटुंगी पर कब्जा कर लिया था; इसलिए कर्नल सहगल को इन स्थानों से बचकर चलना और प्रोम पहुंचने का प्रयत्न करना पड़ा। रास्ते में उनका सब राशन खत्म हो गया। शत्रु की सेना उनका पीछा कर रही थी। यात्रा के

आरम्भिक भाग में दूसरा रेजीमेंट एक कालम बनाकर चलता रहा; लेकिन बाद में मटमौक्क के क्षेत्र में पहुंचने पर कर्नल सहगल ने अपनी फौज को दो कालमों में बांटने का निर्णय किया। इतनी बड़ी सेना के लिए स्थानीय रूप से राशन जुटाना भी कठिन होता था और यह डर भी था कि अंग्रेजी हवाई जहाज, जो समस्त क्षेत्र में बड़ी सावधानी से खोज कर रहे थे, उन्हें कहीं देख न लें। एक कालम .जिसमें दस्ते का सदर मुकाम, दूसरी पलटन और पहली पल्टन थीं, कर्नल सहगल की कमान में चला। दूसरा कालम, जिसमें तीसरी पलटन थी, कप्तान बागड़ी की कमान में केवल कुछ फासला देकर उसके समानान्तर मार्ग पर चला। ये दोनों कालम शत्रु की आंखों से बचकर तौंदविंगी से आगे तक निकलने में सफल हो गये।

कप्तान बागड़ी की वीर-गति

२० अप्रैल के आसपास, जब कप्तान बागड़ी का कालम तौंदविंगी से लगभग २० मील दक्षिण की ओर था, तब शत्रु के टैंकों .ने उसको आ घेरा। उसी समय पलटन खुले धानों के खेतों के बीच में एक छोटे गांव में बिखर गई। संतरियों ने कप्तान बागड़ी को बताया कि शत्रु के टैंक बड़ी संख्या में गांव के पास आ गये हैं! उनकी पलटन इस हमले के लिए तैयार न थी। इतना वक्त भी न था कि वे खाइयां खोद सकते और न उन इस्पाती राक्षसों से लड़ने लायक उनके पास हथियार थे। कप्तान बागड़ी के सामने दो ही मार्ग थे—एक शत्रु के सामने आत्म-समर्पण कर दिया जाय, दूसरा, जान पर खेलकर लड़ा जाय और वीर-गति प्राप्त की जाय। उन्होंने अपने सैनिकों को बुलाया और उनके सामने स्थिति खोलकर रखी। उन्होंने कहा—"हमें शत्रु के टैंकों ने घेर लिया है। हमें या तो लज्जाजनक ढंग से आत्म-समर्पण कर देना चाहिए या एक सच्चे सैनिक की भांति वीरता-पूर्वक लड़ते-लड़ते जान देनी चाहिए।" उन्होंने यह भी कहा—"मैं खुद कायर अंग्रेजों के

सामने हथियार डालने का खयाल भी नहीं कर सकता। मैंने अन्तिम समय तक लड़ने का निर्णय किया है।" यह कहकर उन्होंने १०० सैनिक लेकर शत्रु के टैंकों पर हमला किया। हाथों में दस्ती बम और पैट्रोल से भरी हुई बोतलें लेकर वे शत्रु की मोटरों पर टूट पड़े और शत्रु के एक टैंक और एक बख्तरबंद मोटर को तोड़ दिया। दूसरे टैंक पर हमला करते-करते कप्तान बागड़ी के मशीनगन की गोली लगी और वे सदा के लिए वहां ही सो गये। उनके अनुगामियों में से अधिकांश ने वीर-गति पाई।

जिन अंग्रेज अफसरों ने कप्तान बागड़ी की लड़ाई को देखा, वे उनकी वीरता और अभयता से चकित रह गए। वे यह जानना चाहते थे कि कप्तान बागड़ी ने अपने सामने मौजूद कठिनाइयों को जानते हुए भी शत्रु के टैंकों पर क्यों हमला किया और इस प्रकार मृत्यु का आवाहन क्यों किया। कारण तो सीधा-सादा था; लेकिन वह अंग्रेज की समझ में नहीं आ सकता था। हिन्दुस्तान के सच्चे सपूत मारे जा सकते हैं, किन्तु वे हराये नहीं जा सकते। बागड़ी जानते थे कि शत्रु के टैंक पर हमला करके वे मृत्यु से टक्कर ले रहे हैं; लेकिन उनको इसका भय नहीं था। वे हार स्वीकार नहीं कर सकते थे। इस प्रकार आजाद हिन्द फौज के एक वीर सैनिक की मृत्यु हुई।

२७ अप्रैल को दूसरा कालम नौदविंगी से सफलता पूर्वक बच निकलने के बाद कर्नल सहगल की कमान में म्येब गांव में आ पहुंचा। यह गांव अलेनमायो से लगभग २ मील दूर था। इस गांव में उनको भारी लड़ाई होती मिली। दोनों ओर से तोपें चल रही थीं। तब कर्नल सहगल ने सड़क से लगभग ३ मील पूर्व की ओर मागी गांव नाम की जगह चुनी। उन्होंने अपने दस्ते को वहां रक्षा-पंक्ति बनाने की आज्ञा दी। यह क्षेत्र बचाव के लिए बिलकुल उपयुक्त था, क्योंकि वह तीन ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ था और चौथी ओर एक नदी बहती थी। सब पहाड़ियों पर जहां-तहां पहरेदार नियत कर दिये गए

आरम्भिक भाग में दूसरा रेजीमेंट एक कालम बनाकर चलता रहा; लेकिन बाद में मटमौक्क के क्षेत्र में पहुंचने पर कर्नल सहगल ने अपनी फौज को दो कालमों में बांटने का निर्णय किया। इतनी बड़ी सेना के लिए स्थानीय रूप से राशन जुटाना भी कठिन होता था और यह डर भी था कि अंग्रेजी हवाई जहाज, जो समस्त क्षेत्र में बड़ी सावधानी से खोज कर रहे थे, उन्हें कहीं देख न लें। एक कालम जिसमें दस्ते का सदर मुकाम, दूसरी पलटन और पहली पल्टन थीं, कर्नल सहगल की कमान में चला। दूसरा कालम, जिसमें तीसरी पलटन थी, कप्तान बागड़ी की कमान में केवल कुछ फासला देकर उसके समानान्तर मार्ग पर चला। ये दोनों कालम शत्रु की आंखों से बचकर तौंदविंगी से आगे तक निकलने में सफल हो गये।

कप्तान बागड़ी की वीर-गति

२० अप्रैल के आसपास, जब कप्तान बागड़ी का कालम तौंदविंगी से लगभग २० मील दक्षिण की ओर था, तब शत्रु के टैंकों ने उसको आ घेरा। उसी समय पलटन खुले धानों के खेतों के बीच में एक छोटे गांव में बिखर गई। संतरियों ने कप्तान बागड़ी को बताया कि शत्रु के टैंक बड़ी संख्या में गांव के पास आ गये हैं! उनकी पलटन इस हमले के लिए तैयार न थी। इतना वक्त भी न था कि वे खाइयां खोद सकते और न उन इस्पाती राक्षसों से लड़ने लायक उनके पास हथियार थे। कप्तान बागड़ी के सामने दो ही मार्ग थे—एक शत्रु के सामने आत्म- — दिया जाय, दूसरा, जान पर खेलकर लड़ा जाय और वीर- की जाय। उन्होंने अपने सैनिकों को बुलाया और उनके . स्थिति खोलकर रखी। उन्होंने कहा—"हमें शत्रु के टैंकों ने घेर लिया है। हमें या तो लज्जाजनक ढंग से आत्म-समर्पण कर देना चाहिए या एक सच्चे सैनिक की भांति वीरता-पूर्वक लड़ते-लड़ते जान देनी चाहिए।" उन्होंने यह भी कहा—"मैं खुद कायर अंग्रेजों के

अंतिम हिदायतें देने के बाद डिवीजनल कमांडर कर्नल शाहनवाज अपनी सेना के साथ भगवे को रवाना हुए, जो १०० मील दक्षिण की ओर था। दूसरे दिन प्रातः वे ईनो गांव में आ गये और एक बौद्ध-मंदिर में दिन बिताया। उनके सैनिक तमाम रात एक रेतीले क्षेत्र में होकर चले थे, इसलिए बहुत ज्यादा थक गये थे। उस समय शत्रु उन्हें चारों ओर से घेरता आ रहा था और सब मुख्य सड़कें और मुख्य मार्ग उसके हाथ में थे। इसलिए कर्नल शाहनवाज ने शत्रु से, जो आगे चला गया था, बच निकलने के लिए जंगल का रास्ता चुना था। तेल के कुएं भी, जहाँ हमला हो रहा था, बीच में पड़ते थे; इसलिए शत्रु की पंक्तियों में से निकल कर भगवे पहुंचने में बहुत सन्देह था। लेकिन इन सब कठिनाइयों के बावजूद हमारे सैनिकों ने आगे बढ़ना जारी रखा। उनका राशन समाप्त हो गया था और इनको गाँवों में से जो कुछ वे खरीद सके थे, उसी से काम चलाना पड़ा था।

१८ अप्रैल को ४ बजे प्रातः यह सेना शत्रु से बचकर भगवे में पहुँच गई। यहां उन्हें कर्नल हुसैन मिल गये। वे पहले पैदल रेजीमेंट के कमांडर थे जिसे भगवे, किनवू और तौंदविंगी के क्षेत्रों की रक्षा का काम सौंपा गया था। डिवीजनल कमांडर के साथ जो फौज आई थी, वह भगवे के क्षेत्र में जहां-तहां भेज दी गई। तब कर्नल हुसैन ने डिवीजन के कमांडर को अपने क्षेत्र की स्थिति बताई। उन्होंने बताया कि तौंदविंगी पर, जिसकी रक्षा मेजर बी० एस० रावत की कमान में पहली पलटन कर रही थी, शत्रु के हाथों में चला गया है। अब आजाद हिंद फौज और जापानी उसे वापस लेने के लिए भयंकर हमले कर रहे हैं। भगवे के मोर्चे पर कल सायं शत्रु के टैंकों ने यहां से १२ मील पूर्व की हमारी चौकियों पर हमला किया था; लेकिन जब उनके ऊपर गोले चलाये गए तो वे तोनानगी की ओर वापिस चले गये।

इससे यह प्रकट था कि स्थिति तेजी से बदल रही है और भगवे पर कल या परसों ही हमले की आशा की जा सकती है। तब मेजर

मानसिंह को जो मगवे की रक्षा करने वाली दूसरी पलटन के कमांडर थे, तीन कम्पनियों के साथ उन चौकियों की मदद के लिए जाने की आज्ञा दी गई; जिस पर पहले दिन हमला किया गया था। सब बीमार लोग और सब कीमती सामान लैफ्टिनेंट कर्नल रोडरीग्स की कमान में नदी के पार मिम्बो को भेज दिया गया।

मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि पहले पैदल रेजीमेंट का, जिसमें शायद आजाद हिन्द फौज के सबसे अच्छे सीखे हुए सैनिक थे, सब भारी हथियार और दूसरा सामान छिन गया था। मलाया से बर्मा आते समय उनके पास ३ मैदानी तोपें और मशीनगनें थीं। हमने इस कमी को दूर करने का बहुत प्रयत्न किया; लेकिन हमें नया सामान मिल ही नहीं सका। इसलिए उसको शत्रु के टैंकों के मुकाबले बन्दूकों और हलकी मशीनगनों से ही रेगिस्तान के समान बिलकुल खुले क्षेत्र का बचाव करना पड़ा। उसके पास सुरंगें या तोपें भी नहीं थीं जिनसे वह टैंकों को तोड़ सकता।

दूसरे दिन शत्रु ने हमारी चौकियों के पास छाता-सैनिक उतार दिये। हमारे सैनिक उनसे तुरन्त भिड़ गये और उन्हें पीछे हटने के लिए बाध्य कर दिया। उसी दिन पोपा से कुछ और सेना मगवे में आ गई। वह पिछले ७ दिन से लगातार चलती आ रही थी। शत्रु के हवाई हमलों के कारण वह केवल रात को ही चल सकती थी। दिन में उसे शत्रु के हवाई हमलों से बचने के लिए छिपना पड़ता था। इस यात्रा में सेना के सैनिक बहुत कम सो सके थे, इसलिए वे मगवे में जब आकर लगे तो थकान से बिलकुल चूर-चूर हो रहे थे। इस स्थिति में पहला आवश्यक काम उनको थोड़ा आराम देना था जिससे वे फिर तरो-ताजा हो सकें और अपना संगठन फिर से कर सकें।

३ बजे सायं शत्रु के टैंक हमारी बाहरी चौकियों में आ घुसे और अचानक मगवे में भी पहुँच गये। हमारे पास अपनी चौकियों से सम्बन्ध रखने का हरकारे के अतिरिक्त अन्य कोई साधन न था। इस-

लिए उनके लिए हमारे शत्रु के टैंक-कालम के आ पहुंचने की खबर देना सम्भव न था। मगवे में बहुत कम सेना थी इसलिए कोई संगठित मुकाबला नहीं किया जा सका। चौथे रेजीमेंट के लैफ्टिनेंट कर्नल जी० एस० ढिल्लन और मेजर चन्द्रभान ने कुछ आदमी इकट्ठे किये, एक रक्षा-पंक्ति बनाई और कुछ घंटे तक शत्रु को रोका। उन्होंने इस प्रकार मगवे की बाकी सेना को अपने अगले लक्ष्य पर लौटने का अवसर दे दिया। उन पर तोपों से जोरदार गोलाबारी की और हवाई जहाजों से भी बमबारी की गई; लेकिन वे तब तक दृढ़ता-पूर्वक अपनी जगह पर जमे रहे जब तक कि उनके सब साथी मगवे से हटा नहीं लिये गए। लेकिन हमारे कुछ सैनिकों को मगवे में आत्म-समर्पण भी करना पड़ा। दुर्भाग्य से पहले पैदल रेजीमेंट के कमांडर कर्नल एस० एम० हुसेन भी उनमें शामिल थे। कर्नल जी० एस० ढिल्लन और मेजर चन्द्रभान अपना काम पूरा कर चुकने पर कामा में पीछे हट आये, जहां डिवीजनल कमांडर ने दूसरे डिवीजन को प्रोम को लौटने की दूसरी आज्ञा दी। १९। २० अप्रैल की रात को दूसरे डिवीजन की बाकी फौज देशी नावों में बैठकर इरावदी के पश्चिमी किनारे पर आ गई। किनवू में कर्नल रोडरीग्स को भी पहले पैदल रेजीमेंट की तीसरी पलटन के साथ प्रोम में हट आने की खबर भेज दी गई। दुर्भाग्य से मानसिंह के पास, जो दूसरी पलटन की बाहरी चौकी पर था, खबर नहीं पहुंच सकी। इसलिए दूसरे दिन उन्हें मगवे में अंग्रेजी फौज के सामने आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

हम जब इरावदी के पश्चिमी किनारे पर पहुंचे तो हमको मालूम हुआ कि तौंदयांगी में शत्रु की जो सेना थी उसने मिन्यांगे और मिन्हला पर अधिकार कर लिया है। इसलिए हमें और भी पश्चिम की ओर हट जाना पड़ा। हमने जंगल के रास्ते से प्रोम पहुंचने की कोशिश की। २८ अप्रैल को मिन्डे गांव में आये, जो कामा से लगभग १० मील उत्तर-पश्चिम में है। रात को बर्मी फौज की सहायता से, जिसने जापा-

नियों से विद्रोह कर दिया था, हमने कामा में इरावदी पार की और हम पूर्वी किनारे पर आ गए। उस समय अलेनमाये में भारी लड़ाई हो रही थी और शत्रु जल्दी-से-जल्दी प्रोम पर कब्जा कर लेने का प्रयत्न कर रहा था।

क्यौक यादांग से प्रोम तक की इस पूरी यात्रा में वर्मी सेना ने, जिसने जापानियों से विद्रोह कर दिया था और मिनवू से प्रोम तक सारे क्षेत्र पर, मुख्यतः इरावदी के पश्चिम में, अपना अधिकार कर लिया था, आजाद हिन्द फौज के साथ अत्यंत मित्रतापूर्ण व्यवहार किया। उसने प्रोम के पश्चिम में ४२ गांवों में अपनी सरकार कायम कर ली थी। इस क्षेत्र में जापानी सैनिक प्रायः नहीं रहे थे। यदि कोई छोटा जापानी दल अंग्रेजों के घेरे से वचने का प्रयत्न करता हुआ मिलता तो वर्मी छापामार उसे घेरे लेते और काट डालते। गांवों के लोग वाग़ी वर्मी सेना के साथ मिलकर काम कर रहे थे जिसने अपना नाम अव 'राष्ट्रीय लोक सेना' रख लिया था और धुरी देशों के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी थी। इस फौज के कमांडर जनरल आंगसांग ने इहायेटमायो में अपना सदर मुकाम वानाय था। उस क्षेत्र में उन्होंने एक बहुत ही शक्तिमान समानान्तर सरकार भी वना ली थी। उन्होंने प्रत्येक गांव में एक अफसर के अधीन कुछ सैनिक नियुक्त कर दिये थे। ये अफसर इन गांवों में साधारण ग्रामीणों के वेश में ही रहते थे और कोई भी यह नहीं वताता था कि वे गांव में हैं। वे अपनी योजना किसी भी विदेशी को नहीं वताते थे। वास्तव में उनको ग्रामीणों ने आश्रय, भोजन और संरक्षण दिया था। ये आदमी गांव की प्रत्येक चीज पर नियंत्रण रखते थे और उनके सहयोग के विना ग्रामीणों से कुछ भी खरीदना, या कोई वैलगाड़ी किराये पर करना सम्भव न था। उस समय गांवों में यह वैलगाड़ी यातायात का एक मात्र साधन थी। इन लोगों को शासन और खुफिया के कामों की शिक्षा खास तौर से दी गई थी। वे गांवों के लोगों के जरिये उस क्षेत्र में शत्रु की गति-विधियों

की सब खबरें मंगा लेते थे। गांवों में संतरी रखे गये थे जो शत्रु की सेना के समीप आने पर चेतावनी देते थे। इसकी खबर देने के लिए प्रत्येक गांव में पेड़ के तने को खोखला करके बनाया हुआ एक ढोल होता था। इन ढोलों से वहुत काम लिया जाता था और इनकी आवाज बहुत दूर तक जाती थी। इन ढोलों के बजते ही सब ग्रामीण पुरुष, स्त्रियां और बालक जंगलों में पहले से तैयार किये गए रक्षा-घरों में भाग जाते थे। इन रक्षा-घरों में उन्होंने अपना सब अनाज संचित कर रखा था। उनके सब पशु भी इन जंगलों में ही छिपे रहते थे। फलतः जब कभी जापानी फौज आती तो उसको गांव उजड़ा हुआ मिलता और उसमें उसको अन्न कहीं भी दिखाई न देता। जापानी सेना के मार्ग में; मुख्यतः जो इस देश पर ही निर्भर थी, यह एक बड़ी बाधा थी।

इस खुफिया-दल के साथ लड़ाकू छापामारों का, जो ४० या ५० के दल बनाकर जंगलों में छिपे रहते थे, पूरा सहयोग रहता था। इन छापामारों के पास जापानियों के नये-से-नये ढंग के हथियार थे और वे बिलकुल चौकन्ने रहते थे। उनको अपने जासूस दलों से जहां कहीं भी किसी जापानी टुकड़ी के होने की खबर मिलती उसको वे वहां ही जाकर समाप्त कर देते। जापानी फौज पर इन छापामारों का गहरा आतंक था। वे जापानियों को समय-समय पर भयंकर रूप से हताहत करते थे। बर्मा में कपड़े की भारी कमी थी, इसलिए बर्मी छापामार जापान के रसद के गोदामों और कपड़े के गोदामों पर हमला करते या उनके मोटर-दलों और रेलगाड़ियों पर, जिनमें ये चीजें होतीं, छिपकर छापा मारते और उन्हें लूट लेते। इस लूट को वे गांवों के लोगों में बांट देते थे। अपने इस व्यवहार से और न्यायपूर्ण एवं उचित शासन से उन्होंने गांवों के सब लोगों की सहानुभूति और उनका सहयोग प्राप्त कर लिया था।

मार्च १९४५ में जब आजाद हिन्द फौज पोपा और मगवे में थी, तब जापानियों ने उससे इन बर्मी छापामारों के विरुद्ध कार्रवाई करने

की प्रार्थना की थी। लेकिन हमने बर्मियों से लड़ने से इन्कार कर दिया। हमने उनको कहा कि हमारी लड़ाई तो हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करने के लिए और केवल अंग्रेजों के विरुद्ध है जिनका उसके ऊपर शासन है। हमारी सेना जापानी सेना नहीं है और न वह जापानी सेना के आधीन है इसलिए हम बर्मी लोगों से नहीं लड़ सकते। आखिर वे भी अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं। ये खबरें जनरल आंगसांग के पास पहुंच गई थीं जिन्होंने अपने फौजियों को हिदायतें निकाल दी थीं कि वे प्रत्येक सम्भव उपाय से आजाद हिन्द फौज की सहायता करें और उससे कभी न लड़ें।

यह सर्व विदित है कि सन् १९४२ से पहले अंग्रेजों ने अपने शासन-काल में बर्मी लोगों और हिन्दुस्तानियों के बीच बहुत ही कटु भाव पैदा कर दिये थे। इसके फल-स्वरूप जब जापानी बर्मा में आगे बढ़े और हिन्दुस्तानियों ने बड़ी संख्या में हिन्दुस्तान आने का प्रयत्न किया तो बर्मियों ने उनमें से हजारों को बेरहमी के साथ काट डाला। इसको देखते हुए बर्मियों के रुख में यह अंतर अवश्य ही आश्चर्य-जनक मालूम होगा। इस परिवर्तन का कारण क्या था? इसका कारण था नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस का व्यक्तित्व। जिन दिनों वे बर्मा में रहे उन दिनों में उन्होंने बर्मा के लोगों के साथ अत्यन्त मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बना लिये थे, इसके फल-स्वरूप वे उन्हें हिन्दुस्तान का ही नहीं, बल्कि बर्मियों और पूर्वी एशिया के दूसरे देशों के लोगों का भी नेता मानने लगे थे। यदि बर्मी सेना ने सहयोग न दिया होता तो दूसरे डिवीजन का मुख्य भाग प्रोम और पीगू में न पहुँच पाया होता।

१ मई को सुबह मैं अपनी सब फौज को कामा के सामने इरावदी को पार करके पूर्वी तट पर उतारने के बाद, मैं भी अपने आखिरी दल के साथ नदी पार कर आया। इस अखीरी दल में मेरे डिवीजन के सदर मुकाम के सब अफसर कर्नल रोडरीग्स, मेजर रामस्वरूप, मेजर मेहर-दास, मेजर ए० बी० सिंह और कर्नल जी० एस० ढिल्लन थे। उस

समय ढिल्लन तीव्र उदर-शूल से पीड़ित थे। सुबह होते-होते हम एक गांव में पहुंचे जो प्रोम से ९ मील उत्तर में था। यहां मुझे खबर मिली कि जापानियों ने प्रोम खाली कर दिया है और उसमें आग लगा दी है। मुझे यह खबर भी दी गई कि वौंगू पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया है, रंगून से जापानी हट गये हैं और नेताजी ने बर्मा-स्थित भारतीय राष्ट्रीय सेना और आजाद हिन्द फौज को अंग्रेजों के सामने हथियार डालने की आज्ञा दी है। लेकिन मैं इन आज्ञाओं को मानने के लिए तैयार न था और लड़ाई जारी देखने का इरादा किये बैठा था। मैं नेताजी के पास, जिनके मौलमीन में होने की अफवाह थी, पहुंचने का प्रयत्न करना चाहता था। इसलिए स्थिति जितनी खराब मैं समझता था, उससे भी ज्यादा बुरी हो गई थी। मैं अनुभव करता था कि मौल-मीन का रास्ता कठिन होगा। बीमार और घायल उसकी तकलीफ को बर्दाश्त न कर सकेंगे। इसलिए मैंने सब बीमारों और घायलों को कर्नल रोडरीग्स और मेजर रंगनाथन की देख-भाल में बालावस्ती नाम के एक हिन्दुस्तानी गांव में छोड़ देने का निश्चय किया। यह दोनों अफसर यह जानते हुए भी कि अंग्रेज उनके साथ बहुत बुरा बर्ताव करेंगे, बड़ी प्रसन्नता से वहां रहने और बीमारों एवं घायलों की देख-भाल करने के लिए तैयार हो गये। उनको आज्ञा दी गई कि जब अंग्रेज प्रोम में आ जायं तब वे आत्म-समर्पण कर दें।

बाकी लोगों को साथ लेकर मैं १ मई को प्रोम से रवाना हुआ। उस समय शत्रु कस्बे पर भारी गोलाबारी कर रहा था और वहां उसको आगे बढ़ने से रोकने के लिए फौज नहीं थी। बीमारों को प्रोम में छोड़-कर रवाना होते समय का दृश्य अत्यन्त हृदय-विदारक था। उनमें से अधिकांश अत्यन्त दुर्बल होने पर भी डिवीजन के साथ ही जाना चाहते थे। अंग्रेजों के सामने आत्म-समर्पण करने के खयाल से खुद ही उनका हृदय विद्रोह कर रहा था। लेकिन आखिर मेरी आज्ञा के अनुसार उन्हें वहां रुकना ही था, क्योंकि मैं इम्फाल से पीछे हटते समय जो

कुछ घटित हुआ था उसे फिर घटित होने देना नहीं चाहता था।

शत्रु अभी तक प्रोम के दक्षिण में नहीं पहुँच पाया था; इसलिए हम प्रोम से रंगून जाने वाली मुख्य सड़क पर चल पड़े। जापानी बड़ी तेजी से हट रहे थे। वे अपने सैनिकों को निकालने के लिए जो गाड़ियां मिल सकती थीं, उन सबका उपयोग कर रहे थे। हमारे पास तो गाड़ियां थी ही नहीं, इसलिए हमारी सेना दिन-रात चलती गई जिससे शत्रु उसे पकड़ न सके। सदा की भांति जापानी हमें इस समय भी संकट-ग्रस्त अवस्था में अकेला छोड़ गये और जितनी तेजी से भाग सकते थे उतनी तेजी से भागे। चूंकि हमारे पास वेतार का तार नहीं था, इसलिए हम अपने चारों ओर की आम स्थिति जानने के लिए उन्हीं के ऊपर निर्भर थे।

५ मई को ७ बजे प्रातः हम एक गांव में पहुंचे जो ओकपो से २ मील दूर था। यहां से जापानी फौज पूर्व में पीगूयोमा पहाड़ों में चली गई। हमने लैटपादान जाने का निर्णय किया।

७ मई को आधी रात के समय हमारा दल तैकची में आ गया। यह जगह रंगून से लगभग ३० मील उत्तर में है। यहां हमें मालूम हुआ कि अंग्रेजी फौज ने रंगून ले लिया है और अब हमें पकड़ने के उद्देश्य से उत्तर की ओर जा रहा है। यहां हम फिर घिराव में आ गये।

मैंने मुख्य सड़क को छोड़कर शत्रु की पंक्तियों को पार कर, सितांग नदी को पार करने और मौलमीन या बंकांग में अपनी फौज से जा मिलने के उद्देश्य से पूर्व की ओर पीगूयोमा पहाड़ी में घुसने का निश्चय किया।

लगभग एक सप्ताह तक हम अत्यन्त सघन जंगलों में होकर पीगूयोमा पहाड़ को पार करते हुए बढ़ते गए और १२ मई को पीगू से लगभग २० मील पश्चिम में नियाता गांव में पहुँच गए। यहां

मुझे मालूम हुआ कि शत्रु ने पन्द्रह दिन पूर्व पीगू ले लिया है और अब वाकी में लड़ाई चल रही है।

मुझे यह भी मालूम हो गया कि जर्मनी ने मित्र देशों के सामने बिना शर्त आत्म-समर्पण कर दिया है और तेज बम-वर्षा के कारण जापान का पतन भी समीप है। मैंने एक दिन उसी गांव में बिताने का निश्चय किया और शत्रु की स्थिति का पता लगाने के लिए एक गश्ती दल पास के गांव में भेजा। गश्ती दल दूसरे दिन लौट आया और सब ठीक बातें भी मालूम कर आया। यह बिलकुल साफ था कि हम पूरी तरह फंस गये थे और अंग्रेजी फौज हमारे चारों ओर घिरती आ रही थी।

लगभग ९०००० जापानी सैनिक भी इसी प्रकार घिरे हुए थे। हमारे ऊपर लगातार बम और तोपों के गोले फेंके जा रहे थे, राशन समाप्त हो गया था और सब गांवों के लोग जंगलों में भाग गए थे। जापानी सूअर के बच्चों, भैंसों, गायों और बंदरों सब को खा रहे थे। स्थिति अत्यन्त गम्भीर थी और हमें सभी बातें निराशाजनक दिखाई देती थीं।

मैंने अनुभव किया कि अब हमारे सामने कोई मार्ग खुला नहीं रहा है। मुझे इन स्थितियों में और अधिक लोगों को बलि देने में कोई लाभ दिखाई नहीं देता था। हमारा राशन समाप्त हो गया था, हमारे पास बहुत कम कारतूस रह गए थे और अब बरसात शुरू हो गई थी। १३ मार्च को लगभग ७ बजे सायंकाल हम नियाता गांव से चल पड़े और एक घने जंगल में रात बिताने के लिए रुक गये। वहां उस उष्ण कटिबन्ध के सघन जंगल में सूर्य छिपने के वक्त पर मैंने अपने सैनिकों के सामने डिवीजन के कमांडर के रूप में अपना आखिरी भाषण दिया। उन वीरों के सामने जिन्होंने भयंकर परीक्षाओं और कष्टों में मेरा साथ दिया था।

उन्होंने जिस वीरतापूर्ण ढंग से हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की

लड़ाई लड़ी थी, जिस धैर्य से सब कठिनाइयां सही थीं उसके लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। मैंने उन्हें बताया कि जिस प्रकार संसार की हालत बदल जाने से और अणु-बम के आविष्कार से और जर्मनी के पतन से हमारा संघर्ष, जिसे हम लगभग २ वर्ष से चला रहे हैं, कोई आशाप्रद नहीं रहा है। फिर भी हमारा हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के अन्तिम उद्देश्य को लेकर शुरू किया गया यह संघर्ष समाप्त नहीं हो गया है। हमें केवल अपने तरीके बदलने हैं। हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई जारी रहेगी, चाहे हमारे साथ कोई साथी हों या न हों। मैंने उन्हें कहा कि इस समय हमारे सामने सबसे अच्छा मार्ग मित्र देशों को आत्म-समर्पण करना और हिन्दुस्तान में वापिस लौटना है। जो लोग जीवित बचे हैं उन्हें हिन्दुस्तान में चलकर हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई फिर शुरू करनी चाहिए।

मैंने उन्हें कहा कि जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरी आत्मा अंग्रेजों के सामने आत्म-समर्पण करना स्वीकार नहीं करती। मैंने अंग्रेजी फौज के ऊपर आत्मघातकारी आक्रमण करने और अपने जीवन को इस तरह समाप्त करने का निश्चय किया है। तब मैंने ५० ऐसे सैनिक मांगे जो अपनी इच्छा से अपने-आप मेरे साथ इस आत्मघातकारी हमले के लिए भेंट करने के लिए चलें। पूरे तीन सौ सैनिक और सब अफसर इसके लिए तैयार हो गए। मैंने उन्हें समझाया कि हमारे पास बहुत कम रुपया बाकी है जिससे हम राशन खरीद सकें इसलिए मैं केवल ५० आदमी ही लेना चाहता हूँ। तब कर्नल ढिल्लन से ३०० स्वयंसेवकों में से ५० आदमी छांटे। मैंने बाकी आदमियों से अन्तिम विदा ली और उन्हें जाकर आत्म-समर्पण करने की आज्ञा दी। मैंने मेजर जागीरसिंह और मेजर ए० बी० सिंह को इस दल के साथ जाने की सलाह दी। कदाचित् मेरे जीवन में वह सब से अधिक दुःखद दिन था जब मुझे अपने सब प्रकार की मुसीबतों में साथ देने वाले साथियों से अलग होना पड़ा। मैंने देखा कि वे वीर जो शत्रु के अत्यन्त

भयंकर आक्रमणों में दृढ़तापूर्वक अपने जगह पर खड़े रहे थे, बच्चों की भांति सिसक-सिसक कर रो रहे थे। उनमें से कुछ लोगों ने, जिन्होंने मेरे साथ चलने के लिए अपने-आपको समर्पित किया था किन्तु जो छांट में नहीं आये थे, अपनी बन्दूकें भर लीं और 'जय हिन्द' का नारा लगाकर आत्मघात करना शुरू किया। इस प्रकार ६ सैनिकों ने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। अंत में मैंने उनको फिर इकट्ठा किया और उनसे बातें कीं। मैंने उनको कहा कि यदि अब एक भी आदमी ने आत्मघात किया तो मैं भी अपनी छाती में गोली मार लूंगा। मेरे इस कथन से आत्मघात बन्द हो गया।

हम सबने वह रात साथ-साथ बिताई और दूसरे दिन मैंने उस दल को मेजर ए० बी० सिंह और जागीर सिंह के साथ जाने और अंग्रेजों के सामने आत्म-समर्पण के लिए उपस्थित होने के लिए विदा किया। जब वे सब चले गए तब मैं अपने ४० आदमियों के साथ, जिनमें कर्नल जी० एस० ढिल्लन, मेजर मेहरदास और कुछ दूसरे अफसर थे, पीगूयोमा पहाड़ों के मध्य भागों में चला गया। वहां हम एक अड्डा बनाना और वहां से शत्रु पर आत्मघातकारी हमले करना चाहते थे। १४ मई की शाम को हम लोढा नाम के एक छोटे-से गांव में पहुँचे, जहां हम रात को रहे। उस समय जोर से मेह बरस रहा था, इसलिए हमें रात में गांव में ही आश्रय लेना पड़ा। सारा गांव अंग्रेज जासूसों से भरा हुआ था; इसलिए हम जहां भी जाते थे हमारे जाने की खबर अंग्रेजों को दे दी जाती थी और चूंकि हमें अपने राशन के लिए गांव वालों पर निर्भर रहना पड़ता था, इसलिए हम जंगल में जाकर नहीं छिप सकते थे।

इस बीच में अंग्रेज अपने मोर्चों को मजबूत करके हमारे गिर्द घेरा तंग करते आते थे। हमें स्थानीय लोगों के दुःख के कारण शत्रु के बारे में जानकारी हासिल करने में कठिनाई होती थी और यह उस पर सफलतापूर्वक हमला करने के लिए आवश्यक था। यह हालत कुछ

दिनों तक जारी रही। चूंकि मैं नहीं चाहता था कि अंग्रेज मुझे जीवित पकड़ लें, इसलिए मैंने इन दिनों में इस बात का बहुत प्रयत्न किया कि मैं मारा जाऊं। मरने से पहले मैं शत्रु को अधिक-से-अधिक हानि भी पहुँचाना चाहता था।

अंत में १७ मई की रात को लगभग ११ बजे जब आकाश में चंद्रमा चमक रहा था, हम सितपिंजीक्स गांव के पास आये। मैंने दल को गांव के बाहर कुछ सौ गज की दूरी पर ठहरा दिया और मैं खुद दूसरे तीन आदमियों के साथ गांव में घूमने गया। जिससे रात को हम वहां ठहर सकें।

मैं ज्यों ही गांव में घुसा, किसी ने हिन्दुस्तानी में कहा—"तुम कौन हो?" मैंने उत्तर दिया—"हम हिन्दुस्तानी हैं।" वे फिर चिल्लाये—"तुम कौन हो?" मैंने उत्तर में पूछा—"तुम कौन हो?" मैंने यह खयाल करते हुए, कि ये शायद हमारे ही आदमी हैं जिन्होंने शत्रु के पास जाने और आत्म-समर्पण करने से इनकार कर दिया है, कहा कि हम आजाद हिन्द फौज के आदमी हैं। उसको जैसे ही यह मालूम हुआ कि हम आजाद हिन्द फौज के आदमी हैं, वैसे ही मैंने एक अंग्रेज अफसर को यह चिल्लाते हुए सुना—"जल्दी गोली चलाओ।" इस आज्ञा के देते ही लगभग १५ गज की दूरी से हमारे ऊपर बन्दूकों और मशीनगनों से लगातार गोलियां दागी जाने लगीं। मेरे तीन साथी जो मेरे दाहिनी और बाईं ओर और सामने थे, तुरंत जान से मारे गये और मेरे हाथ में चमड़े का थैला जिसमें मेरी डायरियां थीं और जो लाल किले में फौजी अदालत के सामने हमारे मुकद्दमे में पेश किया गया था, गोली लगने से मेरे हाथ से छूट कर जा गिरा। मुझे बिलकुल आँच भी नहीं आई; यह आश्चर्य की बात थी। मैं अपने दल के पास वापिस गया और उन सबको अपने साथ ले आया। हमने अंग्रेजी मोर्चे पर हमला किया और उनको वहां से हटा दिया।

लेफ्टिनेंट कर्नल मेहरदास
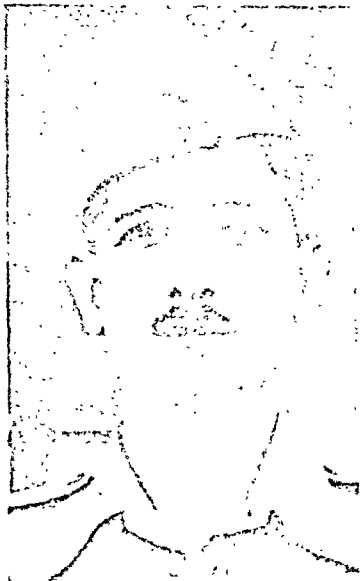
लैफ्टिनेंट कर्नल पी. एस. रतूड़ी

श्री चन्द्रभान यादव

कैप्टन हुसैन

लैफ्टिनेंट कर्नल पी. के. सहगल

लैफ्टिनैंट कर्नल महबूब अहमद
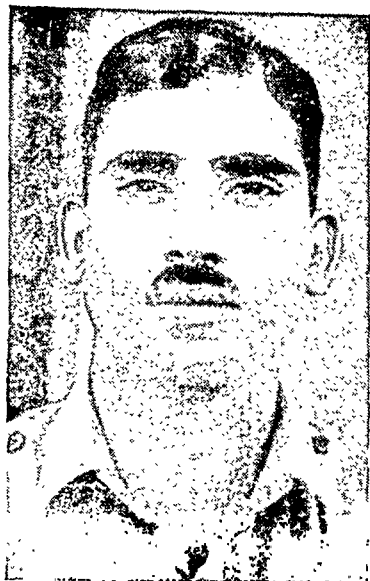
लैफ्टिनैंट कर्नल रामसिंह

लैफ्टिनैंट कर्नल रामस्वरूप

चूंकि हमारा रास्ता रुका हुआ था, इसलिए मैंने कुछ सौ गज पीछे जाने और बचाव की जगह ढूंढने का निश्चय किया।

दूसरे दिन सुबह मैं अपने दल को एक जगह ले गया जो अंग्रेजी तोपखाने से केवल ५०० गज दूर थी। हम अंग्रेजों पर वहां से अंतिम हमला करना और अपने प्राण देना चाहते थे। लेकिन जब हम वहां पहुँचे तो हमने देखा कि हम चारों ओर से अंग्रेजी फौज से घिरे हुए हैं। तब मैंने अपने सब साथियों की एक बैठक की और उनसे कहा कि हम तीन प्रकार से अपने प्राण दे सकते हैं। पहला और सबसे आसान तरीका खुद गोली मारकर मर जाना है। लेकिन मुझे यह पसंद नहीं है, क्योंकि यह कायरता का तरीका है। दूसरा तरीका शत्रु की तोपों पर हमला करना और उनको नष्ट करना या खुद नष्ट हो जाना है और तीसरा तरीका यह है कि अपने आपको अंग्रेजों को पकड़ा दें और उनके हाथों से मारे जायं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अंग्रेज यदि मुझे जीवित पकड़ लेंगे तो मेरा क्या करेंगे। इसका लाभ यह होगा कि हम शायद हिन्दुस्तान को ले जाये जायंगे, फौजी अदालत में पेश किये जायंगे और तब गोली से उड़ा दिये जायंगे। इसमें थोड़ी-सी आशा की रेखा यह दिखाई देती है कि हम सम्भवतः अपने देशवासियों को अपने आन्दोलन के बारे में सब बातें बता सकेंगे और यह आशा भी इसमें छिपी हुई है कि उस अवस्था में हमारी कब्रें हमारे देश में बनेंगी।

मैंने अंतिम चुनाव अपने सैनिकों और अफसरों पर छोड़ दिया। तब कप्तान ढिल्लन बोले "हमें पहले तरीके को तो छोड़ ही देना चाहिए, अर्थात् आत्मघात नहीं करना चाहिए। दूसरा तरीका यद्यपि वीरतापूर्ण है, लेकिन वह भी यहां ही खत्म हो जायगा। तीसरा तरीका सबसे अच्छा है, क्योंकि प्रथम यदि हमें मरना ही हो तो गोली मारने का काम अंग्रेजों पर छोड़ देना ज्यादा अच्छा है। उसमें हमारे सम्बन्धियों और देशवासियों के हृदयों में अंग्रेजों के प्रति घृणा की जड़ रह जायगी और वे कभी भी यह अनुभव कर सकते हैं कि हमारी मृत्युओं का बदला

लेना उनका कर्त्तव्य है। इसलिए उन्होंने अंतिम रास्ता पसंद किया। अधिकांश लोगों ने भी उसका समर्थन किया।

अंत में हमें एक हिन्दुस्तानी पलटन के सैनिकों ने पकड़ लिया और पलटन के सदर मुकाम में पहुंचा दिया, जहां हमारे साथ दयालुता का व्यवहार किया गया। उसके बाद हम ब्रिगेड के डिवीजनल सदर मुकाम में अंत में पीगू की जेल में ले जाये गए।

मैं जब अंग्रेजी फौजी सदर मुकाम में था, कई अंग्रेज और हिन्दुस्तानी अफसर और दूसरे पदों के सैनिक मेरे चारों ओर फिर आये। एक पुराना अंग्रेज अफसर मुझसे बड़ी हेकड़ी के साथ बात करने लगा। उसने मुझसे कई प्रश्न पूछे जिनके उत्तर मैंने वैसी ही हेकड़ी से दिये।

बात-चीत इस प्रकार हुई—

ब्रि० अ०—आप किसके लिए लड़ रहे थे?

उत्तर—हम अपने देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे।

ब्रि० अ०—तब आपने आत्म-समर्पण क्यों किया?

उत्तर—आपको मुझसे यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए। आप कारण भली-भांति जानते हैं। अंग्रेज आत्म-समर्पण करने में कुशल हैं। आपने डनकर्क और सिंगापुर में क्या किया था?

इससे वह बहुत चिढ़ गया। उसने मुझसे फिर पूछा।

ब्रि० अ०—यदि आप हिन्दुस्तान ले जाये जायं और छोड़ दिये जायं तो आप क्या करेंगे?

उत्तर—मैं हिन्दुस्तान की लड़ाई जारी रखूंगा।

ब्रि० अ०—आपको जापानी क्या तनख्वाह दे रहे थे?

उत्तर—जापानी मुझे कोई तनख्वाह नहीं दे रहे थे। हमारे नेताजी हमको तनख्वाह देते थे। डिवीजन के कमांडर के रूप में मेरी तनख्वाह २६० रुपये थी और इसका वास्तविक क्रय-मूल्य मुर्गियों के बच्चों के बराबर था।

ब्रि० अ०–आपके नेताजी को रुपया कहां से मिला ?

उत्तर—वह रुपया हिन्दुस्तानी नागरिकों ने उनको अपनी इच्छा से दान दिया था।

इस पर वह नाराज हो गया और जमीन पर अपना पैर पटककर बोला—"मैं आशा करता हूं कि वे तुम्हें गोली से उड़ा देंगे।" और तब वह चला गया। हम दोनों के बीच की यह बातचीत हिन्दुस्तानी सैनिकों में जंगली आग की तरह से फैल गई। उनको यह विश्वास कराया गया था कि आजाद हिन्द फौज जापानी सेना थी। जब मैं हिरासत में था तो बहुत से सैनिक मेरे पास आते और आजाद हिन्द फौज के बारे में सब बातें पूछते। जब उन्हें आजाद हिन्द फौज के बारे में पूरी बातें बताई गईं तो वे बहुत दुखी हुए और उन्होंने कहा कि अंग्रेजों के प्रचार ने उन्हें गुमराह कर दिया। यदि उनको पूरी बातें पहले मालूम हो गई होतीं तो वे भी आजाद हिन्द फौज में शामिल हो जाते।

दूसरे दिन मुझे पूछ-ताछ के लिए केन्द्र में ले आया गया। जहां मैं २० दिन तक रहा। वहां मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया गया। कमांडिंग अफसर एक आयरिश था।

पीग्यू से मैं पहरे में रंगून पहुंचाया गया और वहां से हवाई जहाज से कलकत्ता भेज दिया गया और अंग्रेजी फौजी पुलिस के सुपुर्द कर दिया गया। कलकत्ता से ४ गोरखा अफसर और सैनिक मुझे दिल्ली ले आये। यह यात्रा बड़ी मनोरंजक रही। कलकत्ता से रवाना होने से पहले हवालात में मेरे साथ जाने वाले सैनिक-दल का अफसर बुलाया गया और उसे पूरी हिदायतें दी गईं। उसे कहा गया—"आप जो आदमी ले जा रहे हैं, यह बहुत ही खतरनाक व्यक्ति है और ब्रिटिश सरकार का भारी शत्रु है। यदि आप शिथिल रहेंगे तो वह आपकी बन्दूक छीन लेगा और आपको गोली मार देगा या डिब्बे से भाग जायगा। यदि यह भाग गया तो आप

या तो गोली से उड़ा दिये जायंगे या कैद में डाल दिये जायंगे। इसलिए सावधान रहें और थोड़ा-सा भी सन्देह हो तो गोली मार दें।"

गोरखा अफसर इस पर चौकन्ना हो गया और कहने लगा कि जैसा कहा गया है, वह ठीक वैसा ही करेगा। तब मुझे एक बंद पुलिस वान में स्टेशन ले जाया गया और वहां मुझे रिजर्व फर्स्ट क्लास डिब्बे में बिठा दिया गया। डिब्बे के बाहर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'खतरनाक कैदी : कोई अन्दर नहीं जा सकता।' गोरखा पहरेदारों को जितना चौकन्ना रहने के लिए कहा गया था वे उतने ही चौकन्ने थे। जैसे ही गाड़ी रवाना हुई मैं एक अलग जगह पर लेट गया। गोरखा सूबेदार ने अपने तीनों आदमियों को मेरे गिर्द घेरा डालने की दृष्टि से विभक्त कर दिया। तब उसने उन्हें अपनी बंदूकें भर लेने की और उन्हें तैयार रखने की आज्ञा दी। मैं जब कभी अपने पैर या हाथ को हिलाता तो चारों ही बन्दूकें मेरे ऊपर झुका दी जाती थीं। मुझे आश्चर्य है कि—उनके इतना भयभीत होने की अवस्था में कोई बन्दूक चल क्यों नहीं गई?

पहले दिन और पहली रात में यह हालत जारी रही। दूसरे दिन सुबह जब उसने सावधानी से मेरी जांच कर ली तो सूबेदार इस नतीजे पर पहुँचा कि मैं तो दूसरे आदमियों के समान ही साधारण आदमी हूँ। अबतक उन्होंने मुझसे एक शब्द भी नहीं कहा था। तब सूबेदार मेरे पास आया और मुझे पूछा कि मैं कौन हूँ और मैंने क्या अपराध किया है। मैंने उसे बताया कि मैं आजाद हिन्द फौज का अफसर हूँ। यह सेना अंग्रेजों की ओर से लड़ने के लिए मलाया भेजी गई थी लेकिन बाद में जब आजाद हिन्द फौज बनाई गई तो मैं हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने के उद्देश्य से उसमें शामिल हो गया।

वह इसे समझ ही न सका और पूछने लगा कि मेरे जैसा अच्छी तनख्वाह पाने वाला किन कारणों से आजाद हिन्द फौज में मिल गया

और अंग्रेजी सरकार से लड़ा। संयोग से यह अफसर चीन पहाड़ियों में मेरे दस्ते के विरुद्ध लड़ा था और आजाद हिन्द फौज के बारे में उसके अपने खयाल थे !

मैंने उससे पूछा कि क्या यह सच है कि वास्तविक लड़ाई में हिन्दुस्तानी और गोरखा फौजें आगे रखी जाती हैं और टामी सैनिक पीछे। उसने कहा—'हां।' तब मैंने पूछा कि क्या आपके सैनिकों अर्थात् गोरखों और अंग्रेज टामियों को बराबर तनख्वाह मिलती है ? उसने कहा—'नहीं।' अंग्रेज टामी को गोरखे या हिन्दुस्तानी सिपाही से चार-गुनी तनख्वाह मिलती है।' तब मैंने उससे इसका कारण पूछा। मैंने कहा कि जब शत्रु की गोलियां खाने का सवाल आता है तो सामने आप रहते हैं, तब टामी को हिन्दुस्तानी सिपाही से चारगुनी तनख्वाह क्यों दी जाती है ?

वह गम्भीर विचार में डूबा हुआ दिखाई दिया और तब अंत में कहने लगा—'साहब, यह अन्याय है।' मैंने उसे कहा कि तनख्वाह, राशन, पेन्शन, घर, यात्रा की सुविधा अंग्रेज अफसरों से हिन्दुस्तानी सैनिकों के साथ किये जाने वाले व्यवहार के 'अन्याय को मिटाने के लिए ही आजाद हिन्द फौज अंग्रेजों के खिलाफ लड़ी।

वह फिर गम्भीर विचार में डूबता दिखाई दिया और अंत में बोला—'अगर आजाद हिन्द फौज इसके लिए लड़ी तब तो उसने बहुत अच्छा किया।

उसने तब मुझसे पूछा कि हमारा प्रधान सेनापति कौन था ? मैंने उसे नेताजी का चित्र दिखाया। उसने चित्र को अत्यन्त प्रशंसा-सूचक भाव से देखा और तब कहा—'ओह,, तब हिन्दुस्तानी भी प्रधान सेना-पति हो सकते हैं ?'

तब उसने अपना हृदय मेरे सामने खोल दिया। उसने कहा कि अंग्रेज ही हिन्दुस्तानी और अंग्रेज सिपाहियों में भेद-भाव करते हैं। अमरीकनों ने बर्मा में पैदा हुए गोरखों की एक पलटन बनाई थी।

उन्होंने गोरखों को वही तनख्वाह दी जो वे अपने सिपाहियों को दे रहे थे।

ये सब बातें सुनने के बाद उसका रुख तुरंत बदल गया। उसने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि वे अपनी बन्दूकें तुरंत खाली कर लें और तब पहले दिन के अशिष्ट व्यवहार के लिए माफी मांगी।

मैंने इस घटना की चर्चा केवल यह दिखाने के लिए की है कि आजाद हिन्द फौज के खिलाफ हिन्दुस्तानियों के और खास तौर से सैनिकों के ख्याल किस तरह से खराब किये गए हैं और उस झूठे प्रचार की पोल कितनी जल्दी खुल जाती है और उसका असर दूर हो जाता है।

१४ जून १९४५ की शाम को मैं दिल्ली पहुँच गया। मुझे सीधा लाल किले में ले जाया गया। मुझसे लगभग एक महीने तक पूछ-ताछ की गई और तब फौजी अदालत में मुकद्दमा चलाया गया जिसका विस्तृत हाल मैं यहां दुहराना नहीं चाहता, क्योंकि हिन्दुस्तान के लोग उसको भली-भांति जानते हैं।

अब मैं यह बताना चाहता हूं कि आजाद हिन्द फौज के बाकी दो डिवीजनों का अंत में क्या हुआ। इनमें से पहला डिवीजन मिनमाना में था और इसके अधिकांश सैनिक अस्पताल में थे।

जैसा पहले कहा जा चुका है, पहला रेजीमेंट इस डिवीजन के बाकी बचे हुए लोगों में से बनाया गया था और कर्नल ठाकुरसिंह की कमान में रखा गया था। यह रेजीमेंट वीरतापूर्वक लड़ा। अंत में वह टैंकों और बख्तरबंद गाड़ियों के कालम के घेरे में आ गया और उसके सब मार्ग शत्रु ने रोक दिये। तौंगू और पीगू पर शत्रु का कब्जा होगया। तब कर्नल ठाकुरसिंह ने पूर्व की ओर पहाड़ों में जाने, सेनांग पार करने और स्याम में पापून में पहुँचने का निश्चय किया। बड़े-बड़े पहाड़ों के पार नक्शों और मार्ग-दर्शकों की मदद के बिना और राशन न होने की अवस्था में सफर करना बहुत ही कठिन काम था। हमारे आदमी पापून से मौलमीन चले गये और वहां से बंकांग पहुँच गये।

जो सैनिक कोहिमा में पहुँचे थे उनमें से अधिकांश सैनिक सुभाष-ब्रिगेड के सैनिक थे। इन सैनिकों ने मार्च १९४४ में चलना शुरू किया था और तब से अब तक लगातार चलते ही रहे थे। इस अर्से में उन्होंने पैदल ३००० मील की यात्रा की होगी। इसमें उनको अत्यंत खराब रास्ता मिला और किसी प्रकार की सवारी नहीं मिली। हमारे सैनिकों की इस आश्चर्यजनक यात्रा की और उनकी भावना की प्रशंसा हमारे विरोधियों ने भी की है।

हमारे सैनिकों ने जब उष्ण कटिबंध के बड़े-बड़े पहाड़ों को पार किया तब शत्रु के छापामार दस्तों ने उनको लगातार तंग किया। उनके पास खाना भी बहुत ही कम था और उन्हें कितने ही दिनों तक जंगल की घास और पत्तियां खाकर निर्वाह करना पड़ा था। अंत में जब अंग्रेजी फौज सितम्बर १९४५ में बंकांग में पहुँच गई तो उनको अपने संकल्प को त्याग देने के लिए सहमत कर लिया गया। पहले डिवीजन के बाकी भाग ने जियाबाड़ी में आत्म-समर्पण कर दिया।

: १२ :

रंगून से नेताजी की रवानगी

अप्रैल १९४५ के मध्य के लगभग तौंगू में जापानियों का प्रतिरोध यकायक टूट गया और शत्रु तेजी से आगे बढ़ गया। जापानी नेताजी के पास आये और उनसे कहा कि वे रंगून से जाने के लिए तैयार हो जायं। पहले तो उन्होंने जाने से इंकार कर दिया और कह दिया कि वे रंगून में रहेंगे और अंतिम समय तक लड़ेंगे।

अंत में उन्हें सब अफसरों ने बंकांग वापस जाने के लिए सहमत कर लिया। जापानियों ने उन्हें एक विशेष हवाई जहाज दे दिया; लेकिन उन्होंने हवाई जहाज से जाने से इंकार दिया। रंगून में झांसी की रानी दस्ते की स्त्रियां एक बहुत बड़ी संख्या में थीं। नेताजी जानते थे कि यदि वे हवाई जहाज से जायंगे तो वे पीछे छूट जायंगी। इसलिए उन्होंने जापानियों से कहा कि जब तक झांसी की रानी रेजीमेंट की सब स्त्रियां न हटा ली जायंगी तब तक वे स्वयं नहीं जायंगे। जापानियों ने कहा कि वे २२ अप्रैल को झांसी की रानी रेजीमेंट की सब स्त्रियों को रंगून से वाब पहुँचाने के लिए एक पूरी रेलगाड़ी की व्यवस्था कर देंगे। लेकिन हमारे दुर्भाग्य से दोपहर को रेलगाड़ी पर बम गिराये गए और रेलवे एंजिन तोड़ दिया गया। इस बीच में शत्रु का दबाव बहुत बढ़ रहा था और वह पीगू के बहुत पास आ गया था जिसके ले लिये जाने पर फौजों का थाईलैंड लौटना असम्भव हो जाता। सब जापानी २३ अप्रैल को रंगून से चले गये; लेकिन नेताजी ने रानी झांसी रेजीमेंट के

हटाये जाने से पहले रंगून छोड़ने से साफ इन्कार कर दिया। इस गम्भीर स्थिति में निस्सन्देह वे बहुत ही शांत थे। वे प्रत्येक छोटी-से-छोटी बात को खुद देखते थे और खुद ही सब कमांडरों को आज्ञायें निकालते थे।

उन्होंने रानी झांसी रेजीमेंट की उन स्त्रियों को, जो वर्मा में रहती थीं, उनके घर भेजने की व्यवस्था की। जो मलाया और थाईलैंड में रहती थीं, उन्हें वे अपने साथ वापिस ले जा रहे थे। अपनी रवानगी से पहले उन्होंने एक विशेष विज्ञप्ति निकालकर वर्मा के लोगों को उनकी और उनकी सरकार को सहायता और सहयोग देने के लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने दूसरा सन्देश वर्मा में रहने वाले हिन्दुस्तानियों और आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के नाम दिया जिसमें उनकी कृपा और उनके महान् त्याग के लिए उन्हें धन्यवाद दिया गया था। किस आश्चर्यजनक गौरव और सुन्दरता के साथ वे रंगून से रवाना हुए थे।

"मेरे वर्मावासी हिन्दुस्तानी और वर्मी मित्रों को।

भाइयो और वहनो! मैं वर्मा से बड़े दुखी हृदय से जा रहा हूँ। हम अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई के पहले दौर में हार गये हैं। लेकिन हम केवल इस पहले दौर में हारे हैं। अभी हमें कई दौरों में लड़ना है। इससे पहले दौरे में हारने पर भी, मुझे निराश होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता।

मेरे वर्मा स्थित, देशवासियो! आपने अपनी मातृभूमि के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन जिस तरीके से किया है, उसकी प्रशंसा समस्त संसार ने की है। आपने अपने आदमी, अपनी सम्पत्ति और अपनी सामग्री सब उदारतापूर्वक दिये हैं। पूरी सैनिक तैयारी का आपने बहुत उत्तम उदाहरण उपस्थित किया है। लेकिन हमारी कठिनाइयां अपार थीं इसलिए हम वर्मा की लड़ाई में अस्थायी रूप से हार गये हैं।

निस्स्वार्थ त्याग की जो भावना आपने दिखाई है,खास तौर से मेरा सदर मुकाम बर्मा में बनने के बाद, वह ऐसी है कि उसे मैं जब तक जीवित रहूँगा, कभी नहीं भूलूंगा ।

मुझे पूरा विश्वास है कि हमारी भावना कभी कुचली नहीं जा सकती । हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की खातिर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी भावना को कायम रखें, आप अपने सिर ऊंचे रखें और उस शुभ दिन की प्रतीक्षा करें जब आपको एक बार फिर हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने का अवसर मिलेगा ।

जब हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता का इतिहास लिखा जायगा तो उसमें बर्मा के हिन्दुस्तानियों का स्थान बहुत ही सम्मानित स्थान होगा।

मैं बर्मा से अपनी इच्छा से नहीं जा रहा हूँ । मैं तो यहीं ठहरता और आपकी अस्थायी हार के दुःख में शामिल होना पसंद करता, लेकिन अपने मंत्रियों और ऊंचे अफसरों की दबाव डालने वाली सलाह से मुझे स्वतन्त्रता की लड़ाई जारी रखने के उद्देश्य से बर्मा से जाना पड़ रहा है । मैं जन्मतः आशावादी हूँ । मेरा पक्का विश्वास है कि हिन्दुस्तान जल्दी ही स्वतन्त्र होगा । मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप भी इसी आशावाद को बनाये रखें ।

मैं सदा से ही कहता आया हूँ कि प्रभात से पहले घनी अंधेरी आती है । हम अब अंधेरे में से ही निकल रहे हैं, इसलिए प्रभात बहुत दूर नहीं है । हिन्दुस्तान स्वतंत्र होगा ।

मैं इस सन्देश को बर्मा की सरकार और बर्मा के लोगों के प्रति एक बार फिर हार्दिक कृतज्ञता प्रकट किये बिना समाप्त नहीं कर सकता । उन्होंने मुझे हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई जारी रखने में पूरी सहायता दी है । एक दिन आयगा जब स्वतंत्र हिन्दुस्तान कृतज्ञता के इस ऋण को गौरवपूर्ण ढङ्ग से चुका देगा ।''

'आजाद हिन्द फौज के वीर अफसरो और सैनिको !

मैं बर्मा से जहां आपने सन् १९४४ के फरवरी मास से कितनी

ही वीरता-पूर्ण लडाइयां लड़ी हैं, और अब भी लड़ रहे हैं, बड़े दुखी हृदय से जा रहा हूं। इम्फाल और बर्मा में हम अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई को पहले दौर में हार गए हैं। लेकिन हमारी लड़ाई इस पहले दौर पर खत्म न हो जायगी। हमें अभी कई दौरों में लड़ना बाकी है। मैं तो जन्मजात आशावादी हूं। मैं किन्हीं भी अवस्थाओं में हार स्वीकार नहीं कर सकता। आपने इम्फाल के मैदान में, अराकान की पहाड़ियों और जंगलों में, तैल के क्षेत्रों में और बर्मा में दूसरी जगहों पर शत्रु के विरुद्ध लड़ाई में जो वीरता दिखाई है, वह हमारे स्वतंत्रता के इतिहास में सदा-सदा के लिए अमर हो गई है।

साथियो! इस नाजुक घड़ी में मुझे आपको केवल एक शब्द आज्ञा रूप में कहना है और वह यह है कि यदि आपको अस्थायी रूप से झुकना पड़े तो वीरों की तरह झुको, सम्मान और अनुशासन की उच्चतम मर्यादा को कायम रखते हुए झुको। हिन्दुस्तानियों की भावी पीढ़ी, जो गुलामों के रूप में नहीं स्वतंत्र मनुष्यों के रूप में अब पैदा होगी, आपके महानतम त्याग के लिए, आपका गुण-गान करेगी और गर्वपूर्वक संसार के सामने घोषित करेगी कि आपने, जो उनके अगुआ हैं, मणिपुर, आसाम और बर्मा में लड़ाई लड़ी और हारी थी; लेकिन अस्थायी असफलता के कारण आपने अन्तिम सफलता और गौरव का मार्ग तैयार किया था।

हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता में मेरा दृढ़ विश्वास अभी तक ज्यों-का-त्यों कायम है। आपके राष्ट्रीय तिरंगे झंडे को, आपके राष्ट्रीय सम्मान को और हिन्दुस्तान की अच्छी-से-अच्छी वीरता की परम्परा को आपके सुरक्षित हाथों में छोड़ रहा हूं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आप; जो हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की सेना के अगुआ हैं, हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय सम्मान को कायम रखने के लिए अपनी प्रत्येक वस्तु की, यहां तक कि अपने जीवन की भी, आहुति देने में नहीं चूकेंगे। जिससे आपके साथियों को, जो इस लड़ाई को दूसरी जगह जारी

रखेंगे, आपका गौरव-पूर्ण आदर्श हर समय प्रेरणा देता रह सके।

यदि मैं जो कुछ चाहता हूं वही कर सकता, तो मैंने संकट में भी आपके साथ रहना पसंद किया होता और अस्थायी हार के इस दुःख में आपके साथ हिस्सा बंटाया होता। लेकिन अपने मंत्रियों और ऊंचे अफ़सरों की सलाह से मुझे बर्मा से जाना पड़ रहा है ताकि मैं स्वतंत्रता की लड़ाई को जारी रख सकूं। पूर्वी एशिया और हिन्दुस्तान के अपने देशवासियों को मैं अच्छी तरह जानता हूं; इसलिए मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि वे सब हालतों में लड़ाई जारी रखेंगे और आपका यह कष्ट-सहन और बलिदान व्यर्थ नहीं जायगा। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं दृढ़तापूर्वक उस प्रतिज्ञा पर अटल रहूंगा जो मैंने २१ अक्टूबर १९४३ को "अपने ३८ करोड़ देशवासियों के हित-साधन के लिए शक्ति पर प्रयत्न करने और उनकी स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने के लिए" ली थी। अंतः में मैं आपसे अपील करता हूं कि आप भी मेरे समान ही आशावान बने रहें और मेरी तरह विश्वास रखें कि प्रभात से पूर्व सदा ही घना अंधेरा होता है। हिन्दुस्तान स्वतंत्र होगा और जल्दी ही स्वतंत्र होगा।

ईश्वर आपका भला करे।

इन्कलाब जिन्दाबाद ! आजाद हिन्द जिन्दाबाद, जयहिन्द

(ह) सुभाषचन्द्र बोस

२४ अप्रैल १९४५ सर्वोच्च सेनापति आजाद हिन्द फौज।

दूसरे दिन अर्थात् २४ अप्रैल की शाम को १५ लारियों का उन का मोटर-दल, जिसमें रानी झांसी रेजीमेंट की स्त्रियां थीं, और ६ छोटी मोटरें जिनमें सदर मुकाम के कर्मचारी थे, रात को १० बजे रंगून से बंकांग को रवाना हुए। 'जांबाज' पलटन के ६०० जवानों को

मेजर पी० एस० रतूड़ी की कमान में बंकांग जाने की आज्ञा दी गई। बाकी ५००० सैनिकों को मेजर जनरल ऐ० डी० लोकनायम की कमान मे रंगून में ही छोड़ दिया गया। उनको यह काम सौंपा गया कि वे रंगून में जो हिन्दुस्तानी हैं, उनके जीवन, सम्मान और धन की रक्षा करें। बर्मी सेना के विद्रोह और जापानी फौज और पुलिस के चले जाने के कारण यह बहुत आवश्यक समझा गया। रंगून से कानून और व्यवस्था उठ गये थे। बर्मी डाकुओं की यह आदत है कि वे ऐसे अवसरों पर हिन्दुस्तानी नागरिकों को लूट लेते हैं और उन पर जबर्दस्ती करते हैं। इस सबको रोकने के लिए ही नेताजी ने रंगून में एक शक्तिमान् फौज कानून और व्यवस्था कायम रखने के लिए छोड़ दी थी। हमारे सैनिकों ने, मुख्यतः लैफ्टिनेंट कर्नल जीवनसिंह के दस्तों ने, इस कर्त्तव्य का पालन प्रशंसनीय ढंग से किया। इसके लिए बर्मियों और हिन्दुस्तानी नागरिकों ने समान रूप उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

२५ अप्रैल को सुबह ६ बजे के लगभग उनका दल पीगू के उत्तर में रंगून-मौल्यान सड़क पर एक छोटे गांव में पहुँचा। रात का वक्त था और यात्रा बड़ी खतरनाक थी। नेताजी ने ऐसी यात्रा पहले कभी नहीं की थी। सब जापानी चले गए थे और बर्मी छापेमार इस सड़क पर बहुत ज्यादा उत्पात मचा रहे थे। वे सभी मोटरों पर गोलियां चलाते थे। सौभाग्य से नेताजी के दल के साथ कोई दुर्घटना घटित नहीं हुई। ऐसा मालूम होता था कि भाग्य सदा ही उनका साथ देता था। दूसरे दिन अंग्रेजों ने पीगू पर कब्जा कर लिया। यदि वे उस रात को न चले गए होते तो वे या तो मारे गए होते या यहां ही पकड़ लिये गए होते।

इस घटनापूर्ण यात्रा की बाकी कहानी झांसी की रानी जत्थे की कमांडर लैफ्टिनेंट कुमारी जानकी थेवर्स ने अपनी दिनचर्या में इस प्रकार स्पष्टता के साथ वर्णन की है।

२९ अप्रैल पहली रात को नेताजी ने बिलकुल आराम नहीं किया, उन्होंने स्वयं मोटरें विभक्त कीं और उनमें प्रत्येक आदमी का स्थान नियत किया। फिर यात्रा के सम्बन्ध में हिदायतें दीं। वे रात भर दल की सब लारियों को संभालते रहे। आज सुबह वे फिर जल्दी ही उठ गये हैं और लारियों को एवं सैनिकों को उनके स्थान बता दिये हैं, जहां उनको ठहरना है। वे आश्चर्यजनक आदमी हैं। वे प्रत्येक छोटी सी बात को भी स्वयं ही देखते हैं। यह काम कर चुकने पर नेताजी एक प्याला चाय पीने गए हैं। अनिद्रा से उनकी आंखें लाल हो गई हैं, लेकिन वे बिलकुल स्वस्थ मालूम पड़ते हैं। उसके बाद नेताजी ने सब क्षेत्रों में खाना भेजा और तब खुद प्रत्येक क्षेत्र में गए। आज वे बिलकुल असावधान हैं। हमरे ऊपर शत्रु के असंख्य लड़ाकू हवाई जहाज चक्कर काट रहे हैं, लेकिन ऐसा मालूम होता है मानो उन्होंने उनको देखा भी नहीं है। नेताजी जहां कहीं जाते हैं, मैं उनके साथ रहती हूँ...मुझे उनकी देख-भाल करनी चाहिए...हम कर्नल मलिक के क्षेत्र में पहुँच गए हैं; जहां नेताजी कुछ देर विश्राम करने के लिए बैठ गए। फिर वे अपनी हजामत बनाने लगे।... अचानक शत्रु के हवाई जहाज आ पहुँचे और जिन पेड़ों के नीचे हम आराम कर रहे थे उन्हीं के ऊपर घुमड़ाने लगे। हम सब छिप गये, नेताजी हजामत बनाते रहे। और उन्होंने खाई में जाने से इन्कार कर दिया। सौभाग्य से हवाई जहाजों ने हमें नहीं देखा इसलिए वे हमारे ऊपर गोलियां चलाये बिना ही चले गये। इसके बाद नेताजी ने दूसरे क्षेत्र में जाना तय किया। यहां लड़कियां ठहरी हुई हैं। हम जब धान के खुले खेतों में होकर जा रहे थे, तभी शत्रु के ६ लड़ाकू हवाई जहाज आ गये। मैंने नेताजी को बैठ जाने और छिपने के लिए कहा, लेकिन दुर्भाग्य से वहां छिपने के लिए कोई स्थान न था। मैं भयंकर रूप से डर गई थी, शत्रु के हवाई जहाजों के डर से नहीं, बल्कि नेताजी को असुरक्षित देखकर। शत्रु के हवाई जहाजों को देखकर नेताजी बैठ गये, एक सिगरेट जलाई और पीनी शुरू कर

दी ।...हवाई जहाजों ने हमें नहीं देखा...इसका क्या कारण है कि वे सदैव आश्चर्यजनक रूप से बच जाते हैं ? ,मेरा खयाल है कि कोई जादू उनकी रक्षा करता है। जब तक हिन्दुस्तान स्वतन्त्र नहीं हो जाता, तब तक हमारे नेताजी का बाल भी बांका नहीं हो सकता। अब सायंकाल के ४ बजे होंगे। नेताजी थोड़ा सो चुके थे। उसके बाद वे जगे। उन्होंने एक नकशा निकाला और उसे सावधानी से देखा। उन्होंने स्टाफ के एक अफसर को बुलाया और उनको जांबाज दस्ते से मिलने के लिए एक मोटर साइकिल वाला भेजने की आज्ञा दी जो दस्ते को यह चेता दे कि वह सड़क को छोड़ दे और रेलवे लाइन के सहारे-सहारे चले। क्योंकि शत्रु के टैंकों के आ जाने का खतरा है। यह आज्ञा एन वक्त पर दी गई। मुझे कर्नल रतूड़ी से मालूम हुआ कि सड़क से दस्ते के हटने के कुछ मिनिट बाद ही शत्रु के टैंक सड़क पर हमला करते हुए आ गये थे।...हमारे सैनिक बच गये।... क्या नेताजी को भविष्य दिखाई दे गया था ? सायंकाल ६ बजे हमें आगे बढ़ने के लिए तैयार रहने की आज्ञा दी गई। नेताजी स्थान-स्थान पर जा रहे हैं। खूब मेंह बरस रहा है। वे बिलकुल भीग गये हैं। आखिर हमारा दल सड़क पर पहुँच गया। सैकड़ों जापानी लारियां भी सड़क पर बाब पहुंचने के लिए दौड़ लगा रही हैं, ताकि अंग्रेजी टैंकों के पकड़ने से पहले सितांग पार कर जायं। सड़क भयंकर रूप से खराब है। नेताजी की कार फिसल गई और एक ८ फीट गहरी खाई में जा गिरी: लेकिन ईश्वर को धन्यवाद, उनको कोई चोट नहीं आई।......हमें वह कार इसी जगह छोड़ देनी पड़ी है।

२६ अप्रैल आखिर हम आज दो बजे बाब में पहुँच गये। यहां नदी पार करने के लिये कोई पुल नहीं है। हमें इसे नावों पर होकर पार करना है। जापानी सब नावों को खुद ही काम में ला रहे हैं। हमें एक नाव दे दी गई है। जापानी जनरल इसोदाने, जो नेताजी के स्टाफ में है, नेताजी को पहले खुद पार होने और बाकी

लोगों को बाद में पार उतारने की सलाह दी। नेताजी ने उनको कहा—जब तक सब लड़कियां पार नहीं हो जातीं, तब तक मैं उस पार नहीं जाऊंगा। कर्नल मलिक और मेजर स्वामी गये और नदी की देख-भाल करने लगे। उन्होंने देखा कि एक जगह वह केवल ६ फीट गहरी है। मैंने सब लड़कियों को उस जगह जाने और तैर कर नदी पार करने की आज्ञा दी। वे अपनी बन्दूकें लेकर पार हो गईं। नेताजी मोटरों को नदी पार उतार रहे हैं। लगभग सब लड़कियां नदी पार कर चुकी हैं, यद्यपि उनमें से कुछ डूबते-डूबते बची हैं; लेकिन कर्नल मलिक बहुत लम्बे हैं, इसलिए उन्होंने उनको बचा लिया। अब उजाला हो चुका है। हम नेताजी के बारे में बहुत चिन्तित हैं। वे अभी तक नदी के उस पार ही हैं। शत्रु के हवाई जहाज किसी भी समय आ सकते हैं। अखीर में अब नेताजी पिछले खेवे में इस पार आ गये हैं। वे रात भर काम करते रहे हैं और ६ लारियां पार उतार लाये हैं। दूसरी लारियां आज दिन में नदी के उस पार ही रहेंगी, क्योंकि दिन में शत्रु के हवाई जहाजों के कारण मोटरें ही नहीं, आदमी भी सफर नहीं कर सकते। नेताजी दल के अधिकारी अफसर को पूरी हिदायतें दे गये हैं।

२६ अप्रैल ! हमने नेताजी के लिए कुछ चाय बनाई। जब वे आए तो हमने उन्हें कहा कि कुछ देर आराम कर लें और एक प्याला चाय पी लें। लेकिन नेताजी को आराम कहां ? उन्होंने जल्दी से चाय खत्म की और खुद जाकर यह देखा कि सब लारियां ठीक तरह से छिपा दी गई हैं और उन पर आवरण डाल दिया गया है। नेताजी ने आज भी दस्तों के ठहरने के स्थान नियत किया। वे तो थकते ही नहीं। झांसी की रानी रेजीमेंट को एक छोटा गांव बताया गया है, जहां दिन में उसे ठहरना है। यह गांव नदी के बिलकुल पास है और यह बहुत खतरनाक मालूम होता है। शत्रु के हवाई जहाज जरूर उसको देखने के लिए आयंगे। यहां खाइयां भी नहीं हैं। गांव

के सब लोग भाग गये हैं। कुछ भी हो, हमें अपना बचाव करना है और सौभाग्य से गांव में पेड़ बहुत हैं। हम उनके नीचे ठहर सकते हैं और जबतक शत्रु के हवाई जहाज हमें देख न लें, तबतक अपनी रक्षा कर सकते हैं। लगभग ३ बजे शाम को शत्रु के ६ लड़ाकू हवाई जहाज गांव के ऊपर आ गये और चक्कर काटने लगे। हम सब पेड़ों के तनों के पीछे छिप गए। जनरल चटर्जी ने नेताजी को एक छोटे से खड्डे में, जो एक गोले से बन गया था, छिपाने का प्रयत्न किया, इस पर वे बहुत नाराज हुए। उन्होंने जनरल चटर्जी से कहा—"जब लड़कियों के लिए कोई छिपने की जगह नहीं है तब मैं खाई में कैसे जा सकता हूं। नेताजी खड़े ही रहे और सिगरेट पीते रहे। अत्यन्त विपरीत अवस्थाओं में भी नेताजी शांत और स्थिर रहते हैं। इससे हम सबको बड़ी प्रेरणा मिलती है। शत्रु के हवाई जहाजों ने हमारे क्षेत्र पर आध घंटे तक हमला किया। हमारी ५ लारियां जला दी गईं। अब हमारे पास कोई सवारी नहीं रही है। आज हमारे ऊपर मशीनगनों से जो गोली-वर्षा की गई थी वह बहुत ही भयंकर थी। गोलियां हमारे सिरों के ऊपर से सनसनाती हुई जा रही थीं। नेताजी बिना छिपे हुए जीवित बच गए और उनको एक खरोंच भी नहीं आई, यह एक चमत्कार ही था।

२७ अप्रैल : हमारा दल आधी रात के बाद ही चल पड़ा था; लेकिन दुर्भाग्य से हम ज्यादा आगे नहीं बढ़ सके, क्योंकि उस समय बड़ी भारी वर्षा हो रही थी। हमारी सब सवारियां कीचड़ में गड़ गई थीं। नेताजी ने दल को कर्नल चोपड़ा की अधीनता में छोड़ दिया और स्वयं झांसी की रानी रेजीमेंट के साथ १० मील पैदल चलकर सितांग नदी पर पहुंच गए। हमें बताया गया है कि शत्रु बड़ी सरगर्मी से हमारा पीछा कर रहा है। सितांग नदी के पार पहुंच जाने पर हम फिलहाल सुरक्षित हो जायंगे। नदी के पूर्वी किनारे पर अधिकांश जापानी फौज अपनी रक्षा-पंक्ति तैयार कर रही है। हमने पौ फटने से पहले नदी पार कर ली थी और हमारा दल भी बहुत तड़के ही नदी

पर आ पहुंचा था। आज नेताजी के सदर मुकाम पर फिर बम गिराये गए और मशीनगनों से गोलियां चलाई गईं। इस हमले में लैफ्टीनेंट नजीर अहमद, जो नेताजी के पास ही खाई में छिपे हुए थे, मारे गए।

हम अपनी केवल एक लारी और नेताजी की कार नदी के पार ला सके थे। बाकी सब पीछे ही छोड़ दी गईं थीं। जापानियों की हजारों लारियां पीछे ही छूट गई हैं। शत्रु के हवाई जहाज इन सब को जला रहे हैं।

अब से हम सभी को पैदल चलना पड़ेगा। सड़कों पर लगभग घुटनों तक गहरी कीचड़ है। जो भारी यातायात के कारण लगातार मथी जाती रहती है। और रेजीमेंट की सैनिकायें भी आश्चर्यजनक हैं। हर एक अपना सामान, जिसमें उनकी सारी चीजें, राशन और राशन की तरह दिखाई देने वाले डिब्बे, बन्दूकें, गोला-बारूद और दस्ती बम खुद लिये जा रही थीं। हम खतरे मोल नहीं ले रही हैं। इस क्षेत्र में शत्रु के बहुत से छापामार सैनिक हैं। हम उनसे लड़ने के लिए हर समय तैयार हैं। हर सैनिका के पास १७ सेर से अधिक बोझ था। हम तमाम रात चलते रहे और १० मील रास्ता पार कर गए।

२८ अप्रैल : प्रातःकाल हम एक गांव में पहुंचे और दिन भर वहां ही आश्रय लिया। जांबाज दस्ता भी आ गया था'''अब हमारी सेना में १००० सैनिक थे। सायंकाल को हम फिर रवाना हुए और रात भर में १५ मील रास्ता पार कर गए'''दर-असल रास्ता चलना बहुत कठिन है। हमें रात में चलने का अभ्यास हो रहा है। हम चलने का सब काम रात में ही करते हैं और दिन में आराम करते हैं। हमारे शिक्षकों ने रात में चलने की अच्छी शिक्षा दी थी, इसलिए रात में हमें कोई असुविधा नहीं मालूम होती।

२९ अप्रैल—आज जब हम आराम कर रहे थे, मैंने नेताजी से कहा कि वे अपने पैरों को आराम देने के लिए अपने भारी बूट उतार

लें और अपने मौजे धोने के लिए दे दें। जैसे ही उन्होंने अपने बूट और मौजे उतारें, मुझे उनके पैरों पर छाले ही छाले देखकर बड़ा दुःख हुआ। नेताजी की मोटर हमारे पीछे आ रही है; लेकिन वे उस को काम में लाने का कभी खयाल भी न करते थे। हमने उन्हें मोटर से चलने के लिए सहमत करने का प्रयत्न किया; लेकिन वे हमारी बात सुनते ही न थे। सायंकाल को हमने फिर चलना शुरू किया। नेताजी सदा की भांति हमारे कालम के आगे-आगे चल रहे हैं। उनके पैरों में छाले होने पर भी आज रात को हम फिर १५ मील पार कर गए। जो जापानी जनरल नेताजी के साथ चल रहा था, उसने उनसे मोटर में बैठने की प्रार्थना की। लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया। तब सब जापानी मोटरों में चढ़ गए और मौलमीन को चले गए। आज रात को हमें कई-कई नदियों को नावों से पार करना पड़ा। आज जांबाज कालम नदी पार नहीं कर सका। वह बिलिन के उस तरफ है। नेताजी ने उसके लिए इन्तजार करने का निश्चय किया है। शाम को सम्पर्क विभाग का जापानी जनरल इसोदा कुछ लारियां लेकर मौलमीन से लौटा और नेताजी से कहा कि वे स्वयं और झांसी की रानी रेजी-मेंट मोटर लारियों से चले जायं और जांबाज दस्ता पैदल आजायगा।

नेताजी जापानियों से चिढ़ गए थे। वे अनुभव करते हैं कि वे उन्हें धोखा देना चाहते हैं। इसलिए यदि वे सेना को पीछे छोड़ जायंगे तो वह कठिनाई में फंस जायगी, मुख्यतः जापानियों के नियंत्रण में नावों से नदियां पार करने में। हमारे साथ हजारों जापानी भी लौट रहे हैं। और चूंकि नेताजी हमारे साथ हैं, इसलिए हमें पहले नदियां पार करने का अवसर मिल जाता है।

जापानी जनरल फिर नेताजी के पास आया और उनसे मोटर में चलने की प्रार्थना की।

नेताजी को क्रोध आ गया। उन्होंने उसकी ओर मुड़कर कहा—

"क्या आप खयाल करते हैं कि ।। वर्मा का बामाव हूं जो अपने आद-मियों को छोड़कर स्वयं सुरक्षित स्थान में चला जाऊंगा। मैंने आपको लगातार कहा है कि जबतक मेरे सैनिक आगे न जायंगे, तब तक मैं आगे नहीं बढ़ूंगा।" इस उत्तर को पाकर जापानी जनरल चुपचाप खिसक गया। ये शैतान पैदल चलना पसन्द नहीं करते; लेकिन जब नेताजी पैदल चलते हैं तो उनको भी पैदल चलना होता है। उस रात अर्थात् ३० अप्रैल की रात को हम १९ मील चले और ३० अप्रैल को प्रातःकाल हम एक गांव में पहुंचे जो मौलमीन की बाहरी सीमा पर है।

१ मई : दूसरे दिन सुबह हम मौलमील में आ गये पिछले छः दिन से हम चल ही रहे हैं और इन दिनों में प्रतिदिन दो घंटे से अधिक नहीं सोये। हम रात को सफर करते थे और दिन में नेताजी के सिवा बाकी सब लोग आराम करते थे। वे तमाम दिन हमारे आराम की व्यवस्था करते थे।

मौलमीन में आने पर भी नेताजी को चैन नहीं। वे इस तरह काम कर रहे हैं मानों उन्हें कोई दिव्य शक्ति प्रेरित कर रही हो। वे हमारे लिए खाने और जगह का इन्तजाम कर रहे हैं। छः दिन तक लगभग आधा भूखा रहने के बाद आज जो खाना मिला वह बढ़िया खाना था। लेकिन हम इतने थके हुए थे कि हममें से कोई भी कुछ भी नहीं खा सका।

आज १।२ मई की रात को नेताजी ने सब सैनिकाओं को रेल-गाड़ी से बंकांग भेजने की व्यवस्था की। उन्होंने जनरल चटर्जी और कर्नल एस०ए० मलिक को हमारे साथ जाने के लिए नियुक्त किया है।

वे स्वयं जांबाज कालम को भेजने की व्यवस्था करने के लिए मौलमीन में रुक गए हैं। हमें कुछ अच्छे डिब्बे दे दिये गए हैं जिनमें हम पानी में मछलियों की तरह भर गए हैं। कुछ भी हो, कीचड़ में

पैदल चलने से यह अच्छा ही है। हमारी गाड़ी मौलमीन से रात को देर से रवाना हुई।

२ मई : लगभग १ बजे हमारी गाड़ी २० मील चलने के बाद रुक गई और हमें बताया गया कि अमरीकी बम-वर्षकों ने एक पुल उड़ा दिया है। वे भयंकर रूप से कष्टप्रद हैं। वे तो केवल हथियार अधिक होने के कारण इस लड़ाई को जीत रहे हैं। जनरल चटर्जी और अधिक सूचना प्राप्त करने के लिए जापानियों के पास गये थे। वे जापानियों से सूचना प्राप्त करने का दुष्कर कार्य करके वापिस आ गये। वे हमारी भाषा नहीं समझते और हम उनकी भाषा नहीं जानते। हमारा जापानी दुभाषिया नेताजी के साथ मौलमीन में रह गया था। मैं समझती हूँ कि अगले रेलवे स्टेशन तक पहुँचने के लिए हमें १६ मील और सफर करना होगा। हम रात को लगभग दो बजे रवाना हुए। रास्ते में कर्नल मलिक ने ३ बैल-गाड़ियां किराये कर लीं। वे ऐसे ही सूझ-बूझ वाले अफसर हैं। हमने अपना सामान बैल-गाड़ियों में रख लिया। इससे बहुत आराम मिला। मेरे कन्धे दुख रहे हैं। चमड़े के तस्मों से उनमें कटाव पड़ गया है। सामान से हलकी होकर हम कितनी ही दूर चल सकती हैं। हम रात भर चलते रहे और सुबह होते-होते रेल के स्टेशन पर जा लगे।

३ मई : हमने वह दिन स्टेशन के पास ही बिताया। अंग्रेजी और अमरीकी हवाई जहाज सब जगह पहुँच गए मालूम होते हैं। उन्होंने यह छोटा-सा स्टेशन भी नहीं छोड़ा, लेकिन जापानी भी बहुत होशियार हैं। दिन निकलने से बहुत पहले ही उन्होंने सब डिब्बों को एंजिनों से अलग कर लिया और उनको सारी लाइनों पर एक-एक करके छितरा दिया, जिससे यह मालूम हो कि शत्रु के हवाई जहाजों ने उन्हें नुकसान पहुँचाया है।

इनके पास रेलगाड़ियां, मुख्यतः एंजिन बहुत कम हैं। उन्होंने

मलाया और स्याम से लगभग सब रेल के एंजिन मंगा लिये हैं वे अपने एंजिनों को बड़ी सावधानी से छिपाते हैं।

उन्होंने कुछ जगह पहाड़ों में सुरंगें बना रखी हैं जिनमें वे उनको छिपा देते हैं और कुछ जगह बांस के छप्पर बना दिये हैं। ये छप्पर बहुत हैं। जिनमें वे एंजिन को एक से दूसरे छप्पर में बदलते रहते हैं। इन बांस के रक्षाघरों को वे इस प्रकार ढक देते हैं कि छत पर देखने से यह मालूम होता है कि यहां कोई सुरंग नहीं है। रेलवे लाइन मिलते-जुलते ही होते हैं। लेकिन इस सावधानी के बावजूद अंग्रेजी हवाई जहाज उनका पता लगा ही लेते हैं और उनको नष्ट कर देते हैं।

२ मई की शाम को हम फिर गाड़ी में बैठे और ३ दिन में बंकांग पहुंचे। इस बीच में हमें कई बार चढ़ा-उतरी करनी पड़ी, क्योंकि रेलवे लाइन को शत्रु के बम-वर्षकों ने बहुत बुरी तरह से छिन्न-भिन्न कर दिया था। रास्ते में नेताजी दो बार हमारे पास आये। वे मोटर से सफर कर रहे हैं और जांबाज दस्ते से और हमसे लगातार सम्पर्क रख रहे हैं। हम ७ मई को सुबह बंकांग पहुँचे। नेताजी हमसे एक दिन पहले आ गये थे और उन्होंने हमारे लिए स्थान, कपड़े, राशन, दूध और फलों की व्यवस्था कर रखी थी। दूसरे दिन जांबाज दस्ता भी आ गया। दस्ते के सैनिकों ने बहुत लम्बा फासला तय किया था। वास्तव में वे जनवरी १९४४ के शुरू से अबतक चलते ही आ रहे हैं। उनमें अधिकांश सुभाष ब्रिगेड की पहली पल्टन के सैनिक हैं, जिन्होंने मेजर पी० एस० रतूड़ी की कमान में कालाडान घाटी में लड़ाई लड़ी थी। उनमें से बहुत-सों को जूड़ी आती हैं और वे बहुत दुर्बल हो गये हैं। हम अच्छा खाना मिलने के कारण थोड़े समय में ही फिर स्वस्थ हो गये।

२० मई : हमें खबर मिली है कि कर्नल ठाकुरसिंह की कमान में 'एक्स' रेजीमेन्ट के १००० सैनिक बड़े बड़े पहाड़ों और दुर्गम वनों को

पार करते हुए पायून और मौलमीन होकर बंकांग आ रहे हैं। हमें इसकी आशा नहीं थी, क्योंकि शत्रु के टैंक मोर्चे में घुस पड़े थे और मिनमाना के क्षेत्र में 'एक्स' रेजीमेन्ट को पकड़ लिया था। लेकिन हमारे सैनिकों ने वह काम कर दिखाया जो बहुत से सैनिकों को असम्भव दिखाई देता था। उनके लिए न कोई स्थान की व्यवस्था थी और न राशन ही उनके पास था। ४ दिन तक नेताजी दिन-रात लगभग २० घंटे प्रति दिन घर किराए पर लेने, प्रत्येक क्षेत्र में आने और स्थान बांटने का काम करते रहे। उन चार दिनों में हिन्दुस्तानी स्वतंत्रता संघ के सहयोग और नेताजी के स्टाफ के अफसरों के कठिन प्रयत्न से 'एक्स' रेजीमेंट को ठहराने के लिए शिविर व्यवस्थित कर दिये गए थे।

२७ मार्च : 'एक्स' रेजीमेन्ट आ गया। उनकी अवस्था भयंकर है। वे लगभग आधे भूखे रहते आये हैं। उन्होंने नेताजी से मिलने के लिए १००० मील की यात्रा की है। वे मार्च के शुरू में मिनमाना से रवाना हुए थे। तब से वे चलते ही आये हैं। नेताजी ने उनके कपड़े और खाने की बहुत अच्छी व्यवस्था की है। बर्मा से जो भी सैनिक स्त्री-पुरुष यहां आये हैं उनको प्रत्येक को आधा सेर दूध और ताजे फल दिये जाते हैं। वे अब बड़ी तेजी से पहले जैसे ही सशक्त हो रहे हैं।

जून के शुरू में नेताजी तीसरे डिवीजन के, जो कर्नल जी० आर० नागर की कमान में था, निरीक्षण के लिए बंकांग से मलाया गये। उसके बाद ही यह अफवाह सुनी गई कि जापानी आत्म-समर्पण की बातचीत कर रहे हैं। ११ अगस्त को संसार को यह घोषणा सुना दी गई कि जापानियों ने अधिकृत रूप से आत्म-समर्पण कर दिया है।

इस बीच में जून से अगस्त तक नेताजी मलाया में फैले हुए आजाद हिन्द फौज के दस्तों का निरीक्षण करने के लिए लम्बा दौरा करते रहे। जुलाई में मलाया और बर्मा में नेताजी-सप्ताह मनाया

गया। इसी सप्ताह में नेताजी ने आजाद हिन्द फौज के वीरतापूर्ण कार्यों की स्मृति को अमिट बनाने के लिए आजाद हिन्द फौज के 'शहीदों' के स्मारक का बुनियादी पत्थर रखा। यह भव्य स्मारक अगस्त १९४५ के अंतिम दिनों में पूरा बन गया था। मेजर जनरल एम० जी० कियानी के स्टाफ—अफसर कर्नल सी० जे० स्ट्रासी ने इस स्मारक को पूरा कराने के लिए दिन-रात एक कर दिया था और उनके उद्योग का ही यह फल था कि सिंगापुर पर अंग्रेजी फौज की बमबारी से पहले ही यह बनकर पूरा हो चुका था। यह बात सुविदित है कि आधुनिक सभ्यता के संरक्षक बनने का दम भरने वाले अंग्रेजों ने आजाद हिन्द फौज के शहीदों के इस स्मारक को डाइनामाइट से उड़ा दिया। उनको डर था कि इससे ब्रिटिश भारतीय सेना की वफादारी पर गहरा असर पड़ेगा। जिन लोगों ने हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए निर्भय होकर प्राण दिये हैं, वे उनकी स्मृति भी मिटा देना चाहते थे। वे यह अनुभव करते थे कि उन्होंने हिन्दुस्तानी फौज के सैनिकों के दिमागों में जो झूठा प्रचार ठूंसा है, वह इस स्मारक को देखते ही चूर-चूर हो जायगा। लेकिन इन बलिदानी वीरों की स्मृति को हिन्दुस्तानी इतनी सुगमता के साथ भूलने वाले नहीं है। आजाद हिन्द फौज नजरबंद थी, लेकिन स्थानीय नागरिक रोज वहां जाते थे और ईंटों और चूने के उस ढेर पर ही ताजे फूलों के हार रख आते थे। अंग्रेजों ने इसे रोकने के लिए वहां संतरी नियुक्त कर दिये; लेकिन फिर भी फूल-मालायें चढ़ने से न रुकीं। हिन्दुस्तानी संतरियों में हम लोगों को रोकने का साहस नहीं था। कितने ही आदमियों को इसके लिए दंड दिया गया और लम्बे अर्से के लिए जेल भेजे गये। जब पंडित जवाहरलाल नेहरू अप्रैल १९४६ में मलाया गये, तो वे भी आजाद हिन्द फौज के बलिदानी वीरों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाने के लिए उस जगह पहुँचे जहां वह स्मारक बनाया गया था वहां एक हाथ रखा। उनके साथ अंग्रेज प्रधान सेनापति लार्ड लुई माउंट-बेटन भी और यह खयाल किया

जाता है कि उन्होंने भी उस स्मारक को सिर झुकाया। यह कैसी मक्कारी है।

जब शिमला-वार्ता चल रही थी, उसी समय नेताजी ने लार्ड वेवल के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कई बार अपने विचार रेडियो पर प्रकट किये थे।

१८ जून १९४५ को उन्होंने कहा था:—

"बहनो और भाइयो, १४ जून को वायसराय लार्ड वेवल ने नई दिल्ली से रेडियो पर जो भाषण दिया मैंने उसे ध्यान से सुना है। इस-में उन्होंने ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान के सामने जो प्रस्ताव रखा है, वह दिया गया है। इस तजवीज को लाने के लिए ही लार्ड वेवल ने लन्दन की लम्बी यात्रा की थी।

ऐसे समय में अपने देशवासियों को यह बताना असामयिक और असंगत न होगा कि ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव पर पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों की प्रतिक्रिया क्या है। सर्व प्रथम हमको इससे यह मालूम हुआ जैसा स्वयं वायसराय ने मंजूर किया है, कि इसमें ब्रिटिश सरकार का हेतु जापान के विरुद्ध लड़ी जाने वाली लड़ाई में हिन्दुस्तान की सहायता प्राप्त करना है। अंग्रेज लड़ाई से थक गए हैं और उनको यूरोप में लड़ाई के समाप्त होने के बाद के आराम की बहुत जरूरत है। इस स्थिति में वे चाहते हैं कि उनकी लड़ाई दूसरे लोग लड़ें और जीत का फल वे खुद खायं। लेकिन ब्रिटिश भारतीय फौज भी थक गई है और वर्मा में अंग्रेजों और अमरीकनों को अभी हाल में जो सफलता मिली है उसके बावजूद वे आराम चाहते हैं। इसलिए अंग्रेज अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए हिन्दुस्तान के लोगों के धन और खून का उपयोग बहुत जरूरी समझते हैं। जब लड़ाई हिन्दुस्तान में और हिन्दुस्तान-वर्मा सीमा पर हो रही थी, तब अंग्रेज ब्रिटिश भारतीय-सेना को यह प्रचार करके धोखा दे सकते थे कि हिन्दुस्तान के बचाव के लिए लड़ाई करना उसका कर्त्तव्य है। उसके बाद वे यह प्रचार

करके वे ब्रिटिश भारतीय सेना को धोखा दे सकते थे कि बर्मा की लड़ाई हिन्दुस्तान के बचाव की लड़ाई का सिलसिला ही है।

लेकिन अब चूंकि अंग्रेजों को बर्मा से आगे और प्रशांत महासागर में लड़ी जाने वाली लड़ाइयों के लिए हिन्दुस्तान के खून और रुपए की जरूरत है, इसलिए इन लड़ाइयों में हिन्दुस्तान की सहायता लेने के लिए उनको एक नई योजना खोज निकालना जरूरी हो गया है। ब्रिटिश सरकार ने यह प्रस्ताव, जो थोड़े से बदले हुए रूप में सर स्टेफर्ड क्रिप्स का ही प्रस्ताव है, हमारे सामने रखा है।

हम हिन्दुस्तानी इसका क्या जवाब दें, इसका फैसला करने के लिए हमें यह सोचना है कि जापान के विरुद्ध ब्रिटेन की लड़ाई लड़ने से हमें क्या मिलेगा। ब्रिटेन अपने आक्रामक युद्ध के लिए बलात् हिन्दुस्तान का शोषण करें तो यह एक बात है, लेकिन हिन्दुस्तानियों का अपनी इच्छा से ब्रिटेन की लड़ाई लड़ना बिलकुल दूसरी बात है। इस स्थिति में ब्रिटेन के युद्ध-प्रयत्नों में सहयोग करने का अर्थ होगा कि हमने अंग्रेजों के विरुद्ध अपना नैतिक युद्ध बिलकुल समाप्त कर दिया है। यह राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस और हम हिन्दुस्तानियों के लिए राजनीतिक आत्म-घात ही होगा।

इससे पहले जो लड़ाई की हालत थी उसमें अंग्रेज प्रचारक और उनके हिन्दुस्तानी भोंपू हिन्दुस्तान के लोगों को सम्भवतः यह धोखा दे सकते थे और गुमराह कर सकते थे कि चूंकि जापानी हिन्दुस्तान के द्वार को खटखटा रहे हैं, इसलिए हिन्दुस्तान की सुरक्षितता खतरे में है। लेकिन अब पूर्व एशिया में लड़ाई की स्थिति बदल जाने से किसी भी हिन्दुस्तानी को जापान के विरुद्ध ब्रिटेन की लड़ाई लड़ने में दिलचस्पी नहीं रही है। इसलिए यह बिलकुल साफ हो गया है लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार करने का अर्थ होगा—ब्रिटेन की साम्राज्यवादी लड़ाई में हिन्दुस्तान का खून बहाना और अपने साधनों का शोषण कराना। लेकिन हिन्दुस्तान को इसके बदले मिलेगा क्या ?

केवल वायसराय की कार्यकारिणी कौंसिल में कुछ स्थान। इससे अधिक कुछ नहीं।

हम यह भी नहीं कह सकते कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करके हम स्वशासन के उद्देश्य को प्राप्त कर लेंगे। लार्ड वेवल और ब्रिटिश सरकार हमें यही विश्वास कराना चाहते हैं। हिन्दुस्तान अब ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्वशासन नहीं चाहता। पूर्ण स्वतन्त्रता से कम में कदापि संतुष्ट नहीं होगा। लेकिन यदि कोई हिन्दुस्तानी स्वशासन को स्वीकार करने के लिए तैयार भी हो, तो उसका वह उद्देश्य इस प्रस्ताव को स्वीकार करने की अपेक्षा विरोध को जारी रखने से पूरा होने की अधिक सम्भावना है। इसको स्वीकार करते ही ब्रिटिश सरकार यह परिणाम निकालेगी कि हम स्वशासन से भी कम चीज लेकर समझौता करने के लिए तैयार हैं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करके हम भविष्य में स्वशासन प्राप्त करने की सब सम्भावनाओं को भी खतरे में डाल देंगे और पूर्ण स्वतन्त्रता तो बिलकुल दूर की बात है। संक्षेप में इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से हमें कोई लाभ न होगा। प्रत्युत हमें हानि अधिक उठानी पड़ेगी और हमारी दुर्बलता से ब्रिटेन को लाभ पहुँचेगा।

साधारण स्थितियों में भारतीय राष्ट्रवादी के लिए वर्तमान प्रस्ताव के झांसे में आने की १० प्रतिशत सम्भावना थी। लेकिन अंग्रेज बहुत ही चालाक राजनीतिज्ञ हैं। उन्होंने इस प्रस्ताव को हिन्दुस्तान पर लादने का यह अवसर उपयुक्त और मनोवैज्ञानिक समझा है। अंग्रेज राजनीतिज्ञ आशा करते हैं कि हिन्दुस्तान के लोग ब्रिटेन और अमरीका की हाल की जीतों से बहुत डर गये हैं। इसलिए वे यह अनुभव कर सकते हैं कि इस लड़ाई में उनको स्वतन्त्रता मिलने की कोई सम्भावना नहीं है। वे सम्भवतः घाटे का सौदा भी कर सकते हैं और अंग्रेज जो कुछ दें वह स्वीकार कर सकते हैं। निराशावादियों और श्री राजगोपालाचार्य जैसे नरम राजनीतिज्ञों का यही रुख होगा,

लेकिन यह रुख बिलकुल गलत और अनुचित रुख है। इससे स्वतंत्रता कई वर्ष आगे को हट जायगी।

अंग्रेजों की तजवीज में क्या गुण दोष हैं, अब मैं यह बताता हूँ। बारीकी से और सावधानी से विश्लेषण करने पर यह मालूम होगा कि यह प्रस्ताव तत्त्वतः सर स्टेफर्ड क्रिप्स का प्रस्ताव ही है जो उन्होंने सन् १९४२ में हमारे सामने रखा था। उदाहरण के लिए वायसराय की कार्यकारिणी में गृह-विभाग, अर्थ-विभाग और वैदेशिक-मामलात-विभाग तीन और विभाग इस बार और अधिक देने का प्रस्ताव किया गया है। इन विभागों और दूसरे विभागों को जो व्यक्ति संभालेंगे, उनको वायसराय नियुक्त करेगा और वे उसी के प्रति उत्तर-दायी होंगे, लोकप्रतिनिधियों के प्रति नहीं। दूसरी ओर युद्ध-सदस्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, विभाग अंग्रेज अर्थात् प्रधान सेनापति के लिए सुरक्षित रख लिया गया है। यह प्रस्ताव थोड़े से परिवर्तित रूप में सर स्टेफर्ड क्रिप्स का पुराना प्रस्ताव तो है ही। इसके अतिरिक्त इसके दूसरे सदोष अंग भी हैं, जिनके कारण यह स्वीकार करने के योग्य नहीं रहता। वायसराय ने अपने भाषण में साफ-साफ कहा है जैसी कि ब्रिटिश सरकार की सदा से ही नीति रही है कि वे कांग्रेस को कई दलों में से एक दल ही मानते हैं। सन् १९३१ में गोलमेज परिषद् में गांधीजी ने जब कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में हिन्दुस्तान के लोगों का प्रतिनिधित्व किया था, तो उन्होंने ब्रिटिश सरकार के इस रुख का तीव्र विरोध किया था। यदि कांग्रेस अब इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है, तो उसने जो अबतक लगातार कहा है कि वह हिन्दुस्तान के लोगों को प्रतिनिधित्व करती है उसको वह सदा के लिए खंडित कर देगी और ब्रिटिश सरकार के इस कथन को मान लेगी कि कांग्रेस हिन्दुस्तान के कई दलों में से एक दल है। मैं तो एक क्षण के लिए भी यह कल्पना नहीं कर सकता कि कोई हिन्दुस्तानी राष्ट्रवादी इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का खयाल कर सकता है।

लार्ड वेवल के प्रस्ताव में एक और शरारत की गई है। उन्होंने कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई की आशा दे दी है; लेकिन यह कहा है कि जबतक उनका प्रस्ताव स्वीकार न किया जायगा तबतक जिन्होंने अगस्त १६४२ के विद्रोह में भाग लिया था वे सब जेलों में रहेंगे। उनके भाषण में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लेने पर भी सन् १६३६ और सन् १६४२ में कैद किये गए लोग रिहा किये जायंगे या नहीं। सब प्रजातंत्रीय देशों में यह सुस्थापित प्रथा है कि जब कोई वैधानिक परिवर्तन होता है तो उसके साथ ही सब राजनीतिक कैदी रिहा किये जाते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान के मामले में इस प्रथा को तिलांजलि दे दी गई है।

ब्रिटिश सरकार हम को यह करती रही है कि लड़ाई के दिनों में हिन्दुस्तान में कोई वैधानिक परिवर्तन नहीं किये जा सकते, यद्यपि हम यह देखते हैं कि संसार भर में सुदूरगामी राजनीतिक परिवर्तन किये जा रहे हैं। यहां पूर्वी एशिया में भी हमने देखा है कि अवस्था बिलकुल भिन्न हो गई है। लड़ाई के दिनों में ही कई स्वतन्त्र सरकारें खड़ी की गई हैं और लोगों को सत्ता सौंप दी गई है। इस तरह आप देखते हैं कि अंग्रेजों की यह दलील बिलकुल थोथी है और इसका उद्देश्य हिन्दुस्तान की मांग को पूरा करने में हीला-हवाला करना है। यदि ब्रिटेन वास्तव में उत्तरदायी सरकार बनाना चाहता है तो उसे हिन्दुस्तान को एक स्वशासित देश घोषित करने में देर नहीं करनी चाहिए और उसे तुरन्त लोकप्रतिनिधियों के हाथों में सत्ता सौंप देनी चाहिए।

मेरे हिन्दुस्तानी बहनो और भाइयो, आपने अंग्रेजों के राजनीतिक अत्याचारों और पूंजीवादी शोषण के कारण बहुत समय तक और बहुत अधिक कष्ट भुगते हैं। भाइयो, हम थोड़ा कष्ट और भुगतें। हमें अपने सब नैतिक और भौतिक साधनों से ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करना चाहिए और सबसे मुख्य बात यह है कि हमें स्व-

तन्त्रता का झंडा उड़ता हुआ रखना है। साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी लड़ाई जारी रखकर और स्वतन्त्रता के मामले में समझौता करने से इन्कार करके, हम संसार के लोकमत के सामने अपने स्वतन्त्रता के प्रश्न को स्वतन्त्र बनाये रख सकेंगे। स्वतन्त्रता प्राप्त करने का यही मार्ग है। दूसरी ओर, इस प्रस्ताव को स्वीकार करके हम अपना अपमान खुद करेंगे और संसार को नैतिक सहानुभूति खो देंगे।

सम्भव है कि आप में से कुछ यह पूछें—तब हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करने का तरीका क्या है ? इस प्रश्न का मेरा उत्तर साफ है। प्रथम, हम हिन्दुस्तान के बाहर से हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई तबतक जारी रखेंगे जबतक हमारे पास एक भी सैनिक रहेगा। दूसरे संसार के लोकमत के न्यायालय में और सब अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हमारे उद्देश्य के समर्थक हिन्दुस्तान के अनेक मित्र विदेशों में मौजूद हैं। और अन्त में मेरे देशवासियो, आप उचित अवसर पर क्रान्ति करने के लिए स्वयं भी तैयार रहें जो दावानल की भांति तेजी से फैलेगी और सम्भवतः ब्रिटिश भारतीय फौजें भी उसका साथ देगीं।

बहनो और भाइयो, अन्त में मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप निराश न हों। मैं फिर कहता हूं कि हिन्दुस्तान में और हिन्दुस्तान के बाहर जो शक्तियां काम कर रही हैं वे दुर्दमनीय हैं। संसार की कोई भी शक्ति हिन्दुस्तान के लोगों को स्वतन्त्रता लेने से नहीं रोक सकतीं। हम धैर्य और दृढ़ संकल्प के बल से अपने उद्देश्य को प्राप्त करके रहेंगे। वायसराय ने आपसे सद्भावना और सहयोग की इच्छा प्रकट की है। आप उसे कह दें कि आपकी सद्भावना और आपका सहयोग हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई के लिए है। किसी दूसरे आंदोलन के लिए नहीं।"

१६ जून १६४५ को उन्होंने रेडियो पर भाषण दिया।

हिन्दुस्तानी बहनो और भाइयो ! कल मैंने लार्ड वेवल के प्रस्तावों के बारे में सामान्यतः भाषण दिया था और यह बताया था कि उसके

बारे में हमारी प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए। आज मैं फिर इसी विषय पर आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।

अंग्रेजी और अमरीकी समाचार-समितियां हिन्दुस्तान की घटनाओं को विस्तृत खबरें दे रहीं हैं। इन खबरों के आधार पर ठीक-ठीक यह कल्पना करना आसान होगया है कि हिन्दुस्तान में क्या हो रहा है। सर्वप्रथम मैं यह चाहता हूँ कि आप यह विचार करें कि लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार करने का निश्चित परिणाम क्या हो सकता है। क्योंकि कांग्रेस नेताओं को लगभग ५ लाख सैनिक हिन्दुस्तान-बर्मा की सीमा पर या बर्मा के भीतर, बल्कि बर्मा और प्रशांत के परे ब्रिटेन की साम्राज्यवादी लड़ाई लड़ने के लिए भेजने की जिम्मेदारी लेनी पड़ेगी। मैं महात्मा गांधी, मौलाना अबुलकलाम आजाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल और दूसरे नेताओं से उनका उचित सम्मान करते हुए यह पूछना चाहता हूँ कि क्या वे सुदूर-पूर्व में ब्रिटेन की इस साम्राज्यवादी लड़ाई को लड़ने और उसके लिए ५ लाख हिन्दुस्तानियों का बलिदान करने की जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार हैं?

ब्रिटिश सरकार ब्रिटेन से सूदूर-पूर्व की भावी लड़ाइयां लड़ने के लिए आवश्यक लड़ाकू आदमी क्यों नहीं पा सकती है, इसके निश्चित कारण हैं। सर्व प्रथम अंग्रेजों को पौने छः वर्ष की कई मोर्चों पर लड़ी जाने वाली लड़ाई में भयंकर हानियां उठानी पड़ी हैं। फलतः अंग्रेज लड़ाई से थके हुए हैं और अंग्रेज सैनिक एक दूसरी लम्बी लड़ाई का सामना करने के लिए तैयार नहीं है, वे जानते हैं कि उन्हें यह लड़ाई यूरोप की अपेक्षा अधिक कठिन स्थितियों में लड़नी पड़ेगी। दूसरे वह इस लड़ाई में ब्रिटेन दिवालिया हो गया है। पहली लड़ाई में उसकी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं बिगड़ी थी। लड़ाई के दबाव से और युद्ध-सामग्री की बड़ी मांग के कारण ब्रिटेन के उद्योगों को पूरी ताकत से युद्ध-सामग्री तैयार कराने में लग जाना पड़ा था। अमरीका के कारखानों को ऐसा नहीं करना पड़ा है। इसका फल यह हुआ है कि

ब्रिटेन बड़ी तेजी से अपने बाजारों को खो रहा है और ये बाजार लगातार अमरीका के हाथों में जा रहे हैं। यदि यही प्रक्रिया लड़ाई के वक्त में कुछ अधिक समय तक जारी रही तो मित्र देशों की विजय होने पर भी ब्रिटेन के युद्ध से पूर्व के विदेशी व्यापार का एक बड़ा भाग नष्ट हो जायगा। इसी कारण से अंग्रेज नेता अपने कारखानों के मजदूरों को लड़ाई की सेना और लड़ाई के कामों में लगे हुए लोगों को यथा सम्भव जल्दी खाली कर देना और उनको काम में लगाकर शांति-कालीन उद्योगों को फिर संचालित करना आवश्यक मानते हैं। ब्रिटेन के लिए यह दोनों कार्य साथ-साथ करना असम्भव है कि वह सुदूर-पूर्व में एक लम्बी लड़ाई भी जारी रखे और अपने शांति-कालीन उद्योगों को भी फिर चालू कर दे।

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सामान्य स्थितियों में कांग्रेस से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति लार्ड वेवल के प्रस्तावों की ओर आंख उठाकर भी न देखता। उस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए कांग्रेस-जनों को कांग्रेस के बुनियादी सिद्धान्तों और विश्वासों को तिलांजलि देनी पड़ेगी। कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता की समर्थक है। लार्ड वेवल के प्रस्ताव में महात्मा गांधी ने ठीक ही कहा है कि स्वतन्त्रता शब्द का उल्लेख तक नहीं है। दूसरे कांग्रेस ब्रिटेन की साम्राज्यवादी लड़ाई में भाग न लेने और उसका विरोध करने के लिए वचन-बद्ध है। तीसरे कांग्रेस 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को, जो तीन वर्ष पहले स्वीकृत हुआ था, अभी तक मानती है। तब से हिन्दुस्तान के लोगों का, हिन्दुस्तान की लड़ाई का, राष्ट्रीय नारा 'करो या मरो' रहा है। अपने सिद्धांतों का पालन करते हुए कोई भी कांग्रेस-जन लार्ड वेवल के प्रस्तावों पर विचार करना तो दूर, उनकी ओर देख भी नहीं सकता। फिर भी इतने कांग्रेसजन वस्तुतः लार्ड वेवल के प्रस्ताव पर विचार कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि यूरोप और बर्मा में अंग्रेजों और अमरीकनों की जीतों के बाद तमाम हिन्दुस्तान में पराजयवाद की एक लहर फैल गई है।

निराशावाद और पराजयवाद की बेहोशी में वे अपने जिन्दगी भर के सिद्धान्तों को भूल रहे हैं और जिस प्रस्ताव को सन् १९४२ में उन्होंने अस्वीकार कर दिया था, वे अब उसी पर फिर विचार कर रहे हैं।

मैं अपने देशवासियों से, जो देश में हैं, साफ-साफ यह कहना चाहता हूँ कि उनकी निराशा और पराजय की भावना ने उन पर अधिकार जमा लिया मालूम होता है। यह बिलकुल अनुचित है। जहां आदमी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति को युद्ध-स्थिति खयाल करता है वहां निराशावाद या निराशा का कोई सवाल ही नहीं है। पूर्वी एशिया की लड़ाई चाहे इसका अंतिम परिणाम कुछ भी हो, लम्बी और कष्ट होगी। समस्त संसार जानता है कि कथित संयुक्त देशों के शिविर में कोई वास्तविक एकता नहीं है। सोवियत्-संघ के युद्ध-उद्देश्य ब्रिटेन और अमरीका के युद्ध-उद्देश्यों से बिलकुल भिन्न हैं और सोवियत्-संघ तथा इंग्लैंड और अमरीका के बीच संघर्ष प्रतिदिन बढ़ रहा है। दोनों ही पक्ष अभी कुछ समय पूर्व से अपने यूरोपीय झगड़ों को मिटाने का प्रयत्न करते रहे हैं, लेकिन इसका कारण यह है कि वे सुदूर पूर्व में एक विग्रह करवाने की तैयारी कर रहे हैं। यूरोप में जर्मनी की पराजय के बाद से सोवियत्-संघ एशिया के मामले में अधिकाधिक दिलचस्पी ले रहा है। यदि ऐसा न होता तो सोवियत्-संघ के विदेश-मंत्री मोलोटोव ने सानफ्रांसिस्को में यह घोषित न किया होता कि वह दिन अधिक दूर नहीं है, जब संसार में स्वतन्त्र हिन्दुस्तान की आवाज सुनी जायगी।

जब कि पूर्व में लड़ाई चल रही होगी, तब निश्चय ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन होंगे। इनमें से कुछ परिवर्तन हमारे शत्रुओं के अनुकूल नहीं होंगे। उनसे हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता प्राप्त करने का और भी अवसर मिलेगा। यूरोप में मित्र देशों की जीत होने पर भी सीरिया और लेवनान अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्थिति से पूरा लाभ उठा रहे हैं। इंग्लैंड और संयुक्तराज्य

को फ्रांसीसी साम्राज्यवाद के विरुद्ध भिड़ाकर सीरिया और लेवनान हिन्दुस्तान के सामने उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं कि वह वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए किस प्रकार काम में ला सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि आज सीरिया और लेवनान ब्रिटेन और अमरीका को फ्रांस के विरुद्ध काम में ला रहे हैं तो वह दिन भी दूर नहीं है जब अरब राज्य अपने अनुकूल देशों को ब्रिटेन के विरुद्ध काम में लायंगे। अंग्रेज राजनीतिज्ञ इसको अनुभव करते हैं। वे यह भी अनुभव करते हैं कि हिन्दुस्तान भी अपने मित्र देशों का उपयोग अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए करेगा। इनमें से कुछ देश इन संयुक्त राष्ट्रों में से ही होंगे। इस लड़ाई में हिन्दुस्तान का प्रश्न संसार की राजनीति में एक ज्वलन्त प्रश्न बन गया है। और इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया है कि भविष्य में जितने भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होंगे उन सभी में हिन्दुस्तान का प्रश्न उठाया जायगा। इसीलिए अंग्रेज राजनीतिज्ञ चाहते हैं कि हिन्दुस्तान का प्रश्न अब अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न न रहे। वे उसे ब्रिटिश-साम्राज्य का घरेलू प्रश्न बनाना चाहते हैं। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि जिस क्षण राष्ट्रीय हिन्दुस्तान और ब्रिटेन के बीच समझौता हो जायगा, उसी क्षण हिन्दुस्तान ब्रिटेन का घरेलू प्रश्न बन जायगा। तब सोवियत्-संघ जैसी बाहरी शक्तियों को हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए हस्तक्षेप करना असम्भव हो जायगा।

हमारे शत्रुओं की अभी हाल की सैनिक सफलताओं के बावजूद, हिन्दुस्तान अपने स्वतन्त्रता के ध्येय की ओर तेजी से बढ़ता रहा है। हिन्दुस्तान के लोग देश के भीतर जो कुछ करते रहे हैं, उसके अतिरिक्त दो प्रत्यक्ष शक्तियां हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए काम करती रही हैं। पहली वह शक्ति है जो हिन्दुस्तान के शत्रुओं से हथियार लेकर लड़ती रही है और दूसरी वह जो विश्व-लोकमत के न्यायालय में हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की वकालत कर रही है। जो हिन्दुस्तान के

शत्रुओं से हथियार लेकर लड़ रहे हैं वे भविष्य में भी लड़ते रहेंगे। जहां तक आजाद हिन्द फौज का सम्बन्ध है, वह तबतक लड़ती रहेगी जब तक उसके पास एक भी सैनिक और एक भी गोली है। इसी प्रकार, जिन लोगों ने हिन्दुस्तान को एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना दिया है और जो हिन्दुस्तान की ओर से संसार के सामने उसके मामले को प्रबल रूप में उपस्थित कर रहे हैं, वे भी अपना काम जारी रखेंगे। हिन्दुस्तान के बाहर काम करनेवाली शक्तियां हिन्दुस्तान के भीतर काम करनेवाली शक्तियों से मिलकर हुई दुर्दमनीय हो जाती हैं। हिन्दुस्तान में रहनेवाले मेरे देशवासियो! यदि आप ब्रिटिश साम्राज्यवाद से हथियार लेकर नहीं लड़ सकते हैं, तो कम-से-कम शत्रु से समझौता करने या उसकी साम्राज्यवादी लड़ाई लड़ने से इनकार करके शत्रु का नैतिक विरोध तो करें।

इस सम्बन्ध में मैं महात्मा गांधी, कांग्रेस के अध्यक्ष और कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यों और लाखों कांग्रेसी नर-नारियों से, जो उसके समर्थक हैं, यह हार्दिक अपील करना चाहता हूं कि वे इस नाजुक घड़ी में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को समझने में गलती न करें। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को समझने में भूल करने से हिन्दुस्तान की राजनीति में उठाया गया कदम भी गलत हो जायगा। हिन्दुस्तान पराजित नहीं हुआ है। हम अभी पिटे नहीं हैं। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति हमारे प्रतिकूल नहीं है। प्रत्युत, वह हमारे लिए बहुत कुछ लाभदायक है और वह भविष्य में और भी अधिक लाभदायक सिद्ध होगी। तब हमें इस समय समझौते का विचार क्यों करना चाहिए और हमने तीन वर्ष पहले जो प्रस्ताव विचारपूर्वक ठुकरा दिया था, उसे अब क्यों स्वीकार करना चाहिए?

मैं इस समय कांग्रेस के साधारण सदस्य के रूप में बोल रहा हूं। जिसने अपने अबतक के सार्वजनिक जीवन के पूरे दिनों में वफादारी के साथ कांग्रेस की सेवा की है और हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए

कार्य किया है। देश में रहनेवाले मेरे बहनों और भाइयो, यदि आप यह अनुभव करते हैं कि हमारे मित्र देश अन्त में हार जायंगे और ब्रिटेन एवं अमरीका विजयी होंगे, तो जहां तक हिन्दुस्तान का सम्बन्ध है, आपको फिर भी निराश होने की जरूरत नहीं है।

भविष्य में संसार की राजनीति में चाहे कुछ भी घटित हो, हिन्दुस्तान की जीत निश्चित है। हिन्दुस्तान का भाग्य-सूर्य चढ़ता हुआ है। इस समय गलत कदम उठाकर इसे आप नीचे की ओर न खींचिए। हमने बहुत समय तक और बहुत अधिक कष्ट-सहन किया है। आइये, हम थोड़ी देर थोड़ा-सा और कष्ट सहन करें। लेकिन हमें हर प्रकार से इस लड़ाई के अन्त तक इसी मार्ग पर आरूढ़ रहना चाहिए। देश में रहनेवाले मेरे बहनों और भाइयो, क्या आप यह नहीं समझते कि लार्ड वेवल इतनी उतावली क्यों कर रहे हैं? क्या आप यह नहीं समझ सकते कि उन्होंने शिमला-सम्मेलन को स्थगित करने का श्री जिन्ना का सुझाव क्यों अस्वीकार कर दिया? हम हिन्दुस्तान के बाहर रहनेवाले हिन्दुस्तानियों के लिए यह बहुत सीधी-सादी और बहुत साफ बात है। ब्रिटेन में ५ जुलाई को आम चुनाव होंगे। अनुदार दल चाहता है कि उनमें हिन्दुस्तान को चुनाव का मुद्दा न बनाया जा सके। इसी कारण वेवल का प्रस्ताव इंग्लैंड के आम चुनावों से एक मास पूर्व हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया गया है। कोई नहीं जानता कि आम चुनाव का परिणाम क्या होगा? लेकिन यह सभी जानते हैं कि मजदूर दल का पार्लमेन्ट में बहुमत हो चाहे न हो, किन्तु ५ जुलाई के बाद वह हर हालत में एक बहुत मजबूत दल तो हो ही जायगा। अनुदार-दल को डर है कि यदि मजदूर-दल के हाथ में सत्ता आ गई और यदि इस बीच में हिन्दुस्तान की समस्या हल नहीं हुई तो मजदूर दल निश्चय ही हिन्दुस्तान के प्रश्न को हल करने का एक और प्रयत्न करेगा। मैं खुद सौदे पटाने की नीति में विश्वास नहीं करता, क्योंकि मैं तो हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के मामले में कोई समझौता ही नहीं

करना चाहता। लेकिन यदि आप सौदा करने के लिए उत्सुक हैं और यदि आप हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के मामले में भी समझौता करने का निश्चय कर चुके हैं, तो मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप ५ जुलाई से पहले कोई वचन न दें। मुझे यह नहीं मालूम कि जब श्री जिन्ना ने शिमला-सम्मेलन को स्थगित करने का प्रस्ताव किया तो उनके ख्याल में क्या बात थी। लेकिन यदि वे ५ जुलाई से पहले मुख्य कदम उठाना नहीं चाहते थे, तो यह उनकी राजनीतिक बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता थी और मैं इसके लिए उनकी प्रशंसा करता हूं। मैं यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि लार्ड वेवल ५ जुलाई से पहले फैसला करने का पूरा प्रयत्न करेंगे। यदि वे इसमें सफल हो गए तो यह अनुदार-दल के लिए एक और गर्व की बात होगी और इससे चुनावों में अनुदार-दल के उम्मीदवारों को और अधिक मत प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त यदि लार्ड वेवल ५ जुलाई से पहले कांग्रेस से समझौता करने में सफल हो जाते हैं और उसके बाद सत्ता मजदूर-दल के हाथों में आती है तो अनुदार-दल हिन्दुस्तान के प्रश्न को फिर हाथ में लेने से मजदूर-दल को रोक देगा।

मेरा इरादा यह कहने का नहीं है कि मैं मजदूर-दल से समझौते की बातचीत करने में विश्वास करता हूं। यह बात बिलकुल नहीं है। मेरी अपनी योजना साफ है, और वह है; आजाद हिन्द फौज को लेकर तबतक लड़ते चला जाना जबतक कि हमारे पास एक भी सैनिक है और हमारे शरीर में एक भी बूंद रक्त बाकी है। लेकिन यदि आप इस मार्ग पर चलने के लिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि आप इसे जोखम का काम समझते हैं, और यदि आप ब्रिटिश सरकार से सौदा ही करना चाहते हैं, तब मैं यह कहूंगा कि उसका समय ५ जुलाई के बाद आयगा। यदि आप ५ जुलाई से पहले लार्ड वेवल से समझौता न करेंगे तो आप आम चुनावों में मजदूर-दल के उम्मीदवारों के मतों में वृद्धि करने में सहायता देंगे। हम यह नहीं भूल सकते कि क्रिप्स का

प्रस्ताव और लार्ड वेवल का प्रस्ताव दोनों ही अनुदार-दल की देन हैं मजदूर-दल दोनों ही अवसरों पर एक अल्पसंख्यक-दल था। इसके लिए मज़दूर नेताओं ने न तो पहला कदम उठाया और न इसका उत्तरदायित्व उनके ऊपर है। यदि लार्ड वेवल को अपने प्रयत्नों में सफलता नहीं मिलती है, तो सम्भवतः ब्रिटेन की जनता मजदूर-दली मंत्रिमंडल को हिन्दुस्तान के प्रश्न को हल करने का अवसर देगी। इसलिए इस सब को संक्षेप में कहें तो यदि आप सौदे में विश्वास करते हैं तो लार्ड वेवल से बातचीत बन्द कीजिये और उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दीजिये। इससे निस्सन्देह मजदूर-दल को पदारूढ़ होने में सहायता मिलेगी। उसके बाद मजदूर-दल निश्चय ही हिन्दुस्तान के प्रश्न को फिर उठायगा। वह यह आशा करता है कि जिस प्रश्न को हल करने में अनुदार-दल असफल हुआ है। उसको वह हल कर लेगा। स्मरण रखिए, मेरा विश्वास यह है कि यदि ५ जुलाई के बाद कोई दूसरा मंत्रिमण्डल बनता है तो वह इतने समय से चली आती हुई, समस्या को हल करना अपना कर्त्तव्य मानेगा और इसे आवश्यक काम समझेगा। इसलिए मजदूर-सरकार से आप जो सौदा करेंगे वह हिन्दुस्तान के लिए अनुदार-दल द्वारा लार्ड वेवल की मार्फत लादे गए समझौते से अधिक लाभदायक होगा।

देश में रहने वाले मेरे भाइयो और बहनों, मैं कल इसी समय आपके लिए फिर भाषण दूंगा। आज अपना भाषण समाप्त करने से पहले मैं एक बात और कहना चाहूंगा। आप अब बड़े जोर से वायसराय की निन्दा कर रहे हैं और सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों को कार्य-कारिणी कौंसिल में समान स्थान देने के लिए उनकी आलोचना कर रहे हैं। लेकिन आप इस प्रश्न पर अधिक गहराई से क्यों नहीं विचार करते; और इसके मूल में जो विचार है, उसको क्यों नहीं ढूंढते? अभी तक किसी भी हिन्दुस्तानी नेता ने ऐसा नहीं किया है। मुझे जो खबरें मिली हैं, उनसे तो यही प्रतीत होता है। मुझे दुःख है कि हिन्दू महा-

सभा के सदस्यों ने भी वही मार्ग ग्रहण किया है जो उनका अपना विशेष मार्ग मालूम होता है। हमारी आपत्ति यह नहीं होनी चाहिए कि कार्य-कारिणी कौंसिल में मुसलमानों को अधिकांश स्थान क्यों दिये जाते हैं? मुख्य प्रश्न तो यह है कि कार्य-कारिणी कौंसिल में किस प्रकार के मुसलमान आते हैं। यदि मौलाना अबुल कलाम आजाद, आसफअली और रफी अहमद किदवई जैसे आदमी उसमें आते हैं, तो हिन्दुस्तान का भाग्य उनके हाथों में सुरक्षित रहेगा। मैं खुद विश्वास करता हूं कि ऐसे देशभक्तों को पूरी स्वतंत्रता दे देना ठीक ही है। देश-भक्त मुसलमान और देशभक्त हिन्दू में कोई अंतर नहीं है। इस समय ब्रिटेन का इरादा सब मुस्लिम-स्थान मुस्लिम-लीग के नामजद व्यक्तियों को देने का है। सवर्ण हिन्दुओं के लिए रक्षित स्थान कांग्रेस को दिये जायंगे। बाकी स्थानों पर अपने नामजद व्यक्तियों को विभक्त करेगा और ये उसके निर्देशों के मुताबिक ही कार्य करेंगे।

इसके फलस्वरूप जब मुस्लिम-लीग ब्रिटेन के साथ पूरी तरह सहयोग करके चलेगी, तब कार्य-कारिणी कौंसिल में कांग्रेस-दल स्थायी अल्पसंख्यक-दल के रूप में रह जायगा। इस प्रकार एक चतुरता-पूर्ण चाल से वायसराय निरंकुशता-पूर्वक हिन्दुस्तान का शासन ही नहीं करता रह सकेगा, बल्कि विशेषता यह होगी कि वह भविष्य में ऐसा कांग्रेस की सहायता से करेगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कार्य-कारिणी कौंसिल के मुस्लिम लीगी सदस्य वायसराय के साथ सहयोग करेंगे। व्यक्तिशः मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे अवश्य सहयोग करेंगे, क्योंकि उसने उनको कार्य-कारिणी में रियायती स्थान दिये हैं। यदि मुस्लिम-लीग युद्ध कार्यों में ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करेगी तो हिन्दुस्तान की जन-शक्ति और दूसरे साधनों का उपयोग ब्रिटेन की साम्राज्यवादी लड़ाई करने का अंग्रेजों का उद्देश्य आसानी से पूरा हो जायगा।

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि लार्ड वेवल के प्रस्ताव में

मुस्लिम-लीग और ब्रिटिश सरकार के बीच प्रकट या प्रच्छन्न रूप में गुप्त समझौता हुआ है। लेकिन जिन्ना और उनके साथी ही लार्ड वेवल को चकमा देंगे। कार्य-कारिणी कौंसिल में मुस्लिम-लीग ब्रिटेन की युद्ध-नीति को कार्यान्वित करेगी जिससे ब्रिटेन को युद्ध-प्रयत्नों में सहयोग देने के पुरस्कार-स्वरूप उनकी पाकिस्तान की योजना कार्यान्वित हो सके। यदि कांग्रेस-दल इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगा तो वह कार्य-कारिणी कौंसिल में स्थायी रूप से अल्पसंख्यक-दल के रूप में रह जायगा। इस पर भी उसे समझौते की अंगभूत ब्रिटेन की युद्ध-नीति को चलाना होगा। इस चतुरता-पूर्ण चाल से ब्रिटिश सरकार जब कांग्रेस का सहयोग प्राप्त कर लेगी तो वह कांग्रेस को हिन्दुस्तान के विभाजन के अर्थात् पाकिस्तान के निर्माण के लिए सहमत करने का प्रयत्न करेगी। इस बीच में कांग्रेस एक ऐसी स्थिति स्वीकार कर लेगी जिसका अर्थ यह होगा कि वह हिन्दुस्तान के लोगों की प्रतिनिधि नहीं बल्कि देश के कई दलों में से एक दल है? यह उसके लिए आत्म-घातकारी होगा।

अंत में मैं यह कहना चाहता हूं कि यद्यपि मैं हिन्दू महासभा और पाकिस्तान-विरोधी मोर्चे के सदस्यों के विचार के तरीके से सहमत नहीं हूं, लेकिन मैं यह तीव्रता के साथ अनुभव करता हूँ कि उन्होंने लार्ड वेवल की योजना का जोरदार विरोध करके हिन्दुस्तान की बड़ी सेवा की है। वास्तव में, मैं तो एक कदम और आगे बढ़कर यह कहना चाहता हूं कि इस नाजुक मौके पर सही विचार करने वाले और देश-भक्त लोगों का, खास तौर से प्रगतिशील कांग्रेस-जनों का यह कर्त्तव्य है कि वे लार्ड वेवल के प्रस्ताव के विरुद्ध एक धुंआधार आन्दोलन करें। महात्मा गांधी ने सदा ही एक सच्चे नेता की भांति लोकमत के अनुसार कदम उठाया है। शिमला-सम्मेलन में कांग्रेस का अधिकृत रूप से प्रतिनिधित्व करने से इनकार करके उन्होंने ठीक ही किया और इस प्रकार उन्होंने अपने आपको वह मार्ग ग्रहण करने के लिए स्वतंत्र

रखा जिसे स्वयं ठीक मानते हैं, जो लोगों की इच्छा के अनुसार हो और सच्चे अर्थों में हिन्दुस्तान के लिये हितकर हो। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि लोकमत, मुख्यतः कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं का मत इस योजना का तुरंत विरोध करेगा। यह सब महात्मा गांधी के ध्यान में अवश्य आयगा और वे तब कांग्रेस को इस अवांछनीय प्रस्ताव को अस्वीकार करने की सलाह दे देंगे। भाइयो और बहनों! हिन्दुस्तान का भाग्य अब आपके हाथों में है। काम में जुट पड़िये और सन् १९४२ के क्रिप्स-प्रस्ताव की जो गति हुई थी वही लार्ड वेवल के प्रस्ताव की करके दम लीजिये।

२० जून १९४५ को नेताजी ने यह भाषण दिया था:—

"हिन्दुस्तान में रहने वाले मेरे भाइयो और बहनों! मैं आज आपके सामने उसी तरह से बोलना चाहता हूं जिस तरह से हिन्दुस्तान में होने पर इस नाजुक मौके पर मैं आपसे बोलता। मैं आपसे उस व्यक्ति की हैसियत से बोलना चाहता हूं जो सन् १९२१ से ही कांग्रेस के साथ है और शांति में और संकट में सचाई और वफादारी से उसकी सेवा करता रहा है। मुझे आशा है आपको यह भली-भांति स्मरण होगा कि सितम्बर १९४३ में जब यूरोप में लड़ाई शुरू हुई तो हिन्दुस्तान में क्या राजनीतिक घटनायें हुई थीं। उस समय ब्रिटिश सरकार कांग्रेसी सरकार व कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का उपयोग लड़ाई के संचालन में करना चाहती थी; लेकिन कांग्रेस ने दो कारणों से लड़ाई में सहयोग देने से इनकार कर दिया। प्रथम, इसलिए कि ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की मांग स्वीकार नहीं की थी, और दूसरे, इसलिए कि वह साम्राज्यवादी लड़ाई थी। जिसमें हिन्दुस्तान को कोई दिलचस्पी नहीं थी। उस समय कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का कोई प्रश्न नहीं था। चूंकि कांग्रेस ने सन् १९२९ में यह तय किया था कि ब्रिटेन की लड़ाई में हिस्सा न लिया जाय, इसलिए कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने इस्तीफ़ा दे दिया। यद्यपि प्रत्येक कांग्रेस-जन को यह साफ़ मालूम होता था कि यदि कांग्रेसी

मंत्रिमंडल पदारूढ़ रहे तो दूसरे मामलों में वे हिन्दुस्तान के लोगों की बहुत कुछ भलाई कर सकते थे। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के इस्तीफ़ों के बाद कांग्रेस ने धीरे-धीरे स्वतंत्रता की लड़ाई फिर शुरू की। यह उस समय पूरी तेजी में आगई जब कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया और लोगों को स्वतंत्रता की लड़ाई में यह नया नारा मिला—'करो या मरो'।

अब सन् १६४५ में लार्ड वेवल का प्रस्ताव हमारे सामने हैं। हमें कहा गया है कि यदि कांग्रेस सुदूर-पूर्व और आगामी लड़ाई में पूरी शक्ति से भाग लेने के तैयार हो तो उसे इस समय दो चीजें अभी मिल सकती हैं और भविष्य में स्वशासन की स्थापना का वचन दिया जा सकता है। वे दो चीजें ये हैं—वायसराय की कार्य-कारिणी कौंसिल में कुछ जगहें और प्रांतों में मंत्रिमंडलों की पुनर्स्थापना।

"हिन्दुस्तान से प्राप्त समाचारों से यह प्रकट होता है कि कुछ कांग्रेस-जनों का लार्ड वेवल के प्रस्ताव की ओर बहुत झुकाव है। इसका अर्थ यह है कि यदि प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल फिर स्थापित हो जायं और कांग्रेस-जनों को वायसराय की कार्य-कारिणी कौंसिल में कुछ स्थान मिल जायं तो वे स्वशासन के वादे से संतुष्ट हो जायंगे। लेकिन ये सब लुभावने प्रस्ताव कांग्रेस के सामने में बहुत समय से हैं। पहले तो अंग्रेज अबतक हमको स्वशासन का वचन देते रहे हैं। दूसरे सन् १६३८ में आठ प्रान्तों में हमारे नियंत्रण में कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे। और उनको इस्तीफ़ा देना चाहिए इसका निर्णय हमने ही किया था। तीसरे वायसराय की कार्य-कारिणी के स्थान उन कांग्रेस-जनों के लिए, जो अपने आपको बेचने के लिए तैयार हों, सदा ही खुले रहे हैं।

लार्ड वेवल के प्रस्ताव में दो नई शर्तें हैं। पहली यह है कि कार्य-कारिणी कौंसिल के स्थानों में वृद्धि कर दी गई है। दूसरी यह खुली शर्त है कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का अर्थ यह है पूर्व की लड़ाई में पूरी तरह से भाग लेने का वादा। सन् १६२६ में कांग्रेसी

मंत्रिमंडलों ने जब इस्तीफे दिये थे, तब यह बात नहीं थी। कांग्रेसी मंत्रिमंडल यदि चाहते तो सन् १६३६ के बाद ब्रिटेन की लड़ाई में हृदय से भाग लेने का स्पष्ट वादा किये बिना इस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकते थे।

जो लोग आज लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, उनसे मैं कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। जिससे हमारे सामने जो प्रश्न हैं वह स्पष्ट हो सके (१) हमारे स्वतंत्रता के ध्येय का क्या हुआ; जिसका लार्ड वेवल के प्रस्ताव में जिक्र तक नहीं है ? (२) पूर्ण स्वराज्य का अर्थ वायसराय की कार्य-कारिणी कौंसिल का भारतीय-करण है या उसका अर्थ पूर्ण स्वतंत्रता और अंग्रेजों से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद (३) कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने सन् १६३६ में इस्तीफे क्यों दिये थे ? (४) हमारा 'करो या मरो' नारा कहां गया ? (५) हमने श्रीयुत अणे और डा० खरे जैसे कांग्रेस-जनों के वायसराय की कार्य-कारिणी में पद स्वीकार कर लेने की निन्दा क्यों की थी ?

लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेल के शब्दों में 'वायसराय का स्वराज्य' कह सकते हैं, यह वायसराय की कार्य-कारिणी के लिए भी स्वराज्य नहीं है। वैदेशिक मामलात विभाग को हिन्दुस्तानी सदस्य को देना तो केवल दिखावा है, क्योंकि रियासती, कबाइली और सीमांतिक मामले उस सदस्य के अधिकार-क्षेत्र से बाहर होंगे। यद्यपि नई कार्य-कारिणी में सामूहिक उत्तरदायित्व या बहुमत शासन का कोई प्रश्न नहीं है और यद्यपि वायसराय एवं गवर्नर जनरल पहले की तरह ही निरंकुश रहेगा, लेकिन फिर भी वह अपनी चतुरता-पूर्ण राजनीतिक चाल या तरकीब से अपनी निरंकुशता पर नई कार्य-कारिणी कौंसिल का पर्दा डाल सकेगा। यह चाल में वायसराय की कार्य-कारिणी में ऐसे बहुमत की व्यवस्था है जो हर हालत में वायस-राय का साथ देगा।

देश में रहने वाले मेरे भाइयो और बहनो, इस नाजुक वक्त में

देश का भाग्य आपके हाथों में है। समस्त देश में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन को तेजी से शुरू करने और समझौते को असम्भव बना देने का यही समय है। जयहिन्द।"

२७ जून १९४५ को नेताजी ने कहाः—

"हिन्दुस्तान में रहने वाले भाइयों और बहिनों! पिछले तीन दिनों से मैं आपके सामने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विस्तृत दृष्टिकोण से बोल रहा हूँ और हिन्दुस्तान के प्रश्न पर उसकी अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि को ध्यान में रख कर विचार कर रहा हूं।

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हिन्दुस्तान और मुख्यतः कांग्रेस का लोकमत सन् १९३९ में इस लड़ाई के शुरू होने के बाद से बहुत अधिक क्रान्तिकारी हो गया है। फलतः यदि आज कांग्रेस का खुला अधिवेशन हो या कांग्रेस महासमिति की पूरी बैठक हो तो लार्ड वेवल का प्रस्ताव भारी बहुमत से अस्वीकार कर दिया जायगा। ब्रिटिश सरकार और लार्ड वेवल हिन्दुस्तान की स्थिति को जानते हैं, और यह अनुभव करते हैं कि यदि अंग्रेजी प्रस्ताव आम कांग्रेस-जनों के या कांग्रेस-महासमिति के निर्णय पर छोड़ दिया जाय तो उसके स्वीकृत होने का तनिक भी अवसर नहीं है। इसीलिए उन्होंने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि उसमें लार्ड वेवल के प्रस्ताव पर कांग्रेस की ओर से केवल कांग्रेस-कार्य-समिति ही विचार कर सकेगी। कांग्रेस के विधान के अनुसार कांग्रेस-कार्य-समिति ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर अंतिम निर्णय नहीं कर सकती।

'लेकिन मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार हूं कि यदि कांग्रेस-कार्य-समिति में सब वर्गों के प्रतिनिधि होते या कोई संकट-काल होता तो कांग्रेस-कार्य-समिति के लिए केवल अपनी जिम्मेदारी पर ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय के बारे में निर्णय करने का कानूनी नहीं तो नैतिक औचित्य होता। लेकिन यह सुविदित है कि कांग्रेस के वामपक्ष का कांग्रेस-कार्य-समिति में प्रतिनिधित्व नहीं है। और कोई बात नहीं कह

सकता कि देश में कोई ऐसा संकट-काल आ गया है जिसमें कांग्रेस-कार्य-समिति कांग्रेस महासमिति पर सामान्य कांग्रेस-जनों से बिना पूछे यह महत्त्वपूर्ण निर्णय करने के लिए बाध्य हो गई है। मैं समझ सकता हूं कि ब्रिटिश सरकार ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार यह सब आयोजना की है कि लार्ड वेवल का प्रस्ताव कांग्रेस महासमिति या कांग्रेस के खुले अधिवेशन के सामने न रखकर केवल कांग्रेस-कार्य-समिति के सामने ही रखा है; लेकिन मेरी समझ में यह नहीं आता कि कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य लार्ड वेवल के होशियारी से बिछाये गए जाल में क्यों फंसने जा रहे हैं। कांग्रेस-कार्य-समिति विधान के अनुसार कांग्रेस का कानून बनाने वाली नहीं, उनको कार्यान्वित करने वाली समिति है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस-कार्य-समिति का एक ऐसे मामले को तय करना, जिसका असर कांग्रेस और हिन्दुस्तान के भविष्य पर बीसियों वर्ष तक होगा, गलत और अनुचित होगा। इस ऐन वक्त पर भी मैं महात्मा गांधी से सच्चे हृदय से और नम्रता पूर्वक अपील करता हूं कि वे कांग्रेस की अनुपस्थिति में कोई निर्णय न करें। मैं यह अपील मुख्यतः इसलिए करता हूं कि वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार करके हम जितना आगे बढ़ चुके हैं, उससे भी पीछे हट आयंगे और कांग्रेस के बुनियादी सिद्धांतों और प्रस्तावों को भंग करेंगे तथा कांग्रेस ने दीर्घकाल से जो त्याग और बलिदान किये हैं उनको व्यर्थ कर देंगे।

यदि देश में रहने वाले हिन्दुस्तानी ब्रिटिश सरकार का विरोध न छोड़ें, तो कोई भी हमें इस लड़ाई के अंत तक हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता लेने से नहीं रोक सकता। हिन्दुस्तान के भीतरी विरोध, पूर्वी एशिया की सशस्त्र लड़ाई और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक स्थितियों से अनुकूल नीति का एकीकरण करने से हिन्दुस्तान निश्चय ही इस लड़ाई की समाप्ति तक एक स्वतंत्र राष्ट्र बन जायगा। लेकिन इसके लिए देश के भीतर ब्रिटिश-सरकार का विरोध जारी रहेगा यह

सुनिश्चित हो जाना चाहिए। मैं पूर्वी एशिया में सशस्त्र लड़ाई जारी रखने की गारंटी करता हूं। मैं वह आश्वासन भी दे सकता हूं कि यदि हिन्दुस्तान के भीतर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध जारी रहा तो हिन्दुस्तान एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना रहेगा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के कूटनीतिक प्रयत्नों से हमें अपने उद्देश्य में बहुत सहायता मिलेगी। इस समय अंग्रेजों को हिन्दुस्तान के भीतर संघर्ष से कोई चिन्ता नहीं है लेकिन फिर भी वे दो बातों से भय खाते हैं। उनको भय है कि यदि हिन्दुस्तान का नैतिक विरोध जारी रहता है तो हिन्दुस्तान का प्रश्न एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना रहेगा। उनको यह भी भय है कि यदि हिन्दुस्तान के लोग अंग्रेजों के दुश्मन रहते हैं तो उनको सुदूर-पूर्व की भावी लड़ाई के लिए हिन्दुस्तान से पर्याप्त सैनिक और अन्य साधन न मिलेंगे। अंग्रेज जानते हैं कि हिन्दुस्तान की सहायता बड़े पैमाने पर मिले बिना और मुख्यतः हिन्दुस्तान की जनशक्ति की सहायता के बिना, वे सुदूर-पूर्व की लड़ाई में नहीं जीत सकते। लार्ड वेवल के प्रस्ताव के पीछे ये दो उद्देश्य हैं। प्रथम, प्रस्ताव में ब्रिटेन की साम्राज्यवादी लड़ाई में हिन्दुस्तान के पूरे हृदय से भाग लेने की शर्त है दूसरे, उससे हिन्दुस्तान का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय नहीं रहेगा, ब्रिटिश साम्राज्य का घरेलू प्रश्न बन जायगा और इससे हिन्दुस्तान संयुक्त राष्ट्रों की, जिनमें सोवियत्-संघ भी शामिल है, सब सहायता से वंचित हो जायगा।

कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार करें, इससे पहले उनको हिन्दुस्तान के ९ लाख लोगों को ब्रिटेन की सुदूर पूर्व की साम्राज्यवादी लड़ाई में बलिदान करने के लिए तैयार हो जाना पड़ेगा। यह कह चुका हूं कि यदि कांग्रेस लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार करेगी तो उसे क्या हानि उठानी पड़ेगी। फलतः प्रस्ताव को स्वीकार करने का फैसला करने से पहले कांग्रेस-कार्य-समिति को सावधानी से यह अन्दाज लगाना होगा कि

उससे उनको क्या लाभ होगा और वह लाभ उससे होने वाली क्षति की पूर्ति कर सकेगा या नहीं। विवेक का तकाजा है कि यदि हमें प्रस्ताव से जो कुछ मिलता है वह उससे होने वाली हानि की अपेक्षा कम है, तो हम इस प्रस्ताव को भी सन् १९४२ के क्रिप्स-प्रस्ताव की भांति अस्वीकार कर देंगे। ऐसे कांग्रेसी भी हो सकते हैं जो यह सोचते हैं कि हम जो कुछ इस समय करने का विचार करते हैं। हमें वह पीछे करना पड़ेगा। यह विचार बिलकुल गलत है। मैंने पहले भाषण में कह दिया है कि यदि बुरे-से-बुरा होता है और हिन्दुस्तान को इस लड़ाई के दिनों में स्वतन्त्रता नहीं मिलती है। तो इस लड़ाई के समाप्त होते ही हमें एक दूसरा अवसर मिलेगा।

युद्ध-काल को शांति-काल में बदलने के दिन अशांति के दिन होते हैं। इन दिनों में विजयी देशों को भी हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि उन्हें आराम की जरूरत होती है।

इसी कारण प्रथम महायुद्ध की क्रान्तियां, जो युद्ध-काल में असफल हो गई थीं, तुर्की और आयरलैंड की क्रान्तियां युद्ध की समाप्ति पर पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न हुईं।

मेरे सामने आज एक खबर है। इसको पढ़ने से मालूम होता है कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा है—"यदि वर्तमान बातचीत असफल हो जाती है तो कांग्रेस दूसरा प्रयत्न शुरू करने से पहले लड़ाई की समाप्ति तक प्रतीक्षा करेगी। मैं कांग्रेस के अध्यक्ष से इस बारे में सहमत नहीं हूं कि जबतक लड़ाई चल रही है तब तक हमें देश में आन्दोलन शुरू नहीं करना चाहिए। लेकिन मैं उनसे इस बात में सहमत हूं कि लड़ाई के अन्त में, यदि हिन्दुस्तान गुलाम ही रहता है तो हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध बड़े पैमाने पर आन्दोलन शुरू करने का अवसर मिलेगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि युद्धोत्तर काल में आन्दोलन में ब्रिटिश भारतीय सेना के विघ्न रहित सैनिक महत्त्वपूर्ण कार्य करेंगे।

कार्य-कारिणी कौंसिल में मुख्य स्थान ब्रिटिश युद्ध-सदस्य अर्थात प्रधान सेनापति का होगा। युद्ध-सदस्य जो कुछ कहेगा वायसराय उसी का समर्थन करेगा। फलतः वायसराय के बाद युद्ध-सदस्य ही सर्वशक्तिमान होगा। जब तक वायसराय और प्रधान सेनापति मिलकर कार्य करेंगे, तबतक उनका सभी विभागों पर नियंत्रण रहेगा। दूसरे सदस्य आपत्ति न कर सकेंगे, क्योंकि वे गैर कानूनी रूप से वायसराय के प्रति अपनी जिम्मेदारी से बंधे होंगे और नैतिक दृष्टि से वे लड़ाई में पूरे हृदय से भाग लेने के लिए वचन-बद्ध होंगे। वैदेशिक विभाग, हिन्दुस्तानी सदस्य के हाथों में रहने पर भी दिखावटी ही साबित होगा—क्योंकि वैदेशिक मामले उसके अधिकार-क्षेत्र से अलग होंगे। इस विभाग का अधिकारी सदस्य वायसराय की कौंसिल के हिन्दुस्तानी रक्षा-मंत्री की तरह होगा जिसके अधिकार में फौजी उपहार-गृह रखे गए हैं।

मैं निर्देश कर चुका हूँ कि प्रस्ताव को स्वीकार करने से हमें क्या हानि होगी। आज मैं यह बताना चाहता हूँ कि यदि कांग्रेस अंग्रेजों से कुछ समय तक सहयोग करेगी तो उसको क्या हानि उठानी पड़ेगी। प्रथम, स्वतन्त्रता के आन्दोलन और हिन्दुस्तान के लोगों की स्वतन्त्रता की मनोवृत्ति में बहुत रुकावट पैदा हो जायगी। दूसरे ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता करके कांग्रेस संसार के स्वतन्त्रता-प्रिय नर-नारियों की सहानुभूति खो देगी और सोवियत्-संघ जैसे देशों का, जो हमारे उद्देश्य से पूरी सहानुभूति रखते हैं और हमें शक्तिमय सहायता देने के लिए भी तैयार हैं, समर्थन जाता रहेगा।

वायसराय के प्रस्ताव पर दूसरी आपत्तियां जो भी हों उसकी केवल एक आपत्ति, अर्थात् उसके साम्प्रदायिक दोष ही उसकी निन्दा करने के लिए पर्याप्त हैं। उसके कारण वह किसी भी राष्ट्रीय दल के स्वीकार करने योग्य नहीं रहता। कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है जो सब धर्मों के लोगों का प्रतिनिनित्व करती है और अपने इस राष्ट्रीय स्वरूप की रक्षा के लिए उसने कठिन संघर्ष किया है। यदि वह इस समय

अपने इस राष्ट्रीय स्वरूप को त्याग दे और साम्प्रदायिक जामा पहन ले तो यह उसका आत्म-घात ही होगा। इसी प्रकार यदि वह भारतीय राष्ट्रवाद के प्रतिनिधि के रूप में काम करना छोड़ देगी और देश के कई दलों में से एक दल बनना स्वीकार कर लेगी; तो वह अपना विनाश स्वयं कर लेगी।

अन्त में मैं आपको फिर याद दिलाना चाहता हूँ, जैसा मैंने कल भी कहा था, कि इस महत्त्वपूर्ण समय में देश का भाग्य आपके और कांग्रेस-कार्य-समिति के हाथों में है। इसलिए शरारत भरे प्रस्ताव के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन कीजिए और ५ जुलाई १९४५ से पहले इस : स्ताव को रद्दी की टोकरी में डलवा दीजिए।"

+ + +

२२ जुलाई १९४५ को नेताजी ने एक रेडियो-भाषण में कहा—

मेरे हिन्दुस्तान में रहने वाले भाइयो और बहनो, हिन्दुस्तान से अभी जो खबर मिली है वह यह है कि कांग्रेस-कार्य-समितिने कल रात शिमला-सम्मेलन में भाग लेने के लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। जो लोग कांग्रेस के वर्तमान रुख को जानते हैं, उनको इस खबर से कोई आश्चर्य न होगा। कांग्रेक-सार्य-समिति की चर्चा करते हुए असोसिएटेड प्रेस के राजनीतिक प्रतिनिधि ने यह खबर दी है—'वायसराय के प्रस्ताव पर कांग्रेस नेताओं की सम्मति तीन दलों में विभक्त है, पहले दल के नेता गांधीजी और सरदार वल्लभ भाई पटेल हैं, जिनको वायसराय के भाषण में 'सवर्ण हिन्दू' शब्दों के प्रयोग पर भारी आपत्ति है। बीच का दल पं० जवाहरलाल नेहरू और अबुल-कलाम आज़ाद का है, जो प्रस्तावित सत्ता की मात्रा से संतुष्ट नहीं हैं, फिर भी यह खयाल करते हैं कि अंतःकालीन योजना के रूप में उस पर उचित अमल किया जाना चाहिए। बशर्ते कि उससे हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय स्वतंत्रता की मांग में प्रगति होने की पर्याप्त संभावना हो और गरीबों की हालत कुछ अच्छी हो सके। तीसरा श्री राजगोपालाचार्य

और श्री भूलाभाई देसाई का है, जिनका खयाल यह है कि शिमला-सम्मेलन में जिन शर्तों पर विचार किया गया था वे इतनी विशाल और लचीली है कि कांग्रेस के सब भय निराधार हैं। उनका कहना है कि कांग्रेस को यह योजना बिना अधिक जांच-पड़ताल के स्वीकार कर लेना चाहिए और इस प्रकार यह सिद्ध कर देना चाहिए कि कांग्रेस काम करना चाहती है।

मैं इतनी दूर से यह निर्णय नहीं कर सकता कि असोसिएटेड प्रेस के राजनीतिक संवाददाता का यह विश्लेषण ठीक है या नहीं; लेकिन यह यदि ठीक भी हो तो भी मुझे इससे आश्चर्य न होगा। सच तो यह है कि वर्तमान कांग्रेस-कार्य-समिति जैसी है यह विश्लेषण उसके अनुरूप ही है। यह प्रतीत होता है कि इस प्रश्न पर रेडिकल डिमोक्रेटिक दल का समर्थन कांग्रेस-कार्य-समिति के किसी सदस्य ने नहीं किया है। दलील यह दी गई प्रतीत होती है कि कांग्रेस-कार्य-समिति ने यद्यपि शिमला-सम्मेलन में सम्मलित होना स्वीकार कर लिया है; लेकिन उसने किसी भी प्रकार का कोई वचन नहीं दिया है। लेकिन यह दलील गंभीर-रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रस्ताव जिस रूप में सामने है और उसको स्वीकार करने का जो असर हो सकता है, वह साफ है। इस सम्मेलन में जो भी भाग लेगा, उसी को पूर्वी एशिया के आगामी आन्दोलन में पूरे हृदय से भाग लेने की नीति स्वीकार करनी पड़ेगी और कांग्रेस की उस नीति को छोड़ देना पड़ेगा जो उसने लड़ाई में भाग लेने के सम्बन्ध में सन् १९३९ में कांग्रेसी मंत्रियों के स्तीफा देने के समय स्वीकार की गई थी। इसके अतिरिक्त इस सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वर्तमान कार्यकारिणी कौंसिलमें वायसराय और गवर्नर-जनरल की वैधानिक स्थिति स्वीकार करनी होगी। उन्हें यह भी स्वीकार करना होगा कि वे केवल सलाहकार हैं, उत्तरदायी मंत्री नहीं हैं। लार्ड वेवल ने इसे छिपाया नहीं है। और सच तो यह है कि उन्होंने बिलकुल साफ कर दिया है कि कार्य-

कारिणी कौंसिल के सदस्यों की नियुक्ति वे ही करेंगे। इस प्रकार कार्य-कारिणी कौंसिल के सदस्य धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होंगे, बल्कि वायसराय के प्रति उत्तरदायी होंगे। बहुमत के शासन या कार्य-कारिणी कौंसिल में सामूहिक उत्तरदायित्व का प्रश्न ही नहीं उठता। फलतः जो भी कोई शिमला-सम्मेलन में भाग लेगा, उसी को स्वतंत्रता की मांग छोड़नी पड़ेगी। उन्हें केन्द्र में धारा सभा के प्रति उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकार की मांग भी छोड़नी होगी; और सन् १९३५ के भारतीय विधान कानून की चौहद्दी के भीतर कार्य-कारिणी कौंसिल के भारतीय-करण मात्र से संतोष करना पड़ेगा। इस समय इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन सब स्थितियों में शिमला-सम्मेलन के निमंत्रण को स्वीकार करने का अर्थ होता है—कांग्रेस के मूलभूत सिद्धांतों और नीतियों का त्याग; जिसमें 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव भी शामिल है और जिसके लिए हमारे इतने भाई अभी तक जेलों में सड़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखजनक है कि कांग्रेस-कार्य-समिति के एक भी सदस्य ने ब्रिटिश सरकार से बातचीत करने से पहले राजनैतिक बन्दियों की रिहाई का प्रश्न नहीं उठाया है, यद्यपि उनमें से कई सदस्यों ने लार्ड वेवल के प्रस्ताव के बारे में वक्तव्य निकाले हैं।

मैंने अपने कल के रेडियो-भाषण में कहा था कि कांग्रेस-कार्य-समिति एक शासन-संस्था है और उसे वैधानिक दृष्टि से करोड़ों लोगों के भाग्य का निर्णय करने का और देश को ऐसी कार्य-प्रणाली के लिए वचन-बद्ध करने का कोई अधिकार नहीं है, जो कांग्रेस के बुनि-यादी आदर्शों और नीति के विरुद्ध हैं। चूंकि कांग्रेस कमेटी कांग्रेस के सब वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं करती और चूंकि देश इस प्रश्न पर एकमत नहीं है, इसलिए ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर कांग्रेस-महा-समिति और पूरी कांग्रेस से सलाह लिये बिना कानूनी दृष्टि से तो दूर, नैतिक दृष्टि से भी कारवाई करनी उचित नहीं है। जब यह समस्त प्रस्ताव ही कांग्रेस के मूलमूत सिद्धांतों और नीति के विरुद्ध है तब

कांग्रेस-कार्य-समिति के लिए शिमला-सम्मेलन का निमंत्रण अपनी जिम्मेदारी पर स्वीकार करना भी उचित नहीं था।

मैं महात्मा गांधी और कांग्रेस-कार्य-समिति से प्रार्थना करता हूं कि वे इस ऐन वक्त पर भी रुक जायं और वे जबकि कांग्रेस-महा-समिति एवं कांग्रेस की उपेक्षा करके ऐसे महत्वपूर्ण अवसर पर अपने ऊपर जो जिम्मेवारी ले रहे हैं, उस पर विचार करें। यह मेरी समझ में नहीं आता कि कांग्रेस-कार्य-समिति इस प्रकार अनुचित रूप से क्यों कार्य करती है। लार्ड वेवल और ब्रिटिश सरकार जानते हैं कि हिन्दुस्तान के लोग अंग्रेजों और अमरीकनों की फौजी जीतों से डर गए हैं और कम-से-कम यह अवश्य अनुभव करने लगे हैं कि इस लड़ाई की जीत अवश्य ही अंग्रेजों और अमरीकनों की होगी। इसलिए लार्ड वेवल और ब्रिटिश सरकार इस मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अवसर से लाभ उठाना और इस अवस्था में अपना उद्देश्य सिद्ध कर लेना चाहते हैं। उन्हें डर है कि कुछ महीनों के बाद समस्त संसार यह देखेगा कि जर्मनी के हार जाने पर भी सुदूर पूर्व में जापान को हराना इतना आसान काम नहीं है। दूसरे लार्ड वेवल और ब्रिटिश सरकार जैसे हो वैसे इन नेताओं को घबराहट में डालकर कम-से-कम ५,००,००० हिन्दुस्तानी सैनिक और बहुत बड़ी मात्रा में फौजी सामान सुदूर-पूर्व की साम्राज्यवादी लड़ाई के लिए प्राप्त कर लेना आवश्यक समझते हैं। तीसरे, लार्ड वेवल और ब्रिटिश सरकार का ५ जुलाई से पहले, जब इंग्लैंड में आम चुनाव होंगे, हिन्दुस्तान के नेताओं से कोई समझौता कर लेना जरूरी है। लार्ड वेवल और ब्रिटिश सरकार को इतनी जल्दी क्यों है, इसका कारण इन तीन उद्देश्यों से प्रकट हो जाता है। लेकिन कांग्रेस इसके लिए उनके जाल में फंस जाय यह कोई कारण नहीं है। लार्ड वेवल ५ जुलाई से पहले हिन्दुस्तान के नेताओं से समझौता करने के लिए आकाश-पाताल क्यों

एक किये देते हैं, यह बताने के लिए मैंने जो कुछ पहले कहा था उसे मैं फिर दोहरा देना चाहता हूं।

मैं अपने देशवासियों को यह समझाना चाहता हूं कि अनुदार-दल हिन्दुस्तान के मामले को अन्तर्राष्ट्रीय परिषदों में उठाये जाने से रोकने के लिए जो कुछ कर सकेगा अवश्य करेगा। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि हम लार्ड वेवल के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दें जैसी मुझे आशा है, तो आम चुनावों के बाद ब्रिटिश सरकार से इस सम्बन्ध में बातचीत करने का अवसर फिर मिलेगा, फिर ५ जुलाई के बाद चाहे बहुमत-दल कोई भी रहे। सुदूरपूर्व में ब्रिटिश सरकार को एक लम्बी और भयंकर लड़ाई लड़नी है। यह इस बात की एक और गारंटी है कि ब्रिटिश सरकार को हिन्दुस्तान को खुश करना ही होगा।

आगे बढ़ने से पहले मैं यह साफ कर देना चाहता हूं कि अंग्रेज यहां से चले जायं, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सौदा करने का प्रश्न ही नहीं है। लेकिन चूंकि हिन्दुस्तान में ऐसे कितने ही हिन्दुस्तानी हैं जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता करने का खयाल रखते हैं। यह सोचना उनका कर्त्तव्य है कि यह सौदा कब और किस प्रकार करेंगे। इस बारे में मुझे बिलकुल निश्चय है कि सौदे का समय ५ जुलाई के बाद आयगा और यद्यपि इस बात की बहुत कम सम्भावना है कि मजदूर दल हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर ले, लेकिन फिर भी उसके साथ अच्छा समझौता हो सकेगा। लार्ड वेवल के प्रस्ताव पर केवल दो अवस्थाओं में समझौता करना उचित है। प्रथम, यदि स्वतन्त्रता प्राप्त करने की सम्भावना न हो। दूसरे, यदि ब्रिटिश सरकार से समझौता करने का यह अन्तिम अवसर हो। पहली अवस्था के बारे में, मैं कह सकता हूं कि अंग्रेजों और अमरीकनों की वर्तमान सफलताओं के बावजूद हिन्दुस्तान के लिए पहले की अपेक्षा स्वतन्त्रता प्राप्त करने की अधिक सम्भावना है। दूसरी अवस्था के बारे में मैं यह फिर कहना चाहता हूं कि चाहे ब्रिटेन में किसी भी दल की सरकार

बने, हिन्दुस्तान को ४ जुलाई के बाद ब्रिटिश सरकार से सौदा पटाने का एक और अवसर मिलेगा और वह अधिक अच्छा अवसर होगा।

मेरे विचार से तीन बातें हैं, जिनके तात्कालिक प्रभाव से हिन्दुस्तान को इस लड़ाई के अंत में स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। वे ये हैं:– (१) हिन्दुस्तान में साम्राज्यवाद का विरोध, (२) हिन्दुस्तान के बाहर अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष और (३) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की कूटनीति। हिन्दुस्तान के भीतर नैतिक संघर्ष ही काफी होगा। हिन्दुस्तान एक अंतर्राष्ट्रीय प्रश्न रहना ही चाहिए और हमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कूटनीतिक व्यवहार से हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के लिए समर्थन प्राप्त करना चाहिए। हिन्दुस्तान को ब्रिटेन से लड़ने वाले उसके शत्रु देशों की नैतिक और मौलिक सहायता प्राप्त करनी चाहिए। जहां तक सशस्त्र संघर्ष का सम्बन्ध है, बर्मा की हारों के बावजूद आजाद हिन्द फौज का मुख्य भाग लड़ाई बन्द न करेगा। हम लड़ाई जारी रखेंगे और जब तक एक भी सैनिक और एक भी गोली हमारे पास रहेगी तब तक हम उसे बन्द नहीं करेंगे। हम में से जो लोग पूर्वी एशिया में हैं; वे हिन्दुस्तान में रहने वाले लोगों की अपेक्षा लड़ाई की स्थिति को अधिक यथार्थ रूप में समझ सकते हैं। हिन्दुस्तान में लोग ब्रिटिश सरकार के प्रचार में आसानी से भ्रमित हो जाते हैं। उनका यह विश्वास हो रहा है कि इंग्लैंड और अमरीका की शक्ति बहुत अधिक है। यदि हमारे देश के लोग हमारी बात का विश्वास करें तो उन्हें युद्ध-स्थिति के हमारे अध्ययन को ठीक मान लेना चाहिए और इसके अनुसार कांग्रेस की नीति बदल देनी चाहिए।

जो कांग्रेस-जन लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार करने का विचार कर रहे हैं, उन्हें आगे की ओर देखना चाहिए और उस दिन की तैयारी करनी चाहिए जब उन्हें पूर्वी एशिया में ब्रिटिश की साम्राज्यवादी लड़ाई में तोपों के भक्ष्य के रूप में ५ लाख हिन्दुस्तानी देने पड़ेंगे और उन्हें आजाद हिन्द फौज के अपने देशवासियों से भी

लड़ने के लिए तैयार रहना पड़ेगा जो अंग्रेजों से, जहां भी वे हों, वहां ही लड़ने के लिए तैयार हैं। यदि इन कांग्रेस जनों को आजाद हिन्द फौज के अपने देशवासी भाइयों और बहनों के विरुद्ध लड़ने में भी शर्म न मालूम हो तो उन्हें कम-से-कम ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायी बनाने के लिए तोपों के भक्ष्य के रूप में ५ लाख हिन्दुस्तानी सैनिक देने से तो इन्कार कर देना चाहिए। जो लोग इस लड़ाई के अंत तक हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता मिलने में सन्देह करते हैं। उनसे मैं यह कहना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान को अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ने का दूसरा अवसर नहीं मिलेगा।

× × × ×

नेता जी ने २२ जून १९४५ को अस्थायी आजाद हिन्द सरकार के सिंगापुर के रेडियो पर भाषण देते हुए कहा था—

मेरे हिन्दुस्तानी भाइयो और बहनो, कल मैंने आपसे कहा था कि कांग्रेस के विधान के अनुसार कांग्रेस-कार्य-समिति का अपने अधिकारों का उल्लंघन करना और कांग्रेस-महासमिति एवं कांग्रेस की ओर से निर्णय करना विधान के अनुसार अन्यायपूर्ण और नैतिक दृष्टि से अनुचित है। मैं यह और कहूंगा कि कांग्रेस-कार्य-समिति के लिए ऐसा करना अबुद्धिमत्तापूर्ण और राजनीतिक दूरदर्शिता-शून्य भी है। बाहरी प्रेक्षक को ऐसा प्रतीत होता है मानो कांग्रेस-कार्य-समिति अनुचित रूप से उतावली कर रही है। मुझे यह भी कहना पड़ता है कि महात्मा गांधी और कांग्रेस-कार्य-समिति की तुलना में श्री जिन्ना ने अधिक बुद्धिमानी और सावधानी से काम लिया है। मेरे सामने जो खबर है उसके अनुसार उन्होंने घोषित किया है कि वे २४ तारीख से पहले, जब वे लार्ड वेवल से मुलाकात करेंगे, मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों को शिमला-सम्मेलन में भाग लेने की सलाह नहीं दे सकते। श्री जिन्ना ने लार्ड वेवल से शिमला-सम्मेलन

को स्थगित करने का अनुरोध करके दूसरा बुद्धिमत्ता और सावधानी का कदम उठाया था।

मैं कह चुका हूं कि यदि महात्मा गांधी अत्यन्त सावधान न रहेंगे तो वायसराय और श्री जिन्ना उनको ऐसे घिराव में ले आयंगे जिसमें कांग्रेस-कार्य-कारिणी कौंसिल के उन्हीं स्थानों के लिए सदस्य नियुक्त करेगी जो वायसराय ने सवर्ण हिन्दुओं के लिए सुरक्षित कर दिये हैं। दूसरे रूप में कहें तो महात्मा गांधी के ऐसी स्थिति में ढकेल दिये जाने का खतरा है। जिसमें वे जल्दी में यह मान बैठेंगे कि कांग्रेस और 'सवर्ण हिन्दू' पर्यायवाची हैं। यह कांग्रेस की राजनीतिक मृत्यु होगी जिससे बचना कांग्रेस के लिए असम्भव होगा।

यदि शिमला-सम्मेलन के कांग्रेसी प्रतिनिधि प्रधान सेनापति को छोड़कर बाकी सब सदस्यों के नामों की सूची पेश कर सकते तो इस खतरे से बचा जा सकता था। क्या कांग्रेसी प्रतिनिधि ऐसा करेंगे ? मुझे यह जानकर खुशी हुई कि कांग्रेस-कार्य-समिति इसी दिशा में सोच रही है। लेकिन इस प्रकार सोचना ही काफी नहीं है। कांग्रेसी प्रतिनिधियों को यह आग्रह करना पड़ेगा कि वायसराय कार्य-कारिणी का निर्णय धार्मिक और साम्प्रदायिक आधार पर करने का विचार ही त्याग दें और उसके स्थान में एक राजनीतिक और राष्ट्रीय आधार बना लें। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे सामने क्या कठिनाइयां हैं। सदा से ही मेरा यह विचार रहा है कि शांति-सम्मेलनों की तरह राजनीतिक गोलमेज परिषदों में भी केवल सम्बन्धित दलों को ही भाग लेने का अधिकार होना चाहिए। अंग्रेज दूसरे सुदूरगामी परिवर्तनों को पहली मंजिल के रूप में कार्य-कारिणी कौंसिल के भारतीयकरण के लिए तैयार हो गए हैं; ऐसा वे श्री जिन्ना या मुस्लिम लीग के कारण नहीं, बल्कि कांग्रेस के कारण कर रहे हैं जो अपने सब प्राप्त साधनों को लेकर ब्रिटिश सरकार से लड़ती रही है।

पूर्वी एशिया में हम ४ जुलाई को एक उत्सव कर रहे हैं। ४ जुलाई

अमरीका का स्वतन्त्रता-दिवस प्रसिद्ध है। पूर्वी एशिया में इस दिन भारतीय स्वतन्त्रता-संघ को नया प्रकाश मिला था और उसके जीवन में एक नई अवस्था का आरम्भ हुआ था। ४ जुलाई के उत्सव में हम पूर्वी एशिया में जहां भी हिन्दुस्तानी हैं, वहां जनमत लिया जायगा। उस दिन हम लार्ड वेवल के प्रस्ताव पर पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों निर्णय मांगेंगे। यदि उन्होंने उसकी निन्दा की तो चाहे कांग्रेस-कार्य-समिति लार्ड वेवल के प्रस्ताव को स्वीकार भी कर ले, फिर भी हम सभी अवस्थाओं में हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई को जारी रखने के अपने इरादे को फिर से पक्का कर लेंगे।

पूर्वी एशिया में हमारे सामने दो काम हैं। प्रथम, हमने ४ जुलाई १९४३ को जो सशस्त्र संघर्ष शुरू किया था, उसे जारी रखना और द्वितीय, अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए आंदोलन करना और कथित संयुक्त देशों के पक्ष के प्रत्येक आंतरिक विरोध से, मुख्यतः सोवियत्-संघ के ब्रिटेन और संयुक्त राज्य के साथ होने वाले विरोध से लाभ उठाना। हमारी पूर्वी एशिया की लड़ाई का मुख्य अड्डा मलाया है। जबतक अंग्रेजों को मलाया में नहीं घुसने दिया जाता तवतक हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए हमारा कार्य अबाध रूप से जारी रहेगा। इसलिए यदि अंग्रेज किसी समय मलाया में उतरेंगे तो हम उनसे पूरी शक्ति के साथ लड़ेंगे।

जब हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता का इतिहास अंतिम रूप से लिखा जायगा तो उसमें मलाया के हिन्दुस्तानियों का मुख्य स्थान होगा। मलाया के हिन्दुस्तानियों ने हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई में बहुत बड़ी संख्या में सैनिक, रुपया और सामान दिया है। इसके लिए हिन्दुस्तान सदा ऋणी रहेगा। मुख्यतः मलाया आजाद हिन्द फौज और अस्थायी आजाद हिन्द सरकार का जन्म-स्थान है। मलाया ने बहुत बड़ी संख्या में युवक दिये हैं जिन्होंने हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई वीरता पूर्वक लड़ी है और उसमें अपने प्राण दिये हैं। मलाया ने झांसी

की रानी रेजीमेंट में भी बहुत ही सैनिकायें दी है। मलाया के हिन्दुस्तानियों ने इस सम्बन्ध में अपना जो दर्जा बना लिया है उन्हें उसे कायम रखना चाहिए। हमने पूर्ण सैनिक तैयारी की आवाज पहले मलाया में ही बुलंद की थी।

आज मैं आपसे और भी अधिक सैनिकों और अधिक धन एवं और अधिक सामान की अपील करता हूं। बर्मा में हमारे पीछे हटने से आपकी जिम्मेदारी और बढ़ गई है। आपने भूतकाल में जो कुछ किया है, उसको देखते हुए मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भविष्य में आप उससे भी अधिक करेंगे। मैं केवल यह चाहता हूं कि आप अपने उद्देश्य की न्यायपूर्णता में विश्वास रखें। जब तक आप में यह विश्वास कायम है; तब तक आप में आशावादिता भी बनी रहेगी और अंतिम विजय में आपका विश्वास भी बना रहेगा।

जय हिन्द !-'

२६ जुलाई १९४५ को नेताजी ने सिंगापुर से यह रेडियो-भाषण दिया:—

"हिन्दुस्तान के सामने इस समय एक राजनीतिक संकट है। यदि इसमें कोई गलत कदम उठा दिया गया तो हमारी स्वतन्त्रता की यात्रा में बाधा पड़ जायगी। मैं आपको यह बता नहीं सकता कि मुझे आज कितनी चिन्ता है, क्योंकि एक ओर जहां स्वतन्त्रता दिखाई देती है, वहां दूसरी ओर गलत कदम उठाये जाने पर वह पीछे को हट जायगी।

यदि देश में रहनेवाले हमारे देशवासी हथियार नहीं उठा सकते हैं, और यदि वे ब्रिटेन के युद्ध-प्रयत्नों से असहयोग भी नहीं कर सकते। तो वे कम-से-कम ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नैतिक विरोध तो करते रहें; और उससे कोई समझौता करने से इन्कार कर दें। हम हथियारों से हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के अधिकार पर जोर देते रहेंगे और जब तक हमारा यह प्रयत्न जारी रहेगा तब तक पृथ्वी की कोई भी शक्ति हिन्दुस्तान

के प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना रहने से नहीं रोक सकती बशर्ते कि आप ब्रिटिश सरकार से समझौता करके हमारा उत्साह न तोड़ दें।

मेरे देश के कुछ नेता मुझसे इसलिए नाराज हैं कि मैं ब्रिटिश सरकार से समझौता करने की उनकी योजना का विरोध करता हूँ। यह मैं जानता हूं। वे मुझसे इसलिए भी नाराज हैं कि मैं कांग्रेस-कार्य-समिति और कांग्रेस की भूलों को बताता हूँ और यह कहता हूं कि कांग्रेस कार्य-समिति कांग्रेस या देश के समस्त राष्ट्रीय लोकमत की प्रतिनिधि नहीं है। ये साम्राज्यवादी नेता जापानियों की सहायता लेने के कारण मुझे गालियां दे रहे हैं। मैं जापानियों की सहायता लेने से लज्जित नहीं हूं। जापान के साथ मेरा सहयोग इस आधार पर है कि जापान हिन्दुस्तान की पूर्ण स्वतन्त्रता को स्वीकार करता है और यह स्वीकृति उसने अस्थायी आजाद हिन्द सरकार को प्रदान कर दी है। लेकिन जो लोग अब ब्रिटिश सरकार से सहयोग करना और उसकी साम्राज्यवादी लड़ाई में लड़ना चाहते हैं; वे हिन्दुस्तान में ब्रिटेन के वायसराय के प्रति उत्तरदायी रहकर अधीनता का दर्जा स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। यदि नेता ब्रिटिश सरकार से इस अधार पर सहयोग करें कि ब्रिटेन स्वतन्त्र हिन्दुस्तान की सरकार को नियमित रूप से मान्य कर ले तो यह दूसरी बात होगी। इसके अतिरिक्त जापान ने हमें हथियार दिये हैं। इनसे हमने अपनी सेना बनाई है जो हमारे एक-मात्र शत्रु ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ेगी। इस सेना अर्थात् आजाद हिन्द फौज को हमारे फौजी शिक्षकों ने हिन्दुस्तानी भाषा में सिखाया है। इस सेना का झंडा हिन्दुस्तानी झंडा है और इसके नारे हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय नारे हैं। इस सेना के अपने हिन्दुस्तानी अफसर हैं और अपने निजी सैनिक-अफसर-शिक्षण स्कूल हैं। जिनको पूरी तरह से हिन्दुस्तानी चलाते हैं। लड़ाई के मैदान में यह फौज हिन्दुस्तानी कमांडरों की कमान में लड़ती है। इन कमांडरों में से कुछ अब जनरल के पद तक पहुँच चुके हैं। यदि कोई फौज 'कठपुतली फौज' कही जा सकती है तो यह ब्रिटिश

भारतीय फौज है, क्योंकि वह अंग्रेज अफसरों की अधीनता में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की लड़ाई लड़ रही है। क्या मैं यह विश्वास कर लूं कि २५,००,००० सैनिकों की भारतीय सेना में केवल इने-गिने हिन्दुस्तानी ही ब्रिटिश सेना के उच्चतम सम्मान अर्थात् विक्टोरिया क्रॉस प्राप्त करने योग्य निकले ? अभी तक जनरल के ऊंचे पद तक पहुँचने के लायक एक भी हिन्दुस्तानी नहीं निकला है।

साथियो ! मैं कह चुका हूं कि जापानियों की सहायता लेने में मुझे लज्जा अनुभव नहीं होती। मैं तो और भी आगे जा सकता हूं और कह सकता हूं कि जब शक्तिमान् ब्रिटिश साम्राज्य संयुक्त राज्य से घुटने टेककर सहायता मांग सकता है। तो हम पराधीन जातिके निःशस्त्र लोग अपने मित्रों से सहायता क्यों न लें ? आज हम जापान की सहायता ले रहे हैं, कल हम किसी भी राष्ट्र की सहायता लेने से न चूकेंगे, बशर्ते कि वह सम्भव हो और उससे हिन्दुस्तान का हित होता हो। यदि हम किसी की मदद के बिना हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकें तो इसमें सबसे ज्यादा प्रसन्नता मुझे होगी। लेकिन अभी तक तो आधुनिक इतिहास में मुझे ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिला है जहां किसी पराधीन जाति ने किसी विदेशी राष्ट्र की सहायता के बिना स्वतंत्रता प्राप्त की हो।"

जब अगस्त में जापानियों ने हथियार डालने का विचार किया तो नेताजी ने सिंगापुर के जापानी जनरल को सूचित किया कि वे आजाद हिन्द फौज की तरफ से अंग्रेजों को कोई वचन न दें। क्योंकि वह बिलकुल स्वतंत्र सेना है। जापानी कमांडर जनरल इतानाकी ने नेताजी को कहा कि चूंकि उन्हें मार्शल काउंट तेरोंची, जो दक्षिण पूर्व एशिया की तमाम जापानी फौज के प्रधान सेनापति हैं, आज्ञा देंगे, इसलिए वे नीति के सम्बंध में कोई वचन नहीं दे सकते। इसलिए नेताजी हवाई जहाज से १६ अगस्त को रवाना हुए और उसी दिन शाम को बंकांग

में आ गये। उन्होंने सिंगापुर में मेजर जनरल कियानी की कमान में मलाया की सब फौज छोड़ दी।

१६ अगस्त की शाम को नेताजी सब शिविरों का दौरा करने गये और प्रत्येक दस्ते के सामने एक संक्षिप्त विदाई-भाषण दिया। अंत में वे एस० एस० दल को देखने गये और उसके सामने भी एक छोटा-सा भाषण दिया। तब उन्होंने अफसरों और सैनिकों को लड़ाई के मैदान में दिखाई वीरता के उपलक्ष्य में पुरस्कार दिया। फिर उन्होंने अफसरों से हाथ मिलाये। सैनिकों ने चलो दिल्ली, इन्कलाब जिन्दाबाद, आजाद हिन्द जिन्दाबाद और नेताजी जिन्दाबाद के गगनभेदी नारे लगाये, नेताजी की आंखों में से आंसू बह रहे थे। इससे ज्यादा वफादारी और भक्ति किसे नसीब हो सकती थी ?

रात को उन्होंने सब अफसरों को भोजन के लिए अपने बंगले में बुलाया और उन्हें बताया कि यदि उनको स्वयं को कुछ हो जाय तो उन्हें किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए। दूसरे दिन कुछ चुने हुए अफसरों को साथ लेकर वे जापानी प्रधान सेनापति फील्ड मार्शल तेरोंची से आजाद हिन्द फौज के आत्म-समर्पण की विस्तृत बातें तय करने के लिए गये। लेकिन काउंट तेरोंची ने उनको कहा कि चूंकि इस बारे में आज्ञा टोकियो से आयगी, इसलिए वे कुछ निश्चय नहीं कर सकते। इसलिए नेताजी दूसरे ही दिन सैगोन से कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ टोकियो को रवाना हुए। कर्नल हबीबुर्रहमान का कहना है कि जब उनका हवाई जहाज फार्मोसा के हवाई अड्डे से टोकियो जाने के लिए उड़ा तो वह अचानक किसी चीज से टकरा गया और उसमें जोरदार विस्फोट हो गया। उनकी सम्मति है कि शायद कोई गिद्ध था जो हवाई जहाज के पंखे से टकरा गया था। उस समय हवाई २०० फीट की ऊंचाई पर था। हवाई जहाज अचानक टूट कर अड्डे के पास ही पहाड़ी ढ़ाल पर गिरा और जल उठा। तब वे स्वयं हवाई जहाज से कूद पड़े और जलते हुए हवाई जहाज के ढेर में से नेताजी

को खींचकर निकाला। कर्नल हबीबुर्रहमान को बुरी तरह से चोट आई थी और उनके हाथ एवं चेहरे पर जलने के निशान अभी तक मौजूद हैं।

उनका कहना है कि जब नेताजी हवाई जहाज में से निकाले गए तो उनके सिर में दो गम्भीर घाव थे। उनको बहुत ज्यादा चोट भी आई थी। लेकिन वह उसके बाद भी आध घंटे तक होश में रहे और उसके बाद बेहोश हो गये। तब वे दोनों अस्पताल में ले जाये गए। उसके ६ घंटे बाद नेताजी की मृत्यु हो गई। कर्नल हबीबुर्रहमान ने उनकी लाश सिंगापुर लाने की कोशिश की, लेकिन हवाई जहाज से यात्रा करने में कठिनाई होने से ऐसा न हो सका। नेताजी की लाश जला दी गई और उस समय कर्नल हबीबुर्रहमान का कहना है कि वे स्वयं मौजूद थे, और उनकी भस्म उन्होंनें स्वयं टोकियो में एक घर में सुरक्षित रूप से रख दी थी। जब अंग्रेजी फौज सिंगापुर और बंकांग में उतरी तो इन स्थानों की आजाद हिन्द फौज ने मेजर जनरल एम० जेड० कियानी और मेजर जनरल जे०के० भोंसले की कमान में स्वतंत्र फौज के रूप में अंग्रेजों को आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की लड़ाई का यह गौरव-पूर्ण अध्याय जिसे नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस ने शुरू किया था, दुःख-जनक रूप से समाप्त हो गया।

हिन्दुस्तान वापिस

हम सबने हिन्दुस्तान में आकर एक बात देखी और वह यह कि देश में रहने वाले लोगों को आजाद हिन्द फौज के असली महत्त्व और उसके कार्यों के सम्बन्ध में कुछ भी मालूम न था। सैगोन, बंकांग, सिंगापुर रंगून के रेडियो-स्टेशन आजाद हिन्द फौज के बारे में घोषणा करते थे, लेकिन हिन्दुस्तान के लोग अभी तक यह विश्वास करते थे कि आजाद हिन्द फौज जापानियों के इशारे पर नाचने वाली फौज थी।

आजाद हिन्द फौज के सब अफसरों को, ब्रिटिश फौजी अदालत उनके भाग्य का फैसला करेगी, इसकी अपेक्षा इस स्थिति से बहुत

ज्यादा परेशान और चिन्तित हुए। हमारे कुछ नेता भी हमें 'हिन्दुस्तान के गुमराह सैनिक' कहते थे। ऐसे समय में पं० जवाहरलाल नेहरू ने जेल से रिहा होते ही पूरी सचाई हिन्दुस्तान के लोगों के सामने रखी और आजाद हिन्द फौज के गौरव और सम्मान की रक्षा करने की स्थायी कृतज्ञता प्रगट की।

श्री भूलाभाई देसाई ने आजाद हिन्द फौज के लिए जो कुछ किया हम उसे भी नहीं लिख सकते। हम तीन अभियुक्तों ने अर्थात् सहगल ढिल्लन और खुद मैंने, उनसे पहली बार जो भेंट की, वह मुझे अभी तक याद है। उन्होंने कहा था—'सज्जनों, मैं आपकी पैरवी करने के लिए आया हूँ; लेकिन आपके शरीरों की रक्षा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण नेताजी और आजाद हिन्द फौज के सम्मान और गौरव की रक्षा है। यदि आपके प्राण सम्मान के साथ बच सकते हैं तो हम उसकी कोशिश करेंगे और आपको बचा लेंगे; अन्यथा आपके लिए मर जाना ही अपने नेता के एवं अपनी संस्था के, जिसके आपके सदस्य थे, सम्मान की रक्षा करना ही अच्छा है।' ऐसा कहकर उन्होंने वह बात कही थी, जो हम कहना चाहते थे। आजाद हिन्द फौज के अफसर और सैनिक बिलकुल यही चाहते थे।

उस समय श्री भूलाभाई देसाई का स्वास्थ्य बहुत खराब था। उनके डाक्टर ने उन्हें चेतावनी दी थी—"श्री देसाईजी, आप बहुत कठोर श्रम कर रहे हैं। यदि आप ऐसा ही करते रहेंगे तो आप स्वयं मृत्यु को बुलायंगे।" भूलाभाई ने उत्तर दिया—'डाक्टर चिन्ता न कीजिए। यदि मैं मर भी जाऊंगा तो मैं इन तीन आदमियों को बचाने के लिए।' उन्होंने अजेय भावना और दृढ़ निश्चय के साथ मुकदमा लड़ा और अपने जीवन की अंतिम महान् विजय प्राप्त की। हम रिहा कर दिये गए। इससे शायद सबसे ज्यादा खुशी श्री भूलाभाई देसाई को हुई।

मार्च १९४६ में जब मैं उनसे मिलने के लिए बम्बई गया, तब

वे मृत्यु के समीप पहुंच चुके थे। मुझे देखकर उनका हृदय भर आया। उन्होंने कहा—'मुझे अब मरने की चिन्ता नहीं। मैंने आपको जीवित देख लिया। मेरी आपको अंतिम सलाह यह है कि आपने जिस उद्देश्य के लिए इतना कष्ट उठाया है। उसके लिए संघर्ष जारी रखना। मुझे विश्वास है कि अंतिम जीत नेताजी की होगी और हिन्दुस्तान स्वतन्त्र होगा। जय हिन्द।'' यह कहकर उन्होंने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

: १३ :

आजाद हिन्द आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति

१. मेजर जनरल जे० के० भोंसले।

आप पहले ब्रिटिश भारतीय फौज की पांचवीं—मराठा पैदल सेना में थे। आपने सन् १९२९ में रायल मिलिटिरी कालेज सेण्डहर्स्ट से उपाधि प्राप्त की थी। सिंगापुर के पतन के अवसर पर ये रायल गढ़वाल रायफल्स की पांचवी बटालियन के प्रधान अधिकारी थे। उस समय आपको लैफ्टिनेंट कर्नल का पद मिला हुआ था। आप हृदय से देश-भक्त रहे हैं और आजाद हिन्द सेना में पहले-पहल सम्मिलित होने वालों में आपका नाम है।

पहली आजाद हिन्द फौज में आप स्थल-सेना के कमाण्डर थे। इस सेना में तीन पैदल बटालियनें, एक विशाल गन-बटालियन, एक बख्तरबन्द लड़ाकू गाड़ियों की बटालियन और अन्य सांग्रामिक यूनिटें थीं। संकट के अवसर पर आपका विचार था कि आजाद हिन्द सेना को भंग न किया जाय क्योंकि यह एक विशिष्ट अवसर था जबकि भारत की सीमा से बाहर भारतीयों, ने मातृभूमि के लिए कुछ कार्य किया था।

आजाद हिन्द सेना की स्वीकृति पर आप मिलिटरी ब्यूरो के डाइरेक्टर नियुक्त किये गए। यह पद सर्वथा आपके उपयुक्त था। ये फरवरी १९४३ से लेकर अगस्त १९४३ तक, जब कि नेताजी ने सुप्रीम कमांडर के रूप में सीधी बागडोर अपने हाथ में ली, आजाद हिन्द सेना की

समग्र गतिविधि के शिखर रूप में रहे। इस काल में आपने अत्यन्त चातुर्य से फौज का संचालन किया।

आप एक अत्यन्त सुन्दर संचालक एवं प्रतिभाशील व्यक्ति हैं। नेताजी के आने पर मिलिटरी व्यूरो के डायरैक्टर का स्थान हटा दिया गया और जनरल भोंसले 'सुप्रीम कमांडर' के चीफ ऑफ जनरल स्टाफ बनाये गए। इस प्रकार से महत्त्व की दृष्टि से यह नेताजी की दूसरी श्रेणी में थे।

सन् १९४४ के आरम्भ से जब नेताजी ने ब्रह्मा की ओर प्रस्थान किया तब आप मलाया में कार्य की देख-भाल के लिए छोड़ दिये गए। अगस्त ४५ में नेताजी हवाई जहाज से टोकियो चले गए। जनरल भोंसले उस प्रधान आजाद हिन्द सेना के, जिसका कि प्रधान शिविर बैंकोक था, स्थानापन्न अधिकारी रहे। यहीं पर वे ब्रिटिश सेना द्वारा जीते गए।

आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार के आप एक मन्त्री एवं युद्ध-कौंसिल के सदस्य थे। आप शिवाजी के वंशज हैं एवं बड़ौदा के गायकवाड़ के सम्बन्धी हैं।

२. मेजर जनरल ए० सी० चटर्जी

मेजर जनरल चटर्जी भारतीय मैडिकल सर्विस के एक पुराने अफसर हैं। सिंगापुर के पतन के समय तक आपको प्रायः २६ वर्ष सरकारी नौकरी में व्यतीत हो चुके थे। मलाया जाने के पूर्व आप बंगाल में जन-स्वास्थ्य विभाग के डायरैक्टर थे।

सिंगापुर के पतन के अवसर पर आप भारतीय मैडिकल सर्विस के पुराने पदाधिकारी थे और युद्ध-बंदियों की देख-भाल का कार्य आपको सौंपा गया था। इस पद के साथ ही आप जनरल मोहनसिंह के एक सलाहकार के रूप में भी काम करते थे।

प्रारम्भ से ही आप स्वातंत्र्य-क्रांति के एक अत्यन्त उद्योगी एवं

विनम्र कार्यकर्त्ता रहे हैं। आपने अनेकों सभायें कीं, व्याख्यान दिये और यह इनके प्रचार का ही परिणाम था कि अनेकों अफसर और सिपाही आजाद हिन्द सेना में सम्मिलित हुए।

आप रासबिहारी बोस के एक अत्यन्त निकट के सहयोगी थे और आजाद हिन्द सेना के संकट-ग्रस्त होने पर जनरल मोहनसिंह द्वारा किये जाने वाले विघटन के विरोधी थे। आजाद हिन्द सेना की स्वीकृति पर आप रासबिहारी बोस के नीचे आई० आई० एल० के जनरल सेक्रेटरी नियुक्त किये गए। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के आगमन पर आप प्रकाशन और प्रचार (ई० और सी० विभाग) के अधिकारी बनाये गए।

सन् १९४४ के युद्ध-काल में आप स्वतन्त्र किये गए प्रदेशों के गवर्नर नियुक्त किये गए और आप मणीपुर के प्रथम गवर्नर होने वाले थे।

जून, १९४४ में आप मोर्चे की अग्रिम पंक्ति पर लड़ने वाले दलों का और उनके द्वारा स्वतन्त्र किये गए प्रदेशों का निरीक्षण करने गये, यहां शत्रु की गोली से आपके हलकी चोट आई।

नवम्बर, ४४ में रंगून वापिस आने पर आप नेता जी की टोकियो-यात्रा में साथ गये जहां से वे सब जनवरी, १९४५ में वापिस आये।

सन् १९४५ के प्रारम्भ में आप आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार के वैदेशिक विभाग के मन्त्री नियुक्त किये गए।

अगस्त, १९४६ में नेताजी की टोकियो की आखिरी यात्रा के समय आप उस दल में थे, जो नेताजी के साथ जा रहा था, परन्तु हवाई यात्रा की असुविधा और कठिनाई के कारण आपको शेष दल के साथ सैगोन में ही रह जाना पड़ा, और यहीं पर वे अंग्रेजी फौजों द्वारा पराजित किये गए।

आजाद हिन्द फौज में आप नेताजी के अत्यन्त विश्वास-पात्र व्यक्तियों में से एक थे, और कदाचित् आप सबसे अधिक अनुभवी हैं।

आप अत्यन्त उग्र देश-प्रेमी और एक अनथक कार्यकर्त्ता हैं। आप एक विशाल संस्थापक हैं और आपकी अध्यक्षता में कार्य करना बड़ा सुख-प्रद है। आप प्रायः ५५ वर्ष के हैं और कलकत्ता के निवासी हैं।

३. मेजर जनरल एम० जेड० कियानी

प्रारम्भ में आप १४ वीं पंजाब रेजीमेंट की पहली बटालियन से सम्बन्धित थे। १९३५ में आप भारतीय फौजी विद्यालय (I.M.A.) से नियुक्त किये गए। इस विद्यालय में आपने आदर कृपाण (Sword-of Honour) और स्वर्ण पदक अपने समय के योग्य छात्र होने के लिए जीते थे।

मलाया के घेरे के समय आप तृतीय भारतीय कोर्प्स के कमांडर जनरल हीथ के बौद्धिक स्टाफ आफीसर का कार्य-भार संभालते थे। सिंगापुर के पतन के अवसर पर आप बटालियन के द्वितीय श्रेणी के अफसर थे।

आपने प्रारंभ से ही आजाद हिन्द फौज में प्रवेश किया और 'चीफ आफ जनरल स्टाफ' के रूप में जनरल मोहनसिंह की अध्यक्षता में प्रथम आजाद हिन्द सेना की स्थापना के लिए उत्तरदायी रहे।

संकट-काल में आपने आजाद हिन्द फौज के विघटित किये जाने के संबंध की जनरल मोहनसिंह की बात मान ली थी, परन्तु बाद में यह आश्वासन होने पर कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस कमान संभालने के लिए आ रहे होंगे, अपने इसमें रहने का ही निश्चय किया।

स्वीकृति के पश्चात् आप मिलिटरी ब्यूरो के डायरैक्टर जनरल भोंसले की अध्यक्षता में कमांडर नियुक्त किये गए।

नेताजी के आगमन के समय आप नम्बर १ डिवीजन के कमाण्डर थे। यह डिवीजन १९४४ के प्रारंभ काल में युद्ध के लिए ब्रह्मा भेजा गया था। आपके नीचे ३ ब्रिगेडें थीं—

नम्बर १. गुरिल्ला ब्रिगेड (सुभाष ब्रिगेड), जो मेजर जनरल शाहनवाज खां की अध्यक्षता में थी।

नम्बर २. गुरिल्ला ब्रिगेड (गांधी ब्रिगेड), जो कर्नल आई० जे० किंयानी की अध्यक्षता में थी।

नम्बर ३. गुरिल्ला ब्रिगेड (आजाद ब्रिगेड), जो कर्नल गुलजारासिंह की अध्यक्षता में थी।

यह वही डिवीजन थी जो १९४४ के संघर्षों में अराकान, हाका फालम, तामू, पालेल और कोहिमा में लड़ी थी।

अक्तूबर, ४४ में मोर्चे से वापिस लौटने पर आप युद्ध-कौंसिल के जनरल सेक्रेटरी नियुक्त किये गए और १९४५ में आप नेताजी के साथ टोकियो गए।

आजाद हिन्द सेना की पराजय के समय आप सिंगापुर में सेनाओं के कमांडर थे।

युद्ध के समय जनरल कियानी ने अपने को मैदान के प्रबंध में सबसे अधिक योग्य सिद्ध किया : परन्तु वस्तुत: आपने स्टाफ-अफसर के रूप अधिक नाम कमाया। साधारण रूप से आप आजाद हिन्द के सर्वश्रेष्ठ स्टाफ-अफसर समझे जाते थे।

अनुमानतः आपकी आयु ३६ वर्ष हैं आप रावलपिण्डी प्रांत के एक सुप्रसिद्ध परिवार के हैं।

४. मेजर जनरल ए० डी० लोकनाथन

आप भारतीय स्वास्थ्य सर्विस के पदाधिकारी हैं और सिंगापुर के पतन के अवसर तक प्रायः २५ वर्ष आप सरकारी सर्विस में व्यतीत कर चुके थे। उस समय आप नं० १९ भारतीय अस्पताल के अध्यक्ष थे और लैफ्टिनेण्ट कर्नल के पद पर थे। पराजय के पश्चात् आप भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम में सबसे पहले सम्मिलित होने वाले अफसरों में से एक थे और दूसरों को उसके लिए प्रभावित करने में क्रियात्मक प्रचार करने वालों में आपका हाथ रहा है। जनरल मोहनसिंह की अध्यक्षता में बनी प्रथम आजाद हिन्द सेना में आप स्वास्थ्य सर्विस के

डायरेक्टर थे। आप बैङ्काङ्क कांफ्रेंस में सम्मिलित होने वाले प्रतिनिधियों में से भी एक थे।

आजाद हिन्द फौज के संकट-काल में आप जनरल मोहनसिंह के द्वारा इसके भंग किये जाने के पक्ष में न थे। आप उस शासन-समिति के सदस्य थे, जो दिसम्बर सन् '४२ से मार्च सन् '४३ तक के संकट-काल के लिए बनाई गई थी और पदाधिकारियों के मध्य वह वातावरण उपस्थित करने के लिए जिम्मेवार थे। जिसने रासबिहारी बोस को आजाद-हिन्द फौज को पुनः व्यवस्थित करने के लिए योग्य बनाया। वे उस कार्यकारिणी समिति के सदस्य भी थे, जो कि रासबिहारी बोस द्वारा आजाद हिन्द फौज के महत्त्वपूर्ण सांग्रामिक पदों पर नियुक्त किये जाने वाले विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति पर विचार करने के लिए बनाई गई थी।

द्वितीय आजाद हिन्द सेना में मिलिटरी ब्यूरो के डाइरेक्टर जनरल भोंसले की अध्यक्षता में अपने चीफ एडमिनिस्ट्रेटर के रूप में आजाद हिन्द सेना की सुप्रीम कमाण्ड में काम किया था। आप आजाद हिन्द सेना के साधारण शासन प्रबंध और अनुशासन की देख-भाल के लिए उत्तरदायी थे।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के सिंगापुर आगमन और आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार बनने पर आप इसके एक मिनिस्टर नियुक्त किये गए। फरवरी, ४४ में आप अण्डमान और नीकोबार द्वीपों में हाई कमिश्नर बनाकर भेजे गये थे। वे द्वीप भारतीय सीमा के विभाग होने के कारण जापानियों द्वारा आजाद हिन्द फौज को सौंप दिये गए थे और जिनका शहीद-द्वीप और स्वराज्य-द्वीप नाम रखा गया था। स्वास्थ्य की गड़बड़ी के कारण आप सितम्बर, ४४ में सिंगापुर वापिस चले आए।

१९४५ के प्रारम्भ में आप नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को अपनी रिपोर्ट देने के लिए रंगून पहुंचे।

वर्मा में आजाद हिन्द सेना के पतन के समय आप आजाद हिन्द सेना के आधिपत्य में पीछे डटे रहे।

आप प्रायः ५६ वर्ष की आयु के हैं, और सम्पूर्ण पदाधिकारियों द्वारा बहुत सम्मानित होते हैं। आप आजाद हिन्द फौज में 'चाचाजी' के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे।

आप स्वदेश के उग्र प्रेमी हैं, और अपने गिरते हुए स्वास्थ्य की उपेक्षा करके बिना विश्राम के कार्य करने वाले हैं। आप सुन्दर व्यवहार रखते हैं,जो उनके सारे मातहतों केनिकट उनको प्रिय बना देता है;

५. मेजर जनरल अजीज अहमद

आप पहली 'कपूर्थला पैदल सेना' से सम्बंधित थे और सिंगापुर के पतन के अवसर पर आप 'स्टेट फोर्स' को कमाण्ड कर रहे थे और मेजर के पद पर थे। आप उन पदाधिकारियों में से एक थे जो पहले न तो जापानियों की बात में विश्वास करते थे और न आजाद हिन्द फौज के निर्माण में ही। परंतु अंत में उन्होंने अपना विचार बदल दिया और मई १९४२ में अपने आपको आजाद हिन्द फौज को समर्पित कर दिया। उनको विश्वास था कि वे ऐसा करने में अपने आदमियों की सेवा अधिक अच्छी तरह से कर सकेंगे और आजाद हिन्द फौज में रहकर जापानियों द्वारा की जाने वाली उनकी बरबादी से उनकी रक्षा कर सकेंगे।

आप बैंकाक कान्फ्रेंस के एक सदस्य थे और पहली आजाद हिन्द सेना में आपने नेहरू ब्रिगेड तैयार की और उसका कमाण्ड किया। आजाद हिन्द फौज के संकट-काल में आप उन उग्र पदाधिकारियों में से एक थे, जिनके द्वारा जनरल मोहनसिंह के आजाद हिन्द फौज के भंग किये जाने वाले विचार का समर्थन किया गया था।

जनरल मोहनसिंह की गिरफ्तारी के बाद आप जनरल इवाकों और श्री० रासबिहारी बोस के द्वारा भेंट के लिए बुलाये गए और

आपके सामने आजाद हिंद सेना के कमाण्ड करने का काम उपस्थित किया गया, जिसके लिए आपने इन्कार कर दिया। परन्तु यह आश्वासन मिलने पर कि आजाद हिन्द फौज का कमाण्ड संभालने के लिए नेताजी निकट भविष्य में आ रहे हैं, आपने कार्य करने का निश्चय किया। मिलिटरी व्यूरो के डायरैक्टर जनरल भौंसले के द्वारा आजाद हिन्द फौज का पुनः व्यवस्थापन होने पर आप नेहरू ब्रिगेड का कमाण्ड करते रहे। नेताजी के आगमन और आजाद हिंद की अस्थायी सरकार की स्थापना होने पर आप स्टेट मिनिस्टर बनाये गए।

मई, ४४ में अपनी ब्रिगेड के साथ आप बर्मा पहुँचे, परन्तु नं० २ डिवीजन का भार संभालने के लिए, जो कि अभी हाल की बनी हुई डिवीजन थी, आपको मलाया लौटना पड़ा। अक्टूबर, ४४ के आरंभ में आप नं० २ डिवीजन की बढ़ती हुई टुकड़ियों के साथ, जो कि अब तक बर्मा की ओर चलना आरम्भ कर चुकी थीं, रंगून वापिस लौटे।

नवम्बर, १९४४ में आप युद्ध-कौंसिल के सदस्य निर्वाचित किये गए और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की टोकियो–यात्रा के कारण होने वाली नवम्बर से दिसम्बर ४४ तक की अनुपस्थिति में स्थानापन्न सुप्रीम कमांडर रहे।

१९४५ के आरम्भ में जब नं० २ डिवीजन की खास टुकड़ी रंगून में इकट्ठी हुई थी, और मोर्चे की पंक्ति पर बढ़ने की तैयारी कर रही थी आप दुर्भाग्य से बम-वर्षा में घायल हो गये और सिर की सख्त चोट के कारण अस्पताल में भरती हुए और मुझे (मेजर जनरल शाहनवाज) नं० २ डिवीजन का भार संभालना पड़ा। अप्रैल, ४५ में चंगे हो जाने पर नं० १ डिवीजन का कमाण्ड आपको सौंपा गया, जो कि उस समय जियावाड़ी में इकट्ठा था। इस डिवीजन के अधिकांश आदमी, जो १९४४ में इम्फाल में काम कर चुके थे, अवस्थ थे और हथियारों और सामानों के लिहाज से बहुत ही गरीब थे। और इस अवस्था में न थे कि, हथियारबन्द ब्रिटिश फौजों का, जब वे जिया-

वाड़ी में आईं मुकाबला कर सकते। अप्रैल, १९४५ के अन्त में जियावाड़ी में अपनी सारी-की-सारी डिवीजन के साथ आपने आत्म-समर्पण कर दिया।

मेजर जनरल अजीज अहमद नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के अत्यन्त विश्वास-पात्र पदाधिकारियों में से एक थे। जिनमें वे हार्दिक अनुराग रखते थे और सदैव उनके आदर्श की प्राप्ति के लिए देश की आजादी के लिए—अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार रहते थे। आप बड़े-बड़े निर्माणों में हाथ लगाने के लिए उत्कृष्ट फौजी ज्ञान रखते हैं, और अपने कमांड में रहने वाली सेनाओं को ट्रेनिंग देने की योग्यता के लिए आप प्रसिद्ध थे। साथ ही आप एक सुन्दर वक्ता हैं और पत्थरों तक को हिला सकते हैं।

आप लगभग ४० वर्ष की आयु के हैं; आपका स्वास्थ्य बहुत सुन्दर है और आप बड़े उत्साही हैं। आप कपूर्थला राज्य के एक प्रसिद्ध राजपूत परिवार के हैं।

६. मेजर जनरल जी० आर० नागर

आप आर० आई० ए० एस० सी० से संबंधित थे और सिंगापुर के पतन के समय लैफ्टिनेंट कर्नल के पद पर थे। पराजय के बाद तुरन्त ही आपको बिदादरी युद्ध-बन्दी कैम्प का शासन सौंपा गया, इस कैम्प में १५००० के लगभग भारतीय युद्ध-बन्दी थे।

अप्रैल, ४२ में आप सैगोन में ब्राडकास्टिंग स्टेशन पर काम करने के लिए भेजे गए। भारतवर्ष के बहुत से लोग उनके ब्राडकास्टों और आलोचनाओं से परिचित होंगे, जो वे मेजर मिर्जा के नाम से किया करते थे। आप जुलाई, ४२ में सैगोन से वापिस आये। सन् १९४४ के लगभग मध्यकाल में, जब कि नं० ३ डिवीजन बनाई गई थी—आप उसके कमाण्डर बनाये गए। १९४५ में घेरे के समय आपको मलाया के पश्चिमी किनारे की रक्षा का भार सौंपा गया जो कि पलो-रास्टा, सेराबवाग और ईपो का निकटवर्ती प्रदेश था। सिंगापुर-कमाण्ड

की आज्ञा के अनुसार आपने ब्रिटिश सेनाओं के आने पर मलाया में अपनी डिवीजन के साथ आत्म-समर्पण कर दिया।

मेजर जनरल नागर एक सुन्दर व्याख्यानदाता और भारतीय आजादी के एक भावुक कार्यकर्त्ता हैं।

७. मेजर जनरल अल्लागप्पन

आप भारतीय स्वास्थ्य सर्विस (I. M. S.) से सम्बन्धित थे, और सिंगापुर के पतन के समय २७ वीं आई० जी० एच० को कमाण्ड कर रहे थे एवं लैफ्टिनेन्ट कर्नल के पद पर थे। आप ब्रिटिश फौज के एक सर्वश्रेष्ठ सर्जन के रूप में सम्मानित थे। पराजय के पश्चात् आप आरम्भ से ही अपने-आप आजाद हिन्द सेना में सम्मिलित हो गये। प्रथम आजाद हिन्द सेना के व्यवस्थापन में आपकी सेनायें भारतीय स्वाधीनता लीग के लिए ऋण रूप में दी गईं। आपने मई, ४२ से जौलाई, ४२ तक आई० आई० एल० के साथ काम किया, फिर आप नेताजी के द्वारा वापिस बुला लिये गए और भारतीय राष्ट्रीय सेना के प्रकाशीकरण एवं संस्कृति विभाग के इञ्चार्ज नियुक्त किये गए। आपने सिंगापुर में शेष आजाद हिन्द फौज के दलों के साथ आत्म-समर्पण कर दिया।

मेजर जनरल अल्लागप्पन एक उत्कृष्ट सर्जन हैं और उग्र राष्ट्रवादी सिद्धान्तों को मानने वाले हैं। आपकी आयु लगभग ४२ वर्ष की है और आप दक्षिण भारत के निवासी हैं।

८. कर्नल ए० क्यू० गिलानी

आप बहावलपुर स्टेट की पैदल सेनाकी पहली बटालियन से सम्बंधित थे और सिंगापुर के पतन के अवसर पर लैफ्टिनेन्ट कर्नल के पद पर थे। आपने पहली आजाद हिन्द सेना के निर्माण में जनरल मोहनसिंह को सहायता दी थी, और इसके लिए आप प्रसिद्ध हो गये थे। आप आम तौर से मुसलिम समाज के नेता माने जाते थे।

आप बैंङ्काक कान्फ्रेंस में एक प्रतिनिधि के रूप में गये थे और श्रीरासबिहारी बोस के सभापतित्व में बनाई गई कार्यवाहक समिति के सदस्य निर्वाचित किये गए थे। संकट-काल में आपने उक्त समिति से स्तीफा दे दिया और पेनांग चले गये जहां पर आपने आजाद हिन्द फौज के, भारतवर्ष के भीतर प्रचार करने की ट्रेनिंग देने वाले स्कूल का भार संभाला।

बाद में सन् १९४४ के अंत में आपको सिंगापुर वापिस बुला लिया गया और भारतीय स्वाधीनता लीग के भर्ती और ट्रेनिंग विभागों का इंचार्ज बनाया गया।

कर्नल गिलानी लगभग ४० वर्ष की आयु के हैं और बहावलपुर के मशहूर गिलानी सय्यद खानदान के हैं। आप हिन्दुस्तानी के एक अच्छे वक्ता हैं।

६. कर्नल एन० एस० भगत

आप भारतीय इंजीनियरों (I. E.) से संबंधित थे, और सिंगापुर के पतन के अवसर पर बंबई की एक विध्वंसक और सुरंग बिछाने वाली मैदानी कम्पनी को कमांड कर रहे थे।

आप उन पदाधिकारियों में से एक थे, जो ऐसी आजाद हिंद सेना के निर्माण के उग्र विरोधी थे,जो जापानियों द्वारा विनष्ट की जा सके। अपने इस अस्वीकारात्मक रुख के कारण आप मार्च १९४२ में सिंगापुर से बोर्नियो भेज दिये गए।

बैंङ्काक कान्फ्रेंस से प्रतिनिधियों के वापिस आने पर आप सितम्बर, ४२ में सिंगापुर वापिस बुलाये गए। यह समझते हुए कि वे चाहे सम्मिलित हों अथवा न हों एक आजाद हिंद सेना का निर्माण होने जा ही रहा है, इस उद्देश्य से कि यह जापानियों द्वारा बरबाद न की जा सके आपने इसमें शामिल होने का ही निश्चय किया।

संकट-काल में जनरल मोहनसिंह के साथ अपनी मांगों पर दृढ़ रहने और यदि आवश्यकता पड़े तो आजाद हिंद सेना को भंग करने के

निश्चय में संभवतः आपने सबसे अधिक प्रसिद्ध काम किया।

जनरल मोहनसिंह के गिरफ्तार होने पर आपने आजाद हिंद सेना से इस्तीफा दे दिया अधिक ऊंचे ओहदों के मिलने का प्रलोभन दिये जाने पर भी तब तक आप इसमें पुनः शामिल होने से इन्कार करते रहे, जब तक कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस नहीं आये।

नेताजी से भेंट करने के बाद जुलाई '४३ में कर्नल भगत ने आजाद हिन्द सेना में फिर से शामिल होने का निश्चय किया। तब से आप बराबर लक्ष्य-प्राप्ति के लिए श्रद्धा-पूर्वक काम करते रहे। आजाद हिन्द फौज के सुप्रीम कमाण्ड के हेडक्वार्टर के नेताजी की अध्यक्षता में पुनः व्यवस्थित होने पर आप चीफ एडमिनिस्ट्रेटर के रूप में काम करते थे।

आजाद हिन्द की स्थायी सरकार के बनने पर आप उसके मिनिस्टर निर्वाचित किये गए।

१९४४ के प्रारंभ में जब नं० २ डिवीजन बनाया गया, आप इसके कमाण्डर बनाये गए। आपने डिवीजन का खूब योग्यतापूर्वक व्यवस्थापन और कमाण्ड किया। मई, १९४४ में जनरल भोंसले और कर्नल भगत के बीच में कुछ सैद्धांतिक मतभेदों के कारण अनबन हो गई। इस कारण आप नं० २ डिवीजन से हटा दिये गए, जिसके लिए कर्नल अजीज अहमद नियुक्त किये गए।

इस प्रकार हटाये जाने के बाद आप तौंग्यी भेजे गये—जो कि शान रियासत में एक पहाड़ी स्टेशन था, और शेष आजाद हिन्द सेना से अलग रखे गये।

१९४५ के प्रारंभ में आपका तबादला जियावाड़ी के लिए कर दिया गया, वहां पर ब्रिटिश सेनाओं के आने पर आप उनमें शामिल हो गए।

उस काल में जब कर्नल भगत आजाद हिन्द फौज में नियुक्त थे, आपने सदैव श्रद्धापूर्वक कार्य किया। आप आजाद हिन्द सेना के सबसे

चतुर और मशहूर अफसरों में से समझे जाते थे।

आप उच्च विचारों वाले और क्रियाशील हैं एवं अपने जापान-विरोधी विचारों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। आप उग्र राष्ट्रवादी हैं।

आजाद हिन्द फौज के पहले मुकदमे में ब्रिटिश अधिकारी मेरे और मेरे दो अन्य साथी कर्नल प्रेमकुमार सहगल और जी० एस० ढिल्लन के खिलाफ गवाही दिलवाने के लिए आपके पास पहुंचे, उन्होंने नेताजी के विरुद्ध वक्तव्य भी लेने चाहे; लेकिन आपने बिलकुल इन्कार कर दिया फल यह हुआ कि आपसे ब्रिटिश फौज के कमीशन से इस्तीफा मांगा गया।

१०. कर्नल अहसान कादिर

आप ९-२ पंजाब रेजीमेंट से सम्बन्धित थे और अपनी बटालियन में मलाया के घेरे के प्रारंभिक काल में एडजूटैण्ट के रूप में कार्य करते थे।

आप भारतीय मिलिटरी एकेडेमी से १९३९ में लिये गए थे और सिंगापुर के पतन के अवसर पर आपको लगभग ८ वर्ष कार्य करते हुए बीत चुके थे और आप कैप्टन के पद पर थे।

आप जनवरी, १९४२ में कुआलालमपुर के निकट जीते गए थे, और कैप्टन मोहनसिंह द्वारा सैगोन में एक रेडियो और ब्राडकास्टिंग स्टेशन का चार्ज लेने के लिए भेज दिये गए थे।

भारत वर्ष में लोग सैगोन से होने वाले अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी ब्राडकास्टों से परिचित होंगे। ये सारे-के-सारे ब्राडकास्ट पूरी तरह से कर्नल अहसान कादिर द्वारा ठीक और नियंत्रित किये जाते थे।

जब जनरल मोहनसिंह एवं जापानियों के बीच संघर्ष होने से संकट-काल उपस्थित हुआ, आप सैगोन के जनरल मोहनसिंह को आजाद हिन्द सेना के भंग करने की बात समझाने का प्रयत्न करने के लिए लौट आये।

दूसरी आजाद हिन्द फौज में मिलिटरी ब्यूरो के डायरेक्टर जनरल

भौंसले की अध्यक्षता में आप रंगरूट स्वयंसेवकों की ट्रेनिंग के इंचार्ज बनाये गए ।

आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार की स्थापना पर आप इसके एक मिनिस्टर नियुक्त किए गए । जब नेताजी ने सिंगापुर से रंगून के लिए हेडक्वार्टर का तबादला किया तो आप भी साथ ही चले आये ।

रंगून में आपने आजाद हिन्द दल का निर्माण और व्यवस्थापन किया । यह दल विशेष रूप से उन नागरिकों की संस्था थी, जो आजाद किये गए प्रदेशों के शासन के लिए शिक्षित किये गए । अप्रैल, ४४ में आप अपने दल के साथ मेमो चले गए ।

मनीपुर घेरे के असफल होने पर आप अक्टूबर, ४४ में रंगून वापिस चले गए । आप युद्ध-कौंसिल के भी सदस्य थे ।

अप्रैल, १९४५ में आप पेगू में ब्रिटिश सेनाओं द्वारा पराजित किये गए ।

कर्नल अहसान कादिर भारतवर्ष की राजनीतिक समस्याओं की बहुत अच्छी योग्यता रखते हैं । आप एक सुन्दर व्यवस्थापक और उत्कृष्ट योजना-निर्माता हैं ।

आप लगभग ३३ वर्ष की आयु के हैं और लाहौर के सर अब्दुल-कादिर के सुपुत्र हैं ।

११. कर्नल एस० एम० हुसैन

आप ४-१९ वीं हैदराबाद रेजीमेंट से सम्बन्धित थे और सिंगापुर के पतन के समय कैप्टन के पद पर थे ।

पहली आजाद हिन्द फौज में आप जनरल भौंसले के स्टाफ-अफसर के रूप में कार्य करते थे जो कि 'हिन्द फील्ड फोर्स' का कमाण्ड करते थे ।

दूसरी आजाद हिन्द सेना में पहली पैदल रेजीमेण्ट का कमाण्ड आपको सौंपा गया । आप रेजीमेण्ट की आगे बढ़ती हुई टुकड़ियों के

साथ अक्टूबर, ४४ में रंगून पहुंचे, लेकिन भारी हथियारों और सामानों के आते समय समुद्र में डूब जाने के कारण उनकी टुकड़ी फरवरी, ४५ तक रंगून न छोड़ सकी। मार्च, ४५ में आप मोर्चे पर पहुंचे, और माग्वे टौंएड-विंग्यी क्षेत्र की, जो कि ब्रह्मा के तैल-क्षेत्रों के निकट ही है, रक्षा का भार संभाला।

आपने अप्रैल, ४५ में माग्वे में ब्रिटिश सेनाओं के आगे आत्म-समर्पण कर दिया।

आप अस्थायी सरकार की केबिनेट के भी एक सदस्य थे।

आप लगभग ३३ वर्ष की आयु के हैं और लायलपुर के एक प्रसिद्ध सैयद खानदान के हैं।

१२. कर्नल हबीबुर्रहमान

आप १४ वीं पंजाब रेजीमेण्ट की पहली बटालियन से संबंधित थे और जब वह दिसम्बर, ४१ में जियरा में कार्य करने गई, उसके एडजूटेण्ट भी थे।

आप १६३६ में भारतीय मिलिटरी एकेडेमी से लिये गए थे और आत्म-समर्पण के समय कैप्टन के पद पर थे।

आप कुआलालमपुर के निकट जापानियों द्वारा जीते गये थे। यद्यपि आपने कभी भी जापानियों का पूरी तरह से विश्वास नहीं किया, आप सदैव इस विचार के रहे कि भारत की आजादी को प्राप्त करने के लिए एकमात्र यही रास्ता था कि पूर्वी एशिया में एक शक्तिशाली सेना तैयार की जाय और जो कभी भी भारत को शासित करने का यत्न करे उससे लड़े।

आप उस प्रतिनिधि-मण्डल के एक सदस्य थे, जो बैंकाक-कान्फ्रेंस में गये थे। पहली आजाद हिन्द फौज में आजाद फौज के हेडक्वार्टर में आप एडजूटेण्ट जनरल थे।

संकट-काल के पश्चात् आप अफसर ट्रेनिंग स्कूल के व्यवस्थापक

नियुक्त किये गए, और यहां पर रहकर ही आपने अपना नाम कमाया। आप में तीन महीनों के थोड़े से समय में एक फौजी विद्यार्थी के हृदय में राष्ट्रीय भावनाओं को भर देने की योग्यता थी और साथ ही वे उनको आवश्यक फौजी ज्ञान से भी सुसज्जित कर देते थे। उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् ये छात्र सीधे मोर्चे की पंक्ति पर जाते थे और कुछ पलटनों और दलों का कमाण्ड भी करते थे। वहां पर उन्होंने अपनी योग्यता का ही परिचय दिया, और जहां वे गये उनके शत्रुओं तक के द्वारा उनकी सराहना की गई। यही वह प्रसिद्ध संस्था थी, जहां 'जीना है तो मरना सीखो' मोटो सिखाया जाता था और उनके छात्र इस मोटो के अनुसार जीवन-यापन भी करते थे।

मई, ४४ में नेताजी ने उनको असिस्टेण्ट चीफ ऑफ स्टाफ के पद पर नियुक्त किया और रंगून में अपने हेड क्वार्टर में उपस्थित होने की आज्ञा दी। वहां पर उनके काम की अत्यन्त शीघ्र आवश्यकता थी; क्योंकि नेताजी मोर्चे की पंक्ति की ओर कूंच कर रहे थे और वे किसी विश्वस्त व्यक्ति को चाहते थे, जो रंगून में फौजी कार्यों को संभाल सके।

नवम्बर, १९४४ में कर्नल हबीबुर्रहमान नेताजी के साथ टोकियो गये, और जनवरी, १९४५ में उनके साथ वापिस लौट आये।

मार्च, १९४५ में आप सिंगापुर में आजाद हिंद फौज की सारी सेना का भार संभालने के लिए और जनरल भोंसले को मुक्ति देने के लिए भेजे गए, क्योंकि जनरल भोंसले की रंगून में अत्यन्त आवश्यकता थी।

अगस्त, १९४५ में केवल आप ही आजाद हिन्द फौज के पदाधिकारी थे। जो नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की टोकियो की अन्तिम और खतरनाक हवाई यात्रा में उनके साथ थे। आप उसी वायुयान में थे, जो नेताजी को ले जा रहा था और फारमोसा में गिरा था।

कर्नल हबीबुर्रहमान ही वह भाग्यशाली व्यक्ति थे, जिन्हें नेताजी का अन्तिम सन्देश देशवासियों के निकट पहुंचाने का सम्मान प्राप्त हुआ,

[illegible] में कमाण्ड
किया और अपने-आपको योग्य सिद्ध किया, और इसके लिए आपको 'सरदारे जङ्ग' का सम्मानित पदक दिया गया ।

कर्नल हबीबुरहमान हैं। यह [illegible]

अन्तिम सन्देश देशवासियों के निकट पहुंचाने का सम्मान प्राप्त हुआ,

जो कि यह था कि "हमारे प्रत्येक देशवासी से कह दो कि सुभाष अपने जीवन की अन्तिम सांस तक भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए लड़ा।

कर्नल हबीबुर्रहमान नेताजी के अत्यन्त विश्वस्त पदाधिकारियों में से एक थे। आप शांत प्रकृति के व्यक्ति हैं। साथ ही चट्टान की तरह मजबूत हैं और नेताजी के अत्यन्त प्रिय अनुगामी हैं और भारतीय स्वाधीनता के एक निःस्वार्थ कार्यकर्त्ता हैं।

आप लगभग ३० वर्ष की आयु के हैं और मीरपुर जिले के एक प्रसिद्ध मुस्लिम राजपूत परिवार के हैं।

१३. कर्नल एस० ए० मलिक (सरदारे जंग)

आप बहावलपुर राज्य की सेनाओं से संबंधित थे और सिंगापुर के पतन के अवसर पर कैप्टन के पद पर थे।

आप आरम्भ से ही आजाद हिंद फौज की हलचलों के उग्र समर्थक थे, और बैंकाक कान्फ्रेंस में प्रतिनिधि बनकर गये थे।

आजाद हिन्द फौज के निर्मित होनेपर आपको खुफिया पुलिस का कमांएड दिया गया; जिसका उन्होंने सिंगापुर में अवर्णनीय चतुरता के साथ कमाण्ड और शिक्षण किया।

सितम्बर १९४३ के प्रारम्भ में आप सिंगापुर से बर्मा को चल पड़े। उनका दल आजाद हिन्द फौज के उन अग्रगामी दलों में से एक था, जो कि मणीपुर के युद्ध में कार्य कर रहा था। विशनपुर के आस-पास के क्षेत्र में १९४४ में भारत-भूमि पर भारत का राष्ट्रीय झण्डा फहराने वाले आप ही पहले भारतीय अफसर थे।

युद्ध-काल में आजाद कराये गए प्रदेशों के आप शासक भी थे और आपने उन सीमाओं तक भली प्रकार शासन-यंत्र संभाला।

युद्ध-काल में आपने अपनी यूनिट को अनोखी होशियारी से कमाण्ड किया और अपने-आपको योग्य सिद्ध किया, और इसके लिए आपको 'सरदारे जङ्ग' का सम्मानित पदक दिया गया।

अपने स्वास्थ्य को ठीक करने लिए आप अक्टूबर, १९४४ में रंगून लौट आये। आप फरवरी, १९४५ में पुनः मोर्चे पर भेजे गए। उनकी सेना जब माण्डले में थी तो अंग्रेजों द्वारा घेर ली गई, फिर भी आप किसी-न-किसी तरह घेरे में से बचकर रंगून पहुंचे।

२४ अप्रैल, १९४५ को आप उस पार्टी में थे, जो नेताजी के साथ रंगून से बैङ्काक लौटी थी। बैङ्काक स्थित आजाद हिन्द फौज की मुख्य टुकड़ियों के साथ ही आप ब्रिटिश सेनाओं द्वारा जीते गए। कर्नल मलिक उन प्रसन्न-चित्त और भाग्यशाली अफसरों में से हैं, जो खतरे में पड़ने में ही आनन्द प्राप्त करते हैं। आप हृदय से देशभक्त हैं और नेताजी के बड़े भक्त हैं।

॥ समाप्त ॥

KA
8 JULY 1945 KO
NETAJI SUBASH CHANDRA BOSE